लेखक की अन्य रचनाएं

लोकगीत—

गिद्धा (१९३६)

दीवा बले सारी रात (१९४१)

मैं हूं खाना बदोश (१९४१)

गाये जा हिन्दुस्तान (१९४६)

Meet My People १९४६)

धरती गाती है (१९४८)

धीरे बहो गंगा (१९४८)

बेला फूले आधी रात (१९४८)

कविता—

धरती दीयां वाजां (१९४१)

कहानियाँ—

कुंग पोश (१९४१)

नये देवता (१९४३)

और बांसुरी बजती रही (१९४६)

निबन्ध—

एक युग : एक प्रतीक (१९४८)

चट्टान से पूछ लो

श्रीदेवेन्द्र सत्यार्थी

राजहंस प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
सुबुद्धिनाथ
मंत्री, राजहंस प्रकाशन
दिल्ली

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस
दिल्ली

भदन्त आनन्द कौसल्यायन को

क्रम

३९१॥ ६५

राधे-राधे
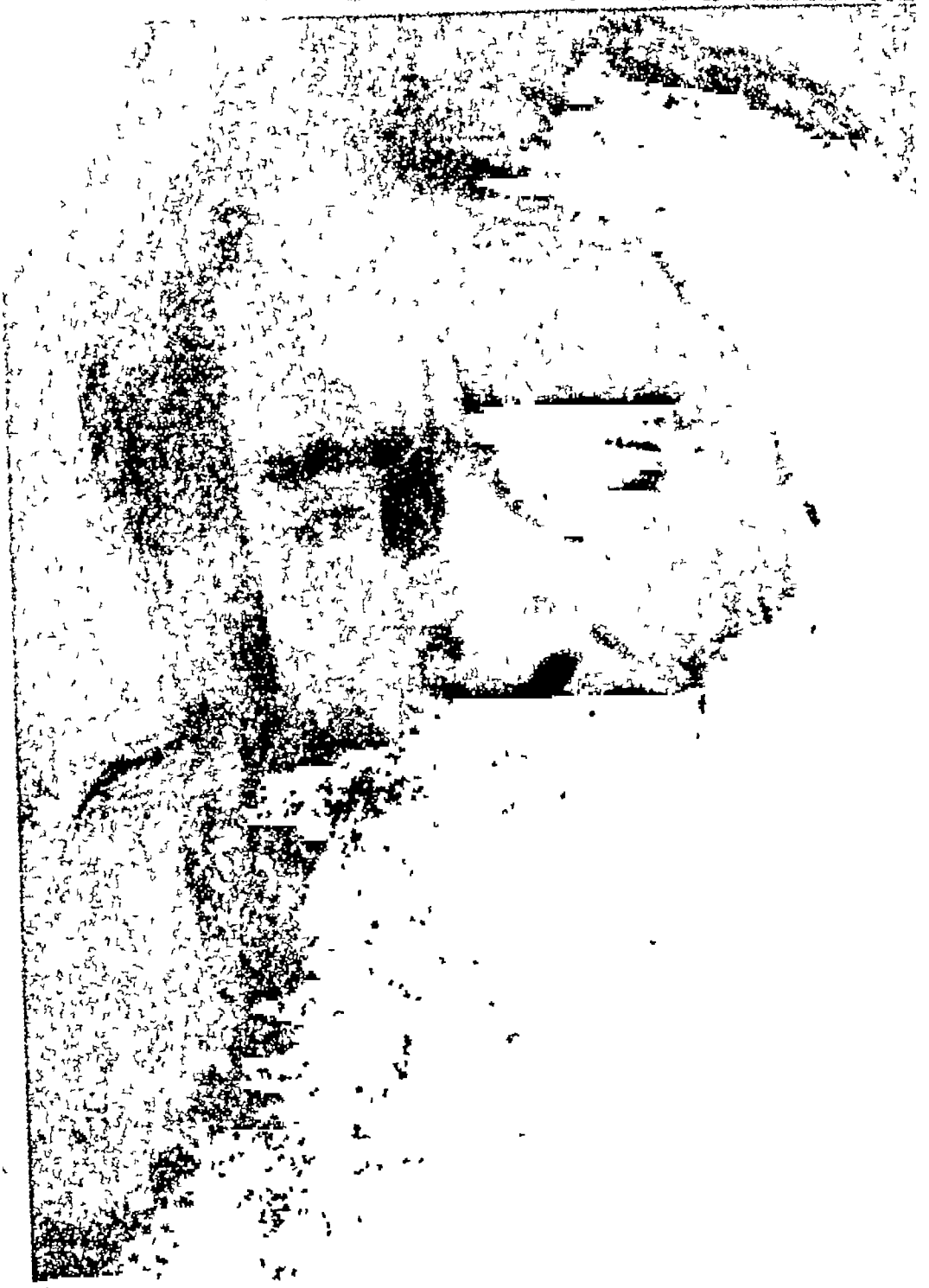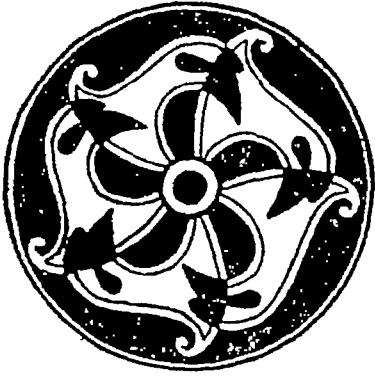
आमुख

सन् १९४० के अन्तिम दिनों की बात है। मुझे एकाएक कहानिया लिखने की बात सूझ गई। एक मित्र ने बड़े व्यंग्य से कहा—तुम तो रात भर में कहानी लेखक बन गये। अनेक मित्रों ने बड़ी आशंका प्रकट की। उनके मतानुसार यह मेरी भूल थी और मुझे लोक-गीत के पथ से भटकना नहीं चाहिए था। मैं उनके उपदेश सुनता और हंस देता। एक ने तो यहा तक कह दिया—'कहानी तुम्हारे बस का रोग नहीं! क्यों बेकार समय गवाते हो?' एक सज्जन बोले—'चेखोफ बनने का वहम छोड़ो। तुम गोर्की भी नहीं बन सकोगे!' एक ने कहा—'मोपासॉ की और बात है। आज का कहानी-लेखक न जाने क्यों इस कला की पुरातन थाती को बोझ समझने लगा है।' उनके कहने का आशय यह था कि जब तक कोई व्यक्ति महान कहानी-लेखकों की सौ-दो-सौ रचनाओं को हृदयंगम न कर ले—उसे इस दिशा में लेखनी उठाने का अधिकार ही नहीं होना चाहिए।

पर मुझे यह देखकर खुशी हुई कि यदि अधिक संख्या ऐस मित्रों की है जो मुझपर हंसते हैं तो दो-चार ऐसे भी तो हैं जो कहते हैं—यत्न करो, कुछ भी असम्भव नहीं। हा, तो ऐसे ही एक मित्र को मै

'कुंग पोश' सुनाने बैठ गया। मुझे भय था कि कहीं वह बीच से ही खिसक न जाय। अतः यह चिन्ता छोड़कर कि प्रत्येक शब्द उसके कान में ठीक-ठाक पहुंच रहा है या नहीं, मैं तेज़ रफ्तार से कहानी पढ़े जा रहा था। इस खयाल से कि उसका ध्यान जमा रहे, गरम-गरम चाय मंगवा ली गई थी। मुझे विश्वास था कि इसी बहाने वह कुछ देर अवश्य अटका रहेगा। क्योंकि वह अकसर कहा करता था कि आखिर कब तक कोई कहानी किसी को उलझा कर रख सकती है—कहानी के साथ चाय के दो घूंट तो आवश्यक हैं।

कहानी पढ़ चुकने पर मैं इस इन्तजार में था कि देखें उधर से क्या फैसला सुनाया जाता है। वह बोला—"यों कहानी बुरी नहीं!"

मैंने कहा, "इसमें जो विशेषता है उसपर कुछ कहिए।"

"विशेषता के झमेले में न पड़ो," वह बोला, "मैं यह मान लेता हूँ कि आप काश्मीर को समझते हैं।"

इसका अर्थ मैंने यही समझा कि मेरे मित्र को 'कुंग पोश' बहुत अधिक पसन्द नहीं आई, और यह काश्मीर को समझनेवाली बात एक-व्यंग्योक्ति हैं।

उसके कहने पर मैंने वह काश्मीरी लोकगीत शुद्ध काश्मीरी स्वर-ताल में गा सुनाया जिसकी इस कहानी में चर्चा की गई थी—

यार गोमय पाम्पोर वते
कुंग पोशव करु नाल मते
सुछम तते वछुस यते
बार सायबो बोजतम ज़ार !

"बस ठीक है, वह बोला, "यह गीत खूब है। इससे तुम्हारी कहानी मे रंग आ गया और कुछ बात बन गई!"

मैं पूछना चाहता था कि कहानी के सम्बन्ध में उसकी क्या राय है। पर वह तो देर तक इसी गीत की प्रशंसा करता रहा।

बोला, "कुछ लोग कहते हैं कि काश्मीरियों को गाना नहीं आता और वे गाते भी हैं तो यों लगता है जैसे रोने का यत्न कर रहे हों, मैं यह नहीं मानता। अब तुम्हारी कहानी से यह बात और भी साफ हो गई। काश्मीरी भी गाना जानते हैं और इस कला में वे किसी से पीछे नहीं—उनके गीतों मे काश्मीर के रंग उभरते हैं, काश्मीर का हृदय धड़कता है, काश्मीर के खेत सास लेते हैं।"

चाय खत्म हो चुकी थीं। दोबारा गरम-गरम चाय मगवाई गई। मैंने फैसला कर लिया था कि चाहे तीसरी बार चाय क्यों न मगानी पड़े, मुझे अपने मित्र की सही-सही राय का अवश्य पता लगना चाहिए।

जाड़े का आरम्भ हुए कई दिन हो गये थे। उस दिन पहली बार महसूस हुआ कि जाड़ा आ गया। मेरे मित्र ने कहा, "काश्मीरी गीतों की क्या बात है। इन्हें हजार बार सुनो फिर भी तबीयत नहीं भरती।"

मैंने कहा, "यह बात तो अनेक प्रान्तों के लोकगीतों के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं, और सचमुच किसी भी अच्छे गीत की पहचान यही है कि बार-बार उसे सुनकर तबीयत भरने न पाये। वह जो विद्यापति ने कहा है..."

"क्या कहा है विद्यापति ने?" मेरे मुख से शब्द छीनते हुए मेरा मित्र कह उठा।

मैंने कहा, "विद्यापति ने कहा है—'सोह परिति अनुराग बखानिए निति-निति नूतन होय!' यह बात लोकगीत के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है—इस 'निति निति नूतन होय' की कसौटी पर लोकगीत को अवश्य खरा उतरना चाहिए।"

मेरा मित्र विद्यापति के एक और गीत के बोल गुनगुनाने लगा—

जनम अवधि हम रूप निहारिनु
नयन न तिरपित भेल
लाख लाख जुग हिये हिया राखनु
हिया तऊ जुड़व न भेल

वह कह उठा, "यही वह रग है जो लोकगीतो में पग-पग पर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। हम जन्म-जन्मान्तर से जिन गीतों को सुनते आ रहे हैं, जिन चित्रों को देखते आ रहे हैं, उनसे हमारे नयन तृप्त नहीं हो पाये। हम लाख-लाख युगो से जिस लोक-कविता के हिये से हिया मिलाते आ रहे हैं उससे हमारा हिया अभी तक पूरी तरह जुड़ नहीं पाया और वह जो विद्यापति एक स्थान पर कह गये हैं—

सजल नयन करि तारे एक दिन न हेरिले
जेनो शत जुग मने हय

आप सच मानिए, यह बात लोक-कविता पर पूरी उतरती हैं। एक दिन के लिए भी यदि हम इसका रस लेने से वचित रह जाय तो यों लगता है कि इसका रस लिये बिना शत-शत युग बीत गये।"

मैं कुछ घबड़ाया अवश्य। क्योंकि मालूम होता था गाड़ी दूसरी ही पटरी पर चल दी है। मैं पूछना चाहता था कि क्या वह काश्मीरी लोकगीत इतना भारी है कि मेरी कहानी उसके नीचे दब गई है। शायद मेरे मित्र का यही मत था कि पूरी कहानी पर लोकगीत का रग छा गया हैं। क्या यह भी कोई दोष है ? मैं जानना चाहता था।

कभी-कभी उसके माथे की रेखाएं गहरी हो जाती और मुझे दूर किसी खेत में देखी हुई हल की रेखाएं याद आने लगती।

वह बोला, "'कु ग पोश' की नायिका को सेव अधिक पसन्द थे या बग्गूगोशे ?"

मैं अभी इसका कुछ उत्तर नहीं दे पाया था। वह फिर कह उठा, "बताओ न बताओ, मैं सब समझता हूँ। वह तो प्याज को भी सेव और बग्गूगोशे की तरह चबा जाती होगी—वैसे ही जैसे मैक्सिम गोर्की ने अपनी आत्मकथा में एक रूसी के सम्बन्ध में लिखा है।"

बहुत देर तक वह इस बात पर ज़ोर देता रहा कि लोग जिस काश्मीर को भू-स्वर्ग के रूप में चित्रित करते हैं, वहा पग-पग पर निर्धनता का नरक नजर आता है और उसकी ओर से आँखें बन्द किये रहना ठीक नहीं।

यदि मेरा मित्र एक बार भी कह देता कि 'कुंग पोश' यौवन की मादकता का प्रतीक है और काश्मीर का जो चित्र उसमें प्रस्तुत किया गया है वह सुन्दर भी और रसमय भी, तो मुझे बहुत सन्तोष होता। मैं थक हार कर खुले शब्दों में उससे कहना चाहता था कि इधर-उधर की बातें छोड़कर इस कहानी के सम्बन्ध मे मुझे कुछ अवश्य बताओ।

फिर ख्याल आया कि मेरी कमजोरी है? आखिर मुझे यह जानने की इतनी चिन्ता क्यों है कि कहानी कैसी है। यदि कहानी अच्छी है तो इस मित्र की खराब राय भी उसे खराब सिद्ध नहीं कर सकती। यदि वह सच ही ख़राब है तो चाय के दस-बीस प्याले भी इसे अच्छी सिद्ध करने में सहायक नहीं हो सकते।

चाय वाला हमारे आर्डर दिये बिना ही और चाय रख गया। सहसा मेरे मित्र ने कहकहा लगाया। शायद इस कहकहे में अवहेलना की मात्रा अधिक थी। मैंने महसूस किया कि शायद वह यह कहना चाहता है कि तुमने केसर के खेत में पहुचते यह कैसे समझ लिया कि तुम कहानी-लेखक बन गये। शायद वह यह कहना चाहता था कि तुमने यह कैसे समझ लिया कि धरती स्वयं लात मारकर खेत के ढेलों मे से एक कन्या को खडा कर देगी जिसके चेहरे पर केसर का रंग पूरी शक्ति से सजग हो उठेगा—केसर का रंग, जो काश्मीर की आत्मा का रङ्ग है। मैं भी तन कर बैठ गया। ऐसी-वैसी कोई बात मैं यो ही नहीं सुन सकूंगा, मैंने निश्चय कर लिया। मैं कहना चाहता था कि मुझे अपराधी मत समझो। क्योंकि मैंने लोकगीत संग्रह करने का ठेका नही ले रखा। मुझसे कहानी लिखने का अधिकार कोई नहीं छीन सकता। आखिर कोई यह क्यों चाहे कि मैं बस लोकगीतों की दलदल में ही धसता चला जाऊँ?

मेरा मित्र जाने क्या सोचकर कह उठा, "मैं यह मानता हूँ कि लोकगीतों की खोज में तुमने दूर-दूर की सैर की है और तुम चाहो तो इस सैर का वृत्तान्त भी लिख सकते हो। मैं यह भी मानता हूँ कि इस

सैर का वृत्तान्त भी कभी कभी कहानी का रूप धारण कर सकता है।"

"जी, हां।" मैंने आराम की सांस लेते हुए कहा, "तो आप 'कुंग पोश' को भी इसी सैर की एक कहानी समझते हैं।"

"तुमने मेरा मतलब समझ लिया," वह बोला, "तुमने जो देखा, जो महसूस किया, उसे ही तुमने कागज पर उतारने का यत्न किया। जैसे बचपन की याद यौवन के दिनों में बराबर आती रहती है वैसे ही यौवन के बाद के दिनों में बचपन और यौवन की याद एकसाथ आया करती है। हॉ, इस याद मे बहुत से रङ्ग तो घुलमिल जाते हैं, पर ऐसे रङ्ग भी तो होते हैं जो अपना-अपना व्यक्तित्व कायम रखते हैं। बस लिखने वाले की खूबी यही होनी चाहिए कि वह इन रङ्गों को ठीक-ठीक पेश करे और इन रङ्गों को पेश करते हुए इनके ऐसे-ऐसे मेल मिलाये कि चित्र में जान पड़ जाय।"

"क्या 'कुंग पोश' में भी ऐसा कोई रङ्ग देखा जा सकता है?" मैंने सम्भाला लेते हुए पूछ लिया।

"अब इसके बारे में मैं अधिक नहीं कहना चाहता," उसने आँखें पोंछने के अन्दाज में कहा, "यों यह चित्र बुरा नहीं। इसमें तुम्हारा अपना व्यक्तित्व भी तो है—जो शायद कहानी से काफी अलग है।"

उस समय मैं सचमुच झेंप गया। वह बोला—"शायद तुम समझोगे कि मैं यों ही तुम्हें मक्खन लगा रहा हूँ। अरे भई, यह मेरी आदत नहीं और शायद इसी लिए मेरे मित्र मुझसे नाराज रहते हैं।"

और चाय मंगवाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। मै यह विश्वास लेकर उठा कि खैर मेरा प्रयास इतना बुरा भी नहीं समझा जायगा।

× × ×

पूरे आठ वर्ष पश्चात् कल उस मित्र ने 'कुंग पोश' के सम्बन्ध में फिर पुरानी बात दोहराई तो मुझे कुछ-कुछ असन्तोष अवश्य हुआ। मैंने खीजकर कहा—"पर अब तो मैं इस पथ पर काफी दूर तक चला

गया हूँ। इस बीच में बहुत-सी कहानिया लिख डालीं।"

"तुम कहानिया लिखो," वह बोला, "तुम्हें कहानिया लिखने से रोकने का मुझ में दम नहीं। पर तुम्हें सदैव एक लोकगीत-संग्रहकर्त्ता के रूप में याद किया जायगा, कहानी-लेखक के रूप में नहीं!"

यह तो बड़ा कठोर फैसला है, मैं सोचने लगा। यह तो वही बात हुई कि एक शीशी पर जो लेबल लग गया उसे उतारकर नया लेबल लगने की आशा नहीं की जा सकती।" क्या 'कुंग पोश' के कहानी होने में किसी को सन्देह हो सकता है? क्या इसका यही दोष सबको खटकता रहेगा कि इसमे लोकगीत और कहानी का सम्मिश्रण क्यों है। 'कुंग पोश' का जन्म लोकगीत की कोख से हुआ है और यह कोई दोष नहीं।"

उस समय 'अन्न देवता' की पृष्ट भूमि में भी मुझे गोंड लोकवार्त्ता की शक्ति का श्रेय स्वीकार करना पड़ा। किस प्रकार पहली बार जंगल में रेल आ पहुची और इस पर सवार होकर अन्न देवता बम्बई चला गया—यह मेरी अपनी कल्पना न थी।

मैंने कहा, "मैंने बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ महसूस किया है, और इस 'बहुत कुछ' में से थोडा-बहुत कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है।"

वह बोला, "तुम जो भी कहो पर होगा वही जो मैं कह चुका हू।"

सचमुच यह गरमागरम बहस करने का अवसर नहीं था। मैंने कहा, "हवा के कन्धों पर जैसे धूल के कण उडते फिरते हैं ऐसे ही मैंने जिन व्यक्तियों को बहुत समीप से देखा वे मेरी कल्पना को छू-छू जाते हैं। उन्हें मैं भुला तो सकता नहीं, और यदि मैं कहानियों में उनके चित्र प्रस्तुत करते हुए अपने हृदय और मस्तिष्क को हलका न करूं तो मैं लोकगीत-सम्बन्धी कार्य में भी पूरी रुचि से नही जुटा रह सकता।"

वह बोला—"यहा मैं तुम्हारे साथ सहमत हूँ।"

× × ×

और आज 'चट्टान से पूछ लो' की कहानिया प्रस्तुत करते हुए मैं शंकित नहीं हूँ। पुस्तक मे उन्हें जिस क्रम से रखा गया है वे उस क्रम से नहीं लिखी गई थीं। 'जन्मभूमि', 'चट्टान से पूछ लो', और 'सूर्यवंशी चन्द्रवंशी' इसी वर्ष लिखी गई रचनाओं में से हैं। 'लाल धरती' एक विशेष प्रयोग है। कलाकार के मन पर अनेक रंग अपनी-अपनी छाप छोड़ जाते हैं। पर एक रंग ऐसा भी होता है जो सौ रंगो के नीचे भी दबता नहीं, जो गीत की टेक के समान आदि से अन्त तक पूरी शक्ति से छाया रहता है। 'कबरो के बीचोंबीच' और 'रागा माटी' बंगाल के अकाल के दिनों की कहानिया हैं। 'कागड़ी' में काश्मीर के स्वतन्त्रता-आन्दोलन की एक झाकी प्रस्तुत की गई है और इसका नायक आज काश्मीर की बागडोर को अपने हाथों मे सम्भाले हुए है।

इन कहानियों को इस संग्रह में प्रकाशित करते हुए मैं उन सभी पत्र-पत्रिकाओं का आभारी हूँ जिनमें इन्हें यथा समय स्थान मिलता रहा है।

देवेन्द्र सत्यार्थी

१००, वेयर्ड रोड,
नई दिल्ली।
१५ सितम्बर, १९४८

चट्टान से पूछ लो

लारी अड्डे पर आके रुकी और पहाड़ी कुली एक दूसरे को पीछे धकेलते हुए लारी की ओर लपके। तिलक ने नीचे उतरकर एक कुली से अपना बिस्तर और चमड़े का बक्स लारी की छत से नीचे उतरवाया। सोनमुख के अडडे की दुकानें गिनती मे बीस-पच्चीस से अधिक न थीं। बेतरतीब सी दुकानें। इन्हे देखकर वह झुंझलाया कि क्या यही वह सोनमुख है जिसकी प्रशंसा गद्दियों के मुख से सुनी थी? यहीं गद्दी राजा की राजधानी थी? उसे याद था कि एक बार एक गद्दी ने अपनी एक कहावत का उल्लेख करते हुए कहा था—भगवान मुझे अगले जन्म मे भेड़ ही क्यों न बनाये पर धौलीधार मे जन्म दे। धौलीधार की चोटिया अच्छी होंगी, उसने सोचा, मुझे भी वहाॅ जाना चाहिए। पर उसके अचेतन मन में तो सोनमुख का चित्र गहरी रेखाओं द्वारा अंकित हो चुका था। वह अपनी कल्पना पर भी झुंझलाया। पर कुली का तो इसमें कुछ दोष नहीं, यह सोच कर उसने कहा—"महाराज की धर्मशाला किधर है?"

धर्मशाला पास ही थी। कुली ने धर्मशाला मे पहुच कर दरबान से कहा—"एक कमरा खोल दो बाबूजी के लिए। बहुत दूर से आये है बाबूजी।"

दरबान ने कमरा खोल दिया। कुली के हाथ मे एक चवन्नी

तिलक ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखें सड़क की ओर घूम गईं जो ऊपर की ओर जाती थी। फिर उसे ख्याल आया कि लारी पहाड़ी जनता के जीवन में रच रही है। जो लोग पहले बीस-बीस कोस पैदल चलने के आदी थे, अब दो-दो चार-चार कोस की खातिर भी सड़क पर खड़े-खड़े दो-दो तीन-तीन घण्टे तक लारी की प्रतीक्षा किया करते हैं। समय तो यों भी नष्ट होना था और यों भी नष्ट होता है, वह कहना चाहता था, विज्ञान ने मानव के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण अभी तक लोग विज्ञान से पूरा-पूरा लाभ उठाने योग्य नहीं हो सके।

इतने मे नीचे से एक और लारी आ कर अड्डे पर रुकी जिससे तीन चार अंग्रेज और दो अंग्रेज छोरियां उतरीं। बुड्ढे मोची ने तिलक का काम छोड़ कर पूछा—"साहब कोई खिदमत ?"

एक अंग्रेज बोला—"अमारा वाला बूट सब ठीक हाय। अम मरम्मट नहीं मांगटा।"

दोनों अंग्रेज छोरियां खिलखिला कर हँस पड़ीं। वे लोग कुलियों से सामान उठवाकर डाक बँगले की ओर चल पड़े।

बुड्ढे मोची ने फिर से तिलक का काम शुरू करते हुए कुछ-कुछ खिसियाना-सा होकर कहा—"सारे फिरङ्गी काम नहीं करवाते। पर जो करवाते हैं काम के बहुत पैसे देते हैं, बाबूजी!"

तिलक को बुड्ढे मोची की अवस्था पर दया आगई। इस दया से कहीं अधिक उसे इन अंग्रेज यात्रियों पर क्रोध आया। ये लोग दो सौ वर्षों से इस देश पर राज्य करते आ रहे थे, पर उन्होंने इस देश की भाषा को ढंग से सीखने का कभी यत्न नहीं किया था। हाँ, अपनी भाषा उन्होंने इस देश के लोगों के दिमागों में कूट-कूट कर भर दी है जिसे निकालना अब कठिन

हो रहा था।

बुड्ढे मोची ने आंखें झपकाते हुए कहा—"एक बात बताओगे, बाबूजी?"

"पूछो।"

"आपने तो गांधी बाबा को देखा होगा?"

"गांधी बाबा को देखा भी है और उनसे बातें भी की हैं।"

बुड्ढे मोची ने बड़े आश्चर्य से तिलक की ओर देखा जैसे उसे सच न आ रहा हो। यदि उसने केवल यही कहा होता कि उसने गांधी बाबा को देखा है तो शायद उसे विश्वास आ जाता। उसने फिर कहा—"आजकल गांधी बाबा कहाँ हैं?"

"देश की राजधानी में," तिलक ने उड़ने वाले पक्षी की भाँति बाहें हवा में उछालते हुए कहा।

बुड्ढे मोची ने फिर कहा—"गांधी बाबा सोनमुख कब आयेंगे? इधर तो गांधी बाबा एक बार भी नहीं आये।"

तिलक को इस पर स्वयं आश्चर्य हुआ। बोला, "जाने सोनमुख उनसे कैसे छूट गया। वे तो देश के कोने-कोने में गये हैं। क्या मैदान, क्या पहाड़, गांधी बाबा ने इस देश की धरती को अपनी आंखों से देखा है, और पैरों से नापा है। सब स्थानों पर वह एक ही सन्देश लेकर गये—एक हो जाओ!"

बुड्ढे मोची ने हँस कर कहा—"सोनमुख की चट्टान भी गांधी बाबा की बाट जोह रही है।"

तिलक कह उठा—"चट्टान से कह दो कि वह निराश न हो। गांधी बाबा एक दिन यहाँ अवश्य आयेंगे। अब मैं उनके दर्शनों को जाऊँगा तो उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे सोनमुख की यात्रा अवश्य करें।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएँ और भी गहरी होती नज़र आईं, जैसे उसे तिलक की बातों पर विश्वास न आ रहा हो,

फिर न जाने क्या सोच कर वह कह उठा—"क्यों यह सच है बाबूजी, कि जब भी फिरंगी ने गांधी बाबा को जेल में डाला, गांधी बाबा अपनी शक्ति से जेल की दीवारों से निकल कर अपने भक्तों का साहस बढ़ाने के लिए उन्हें दर्शन देने आ जाते थे और फिर खुद ही जेल में चले जाते थे ?"

तिलक के जी में तो आया कि साफ-साफ कह दे कि ये सब कहने की बातें हैं और इनमें सचाई नाम की कोई चीज़ नहीं। पर बुड्ढे मोची का मन रखना भी तो अत्यन्त आवश्यक था। बोला—"गांधी बाबा की शक्ति अपरम्पार है। जब वे सोनमुख आयेंगे तो तुम खुद देख लोगे। सोनमुख की चट्टान से यदि वे कहेंगे कि चलो, तो तुम देख लोगे कि चट्टान सरकने लगी है। यदि वे ऊंची-ऊंची चोटियों की बरफों से कहेंगे कि पिघलो तो बरफें सचमुच पिघलने लगेंगी। और यदि कहीं उन्होंने बरफों से कह दिया कि मत पिघलो तो बरफें कभी नहीं पिघलेंगी।"

बुड्ढे मोची की आंखें चमक उठीं। बोला—"गांधी बाबा को सोनमुख तो आना ही चाहिये।"

तिलक ने कहा—"शायद तुम नहीं जानते बाबा कि देश में फिरङ्गी का राज खत्म हो गया।"

"सुनते तो हैं बाबूजी", बुड्ढे मोची ने सूई में डोरा डालते हुए कहा, "पर सच पूछो तो हमें सच नहीं आता। क्यों यह सच है, बाबूजी ?"

"यह तो सोलह आने सच है बाबा !"

"फिरङ्गी ने कैसे मान लिया बाबूजी कि वह चला जायगा ?"

"चला जायगा मत कहो, बाबा, फिरङ्गी तो समझो अब चला गया।"

बुड्ढे मोची ने हँसकर कहा—"इसमें भी फिरङ्गी की कोई

चाल न हो, बाबूजी।"

"गांधी बाबा ने सब देख-भाल कर ली है," तिलक ने उछल कर कहा, "बात यह हुई कि गांधी बाबा की शक्ति से करोड़ों हाथों वाली और करोड़ों मुखों वाली जनता जब तनकर खड़ी हो गई तो फिरङ्गी डर गया। उसने गांधी बाबा को बुलाकर कहा—"पहले तुम मुझे कहते थे कि मैं तुम्हारा देश छोड़कर चला जाऊं। अब मैं खुद कहता हूं कि तुम्हारे देश मे नहीं रह सकता।"

"फिर क्या हुआ ?" बुड्ढे मोची ने आश्चर्य से पूछ लिया।

"बस गाधी बाबा ने कहा—मुझे स्वीकार है। तुम अपने जाने की तिथि निश्चित कर लो। फिरङ्गी ने अपने जाने की तिथि निश्चित कर ली। पर वह तिथि आने से पहले ही फिरङ्गी ने गांधी बाबा को फिर अपने महल मे बुलाया और कहा कि क्यों न वह निश्चित तिथि से पहले ही चला जाय। गांधी बाबा बोले—जरूर चले जाओ। इससे हमारी तुम्हारी मित्रता भी पक्की हो जायगी। बस फिरङ्गी चला गया और अब जन्म-भूमि पर जनता का राज है।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएँ फिर से फैलती और सुकड़ती नज़र आईं। अपने अंतिम वाक्य पर वह फिर से विचार करने लगा—अब जन्मभूमि पर जनता का राज है। क्या जनता सचमुच अपनी शक्तियों को पहचान पाई है ?

बुड्ढा मोची कह उठा—"गांधी बाबा सोनमुख आये तो मैं अगरोला से कहूँ कि उन्हें बासुरी सुनाये।"

"कौन अगरोला ?"

"वही कुली जो अपका सामान धर्मशाला तक ले गया था और आप को मेरे पास लाया था।"

इतने मे अगरोला उधर आ निकला। तिलक ने एक परिचित

मित्र के स्वरों में पूछा--"बांसुरी सुनाओगे, अगरोला ?"

अगरोला ने हंस कर कहा--"मेरी बांसुरी हमेशा नहीं बोलती बाबूजी !"

बूट की मरम्मत खत्म हो चुकी थी। तिलक ने एक अठन्नी उसके हाथ मे थमा दी। पर बाबा ने अठन्नी लौटाते हुए कहा— "आपका दिया बहुत कुछ है, बाबूजी ! मैं तो चाहता हूॅ गांधी बाबा भी आज ही तीसरी लारी से यहॉ आ पहुॅचें और आज मुझे उनके जूते की मरम्मत का पुण्य मिल जाय।"

सोनमुख के अड्डे पर कोई विशेष रौनक न थी। जब कोई लारी यहॉ पहुॅचती तो यों लगता जैसे किसी ने टिके हुए जल मे कंकर फेंक दिया हो। जैसे जल पर छोटे बड़े गोल घेरे पैदा हो जाते है और फिर गायब हो जाते हैं, कुछ यही हाल सोनमुख के अड्डे का था। चारों ओर सुन्दरता थी। पर यहॉ की दुकाने सिरे से कुरूप थीं। चारों ओर जागरण था, पर यहॉ ऊॅघ थी। दुकानों पर जैसे कोई ग्राहक न आता हो। दुकानदार बेपरवाही से बैठे रहते। जैसे उन्हे किसी ग्राहक की प्रतीक्षा ही न हो। दूर खेतों से किसान अपने कार्य मे मगन नजर आते। सोनमुख ग्राम की स्त्रियां भी अपने-अपने घर के धन्धे मे उलझी रहतीं। पर सोनमुख के अड्डे के दुकानदार बिलकुल बेकार नजर आते। तिलक चाहता था कि कोई इन दुकानदारों को झंझोड कर इस नींद से जगाये और फिर उनसे पूछे—तुम्हारा दिमाग तो ठीक है ना। चारों ओर हॅसी और मुसकान थी। पर यहॉ के दुकानदारों को देखकर यों लगता जैसे उन्हे कभी हॅसी आ ही न सकती हो।

धर्मशाला के सामने एक ढाबा था जहॉ उसने भोजन का प्रबन्ध कर लिया था। दिन के समय वह इधर-उधर सैर को निकल जाता और सवेरे और सांझ को धर्मशाला के कमरे

मे बैठे रहने के बजाय वह लारी के अड्डे पर खुबानी के वृक्ष के नीचे उस बुड्ढे मोची के पास जा बैठता। इस घाटी की सिलवटों और चट्टानों मे गूँजता हुआ बांसुरी का गान उसे सबसे ज्यादा पसन्द आया। इस गान मे पहाड़ और मैदान गले मिलते नजर आते थे, क्योंकि इसमे पहाड़ का लहराव था और मैदान का फैलाव, और इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी यही गूंज पैदा करने की शक्ति। कभी यह गान नटखट, चंचल और एकदम स्वतन्त्र नजर आता तो कभी एकदम उदासी मे डूबा हुआ। रात को धर्मशाला के कमरे मे सोते-सोते उसकी आंख खुल जाती। कहीं दूर से बांसुरी का गान गूँज उठता। कौन है जो इस समय बाँसुरी बजा रहा है, वह पूछना चाहता। बाँसुरी के गान मे ये सुगन्धियां कहां से लहरा उठती है? ये परछाइयाँ, ये गूँजें क्या कहना चाहती हैं? बाँसुरी का गान किसे बुला रहा है? उसे यों लगता कि बाँसुरी की आवाज से विमुख एक आवाज़ है। शायद यह सोनमुख की उस चट्टान की आवाज थी जो अपने स्थान से टस से मस नहीं होती थी। बाँसुरी की वेदना सचमुच किसी निर्माण की वेदना थी—नये जीवन को जन्म देने की वेदना–नया जीवन जो इतिहास मे नये अध्याय की वृद्धि कर सके। फिर यह बाँसुरी का गान एकदम लोरी के स्वरों मे ढल जाता और उसे मीठी-मोठी थपकियां देने लगता और धीरे-धीरे वह निद्रा-धारा मे बह जाता।

दिन के समय वह घूमने निकलता तो यों लगता कि चारों ओर से सृष्टि उसे बुला रही है। इसे यों लगता कि जब से यह धरती बनी है और इसे प्यारी-प्यारी, गरम-गरम धूप प्राप्त हुई है, यह किसी की बाट जोह रही है। यों भी होता कि वह सोनमुख के अड्डे से बहुत दूर निकल आया है और झट उसके पैर रुक जाते। वह पीछे की ओर लौट पड़ता। जैसे चट्टान उसे बुला

रही हो। पर चट्टान के समीप पहुँचकर वह इस के गिर्द घूम-घूम कर इस का एक-एक कोना बड़े ध्यान से देखता और अपने दिमाग से पूछता—यह चट्टान क्या कह रही है ? फिर वह सोचता कि यह चट्टान कुछ नही कह सकती। यह तो बस इसी प्रकार एक रहस्यमय खामोशी मे गुम खड़ी रहेगी। कभी उसे यों लगता कि चट्टान की एक-एक सिलवट पर हलकी सूक्ष्म-सी मुसकान फैल गई है।

किसी किसी दिन धुन्ध मे लिपटी हुई चट्टान ऊँघती नजर आती। चट्टान से कुछ दूर एक झरना था। रिल रिल, रिल रिल-झरने का पानी एक मधुर गान छेड़ता हुआ एक नन्ही सी कूल के रूप मे बह रहा था। कभी-कभी तिलक इस झरने के किनारे चला जाता। जैसे वह उस झरने से पूछना चाहता हो कि भाई मेरे तुम ही बताओ इस चट्टान का भेद। कही से कोई पक्षी चहचहा उठता और तिलक मानो इस पंछी से भी पूछना चाहता—अरे मित्र, तुम ही बताओ इस चट्टान के बारे मे। वह ऊपर नीचे फैले हुए खेतो से भी पूछना चाहता था कि क्या तुमने कभी इस चट्टान को कुछ कहते नहीं सुना। वे दिन कैसे थे जब यहां गद्दी राजा का राज था ? इस चट्टान ने गद्दी राजा का राज खत्म होते देखा। शायद वह इसी वेदना मे आज तक खामोश है।

कभी वह पुरानी राजधानी के खडंहरो की परिक्रमा करने लगता और उनसे पूछता कि कुछ तुम ही बताओ सोनमुख की चट्टान का भेद। फिर वह सूर्य से पूछता—तुम ही बताओ, सूर्य भगवान ! तुम से क्या छुपा हुआ है ?

एक दिन वह दोपहर ढलने पर बुड्ढे मोची के पास आया। बोला—"कहाँ है तुम्हारा अगरोला, बाबा ? उससे कहो आज अपनी बाँसुरी ही सुनाये।"

"क्यों उसने आज तक हमारे बाबूजी को बाँसुरी नहीं

सुनाई ?" बुड्ढे मोची ने चकित होकर कहा।

तिलक कह उठा—"जब टिकी हुई रात की खामोशियों का चीरती हुई बाँसुरी गूँज उठती है उस समय भला कौन सो सकता है ? या लगता है जैसे बाँसुरी का गान भी कोई जुगनू है जो रात के अंधेरे ही मे चमकता है।"

बुड्ढे मोची ने हँस कर कहा-"अकेला अगरोला तीन कुलियों जितना काम करता है, बाबूजी! वह तो थक कर सो जाता होगा। अब कैसे पता चलाये कि यह कौन है जिस की बांसुरी आधी रात के समय हमारे बाबूजी को सोते से जगा देती है।"

"मैंने गड्डियों की बाँसुरी भी सुनी है। उसमे भी यह दर्द नहीं होता जो उस बाँसुरी मे होता है जो मै आधी रात के समय सुनता हूँ, बाबा!"

"एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय, बाबूजी, यही तो बाँसुरी चाहती है।"

एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय, ये शब्द तिलक के मर्मस्थल को छू गये। बोला—"यही तो गांधी बाबा भी कहते हैं। एक को छोड़ कर दूसरे का आगे बढ़ना आगे बढ़ना नहीं कहला सकता-गांधी बाबा के इस वचन का भी तो यही अर्थ है।"

बुड्ढे मोची के माथे की रेखाएं फैलती और सुकड़ती नजर आईं। जैसे वह पूछना चाहता हो कि ऐसे हमारे गांधी बाबा क्या सोनमुख के इस मोची के घर उसी तरह दर्शन नहीं देंगे जैसे विदुर के घर भगवान् कृष्ण आये थे।

अचानक सामने भीड़ देखकर बुड्ढा मोची कह उठा— "शायद कोई झगड़ा हो गया।"

वह अपनी जगह से उठकर उधर को लपका। तिलक भी उसके साथ जा खड़ा हुआ। बीच मे एक व्यक्ति खड़ा था जिसके कन्धों पर लम्बे-लम्बे बाल झुके पड़ते थे। उसे पहचानते हुए

बुड्ढे मोची ने तिलक के कान में कहा—"शम्भु है। एक गद्दी का छोरा।"

"पर भेड़ के बिना तो मैं गद्दी के छोरे की कल्पना नहीं करना चाहता। न इसके हाथ में बांसुरी ही नजर आती है," तिलक ने गम्भीर होकर कहा।

"शम्भु को कोई सेठ नीचे ले गया था और पढ़ा-लिखा कर कई बरसों बाद सेठ ने उसे ऊपर भेजा था।"

"कब की बात है?"

"आठ बरस पहले की बात है, बाबूजी।"

"तो आठ बरस से शम्भु क्या कर रहा है?"

"शम्भु ने मुझे खुद बताया था कि उसने मूर्ति बनाने की विद्या सीख ली है। मैंने कहा—छोटी मोटी मूर्तियाँ बनाओ, शम्भु, गुजारा चल जायगा। एक छोटी सी मूर्ति उसने बनाई भी थी।"

"वह मूर्ति अब कहाँ है, बाबा?"

"उसे तो जाने कौन उठा ले गया। शम्भू का बड़ा हथौड़ा और बड़ी छेनी अभी तक मेरे पास पड़ी है जो मैं उसे लौटाना चाहता हूं। उसकी छोटी हथौड़ियाँ और छोटी छेनियाँ उसने न जाने कहाँ पटक दी थीं। उसने कहा था कि वह एक पूरे कद की मूर्ति गढ़ना चाहता है। फिर उसने कोई भी मूर्ति बनाने की बात छोड़ कर स्वराज का प्रचार शुरू कर दिया और इस पर महाराज ने उसे सजा सुना दी।"

"कै बरसों की, बाबा?"

"दस बरस की और यह तो हमारे महाराज ने दया की जो उसे तीन बरस पहले ही छोड़ दिया।"

हर कोई शम्भु से कुछ पूछना चाहता था पर शम्भु कुछ बोलता ही नहीं था। उसके मुख पर किसी दृढ़ संकल्प की रेखाएं स्पष्ट हो उठी थीं। तिलक ने मन ही मन में शम्भु को प्रणाम

किया। वह कहना चाहता था कि शम्भु को साधारण आदमी मत समझो।

भीड़ हट गई। शम्भु वहीं एक शिला पर गुम-सुम बैठा रहा। बुड्ढे मोची ने उसे कई बार बुलाने का यत्न किया। पर शम्भु टस से मस न हुआ। फिर जब तिलक ने एक दुकान से दूध मंगवा कर ग्लास शम्भु के हाथ मे थमाया तो उसने खुशी से दूध पी लिया। पर तिलक के बुलाने पर भी शम्भु चुप बैठा रहा। जैसे उसने मौन-व्रत धारण कर रखा हो।

बुड्ढे मोची का दिल शम्भु को देख कर खुशी से उछल पड़ा था। सात बरस की कैद मे उसने कितने कष्ट सहे होंगे, इसका ध्यान आते ही उसका सिर गर्व से ऊंचा उठ गया। खुबानी के वृक्ष के नीचे बैठा वह एक जूते की मरम्मत कर रहा था। पर उसका ध्यान तो शम्भु में था। तिलक को पास आते देख कर वह बोला—"शम्भु केवल अपने लिए ही कैद नहीं हुआ था, बाबूजी! यह बात तो आप भी मानेंगे।"

"हॉ, हॉ। मेरे दिल मे ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत कदर है, बाबा! तुमने बताया था ना कि बॉसुरी कहती है—एक का दर्द दूसरे का दर्द बन जाय। मैं कहता हू कि शम्भु ने बॉसुरी का गान सुनकर ही स्वराज्य की बात उठाई होगी।"

शम्भु के लिए धर्मशाला मे एक कमरा खुलवा दिया गया। जिस ढाबे मे तिलक ने अपने लिए भोजन का प्रबन्ध कर रखा था वहीं उसने शम्भु के लिए भी प्रबन्ध करा दिया। बुड्ढे मोची ने शम्भु की अमानत वह बड़ा हथौड़ा और बड़ी छेनी शम्भु के हवाले कर दी।

दूसरे दिन सूर्य निकलने से पहले ही शम्भु हथौड़ा और छेनी ले चट्टान के पास जा पहुचा। उसके दिमाग़ मे कोई मूर्ति करवट बदल रही थी। सूर्य की पहली किरणे चट्टान के पथरीले शरीर

पर सोने का पानी फेर रही थीं। चट्टान अपनी पुरातन शान से सिर उठाये खड़ी थी। जैसे वह अपनी मूक वाणी द्वारा पुकार कर कहना चाहती हो—खबरदार जो मुझ पर छेनी से वार किया। तुम्हारे पुरखा मुझे पूजते आये है। देखो मुझे हाथ मत लगाओ। आकाश पर भले ही कमन्द फेकते रहो जिससे चाँद और सितारे नीचे आ जायं पर मेरे शरीर को छेनी से छीलने का सकल्प छोड़ दो। शम्भु बराबर चट्टान को घूरता रहा। जैसे वह उस चट्टान से कहना चाहता हो—ओ मेरी चट्टान, तेरी महिमा का गान गद्दियों की बाँसुरी पर झरनों ने सुना, खेतों ने सुना, पहाड़ों ने सुना। आज झरने खुश हैं, खेत खुश हैं, पहाड़ खुश है। आज मै उस सपने को सच करना जाहता हूँ जो तुम्हारे अन्दर अनगिनत शताब्दियों से मचलता रहा है। इस पर चट्टान खामोश रही। जैसे उस ने गद्दी मूर्तिकार का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया हो।

जब लोगो ने सुना कि शम्भु चट्टान पर हथौड़ा चला रहा है तो वे भाग कर आये और उन्होने उसे रोकना चाहा पर उसने किसी की न मानी। बुड्ढे मोची ने भी उसे बहुत समझाया कि यह बात तो गद्दियों को भी पसंद नहीं होगी और वे बिगड़ उठे तो उसकी जान की खैर नहीं। महाराज अलग नराज़ हो जायंगे और इस बार उसे क्षमा नहीं करेगे। मूर्ति ही गढ़नी है तो और चट्टाने थोड़ी है? कुछ लोग हाथापाई के लिए भी तैयार हुए। पर शम्भु का मौन-व्रत उसका सब से बड़ा सहायक था। थक हार कर लोगों ने कहा—इसे मनमानी करने दो। महाराज तक यह खबर पहुच ही जायगी और वे अपराधी का अपराध क्षमा नहीं करेंगे।

तिलक इस इरादे से सोनमुख आया था कि एक-आध सप्ताह सोनमुख में गुजार कर ऊपर धौलीधार की ओर जायगा और कुमारी बरफों को अपने हाथ से छू कर देखेगा पर वह वहीं

उलझ कर रह गया। और जब से शम्भु ने वह मूर्ति गढ़नी आरम्भ कर दी थी उसने समझ लिया कि इस वर्ष ऊपर जाने की बात सम्भव नहीं हो सकती। शम्भु संकेत द्वारा उसे समझाता कि बहुत सुन्दर मूर्ति बनने जा रही है पर मुख से वह एक भी शब्द न कहता। सूर्य निकलते ही वह चट्टान के पास पहुँच जाता और अपना काम शुरू कर देता। तिलक भी उसके पास बैठा कल्पना करता रहता कि देखें किस की मूर्ति देखने को मिलती है। कभी-कभी बुड्ढा मोची भी उधर आ निकलता। तिलक हँस कर कहता—बैठो, बाबा!" पर वह कहता—"आप बैठिए बाबूजी। मुझे तो पुराने जूते बुला रहे हैं।"

इधर मूर्ति की कुछ-कुछ रूपरेखा सी बन गई थी। यह एक ऐसे व्यक्ति की मूर्ति बनने जा रही थी, जिसे अपनी मंजिल सामने नजर आ रही हो। क्योंकि एक पग आगे उठता दिखाया गया था। कमर से ऊपर तक काम हो चुका था। तिलक ने एक तिरखान से कहकर एक छोटी सी सीढ़ी बनवा दी थी ताकि शम्भु को ऊपर का काम करने में कठिनाई न हो।

अब तो वही लोग जो शुरू में शम्भु को रोक रहे थे कि इस चट्टान पर हथौड़ा मत चलाओ, मूर्ति देखने आ निकलते। जितने मुँह उतनी बातें। पर शम्भु की धुन की सभी प्रशंसा करते थे।

एक दिन बुड्ढे मोची ने हँस कर कहा—"शायद यह किसी गद्दी की मूर्ति बनने जा रही है।"

"गद्दी के साथ तो एक भेड़ भी बनानी चाहिए", तिलक कह उठा "शायद शम्भु भेड़ भी बना दे, क्योंकि अभी एक ओर चट्टान काफी से ज्यादा कटनी बाकी है।"

एक दो दिन से यह खबर गरम थी कि महाराज कोई नया हुक्म निकालने वाले हैं। बुड्ढा मोची बोला—"अब शम्भु की खैर नहीं।"

वे तीन-चार अंग्रेज़ यात्री और उन के साथ की दोनों छोरियाँ धौलीधार से लौटने पर चट्टान के पास आईं। एक छोरी बोली—"अम ऐसा वाला बुट नहीं माँगटा!"

शम्भु को किसी की आलोचना की कुछ परवाह न थी। उसकी छेनी बराबर आगे बढ़ती रही।

तिलक कहना चाहता था कि आप लोग जाइये और अपने देश में जा कर इस मूर्ति के बारे में जो चाहे कहते रहिए। तुम्हारी कौम के हमारे हाकिमों ने इस देश मे दूसरी तरह की मूर्तियां बनवा कर खड़ी की थीं, अब हमारी बारी आई है।'

अंग्रेज़ यात्री चले गये। उनके साथ वे कहकहे लगाती छोरियां भी चली गईं। उस दिन तिलक को अनुभव हुआ कि विदेशी लोगों के लिए यह सम्भव ही नहीं कि वे किसी देश के साथ पूरा न्याय कर सकें। पर झट यह सोच कर कि अंग्रेज़ों ने उस की जन्मभूमि की स्वतन्त्रता उसे लौटाते समय अच्छे खिलाड़ी होने का प्रमाण दिया है, उसे मन ही मन उनकी प्रशंसा करनी पड़ी। फिर भी उन दोनों छोरियों के कहकहे देर तक उसे चुभते रहे।

आखिर एक दिन महाराज के मन्त्री घोड़े पर सवार होकर सोनमुख के अड्डे पर आ पहुँचे। लोग सहम कर रह गये। दो एक दुकानदार खुश हुए कि शम्भु अब पकड़ लिया जायगा। मंत्रीजी के साथ घुड़सवार पुलिस और फौज के अफसर और सिपाही भी थे। मन्त्रीजी ने घोड़े पर बैठे-बैठे महाराज की ओर से घोषणा की—

"महाराज का फरमान है कि सारी प्रजा स्वराज का आनन्द प्राप्त करे। देश से फिरंगी का राज्य चला गया। आज हिमालय भी आनन्द विभोर हो उठा है। कन्या कुमारी तक स्वतन्त्रता की लहरें इस देश की प्रजा को सुखी बना रही हैं। इस स्वतन्त्रता

में हमारी प्रजा भी हिस्सेदार बने यही हमारी इच्छा है। इस के लिए अब प्रजा स्वयं नई सरकार के निर्माण के लिए अपने प्रतिनिधि भेजेगी।"

मन्त्रीजी की आज्ञा से महाराज के फरमान की एक प्रतिलिपि सोनमुख के अड्डे के मुखिया को दे दी गई, और मन्त्रीजी आगे की ओर घूम गये ताकि सड़क के किनारे के ग्रामों में महाराज का फरमान पहुंचा सकें।

सोनमुख के अड्डे के दुकानदार अपने मुखिया को अपना-अपना चन्दा लिखा रहे थे। कुलियों से भी चन्दा मांगा गया। क्योंकि स्वराज-उत्सव तो सब का ही है, अकेले दुकानदारों का नहीं। सोनमुख ग्राम के किसानों और दुकानदारों ने भी चन्दा दिया। यह फैसला किया गया कि ऊपर से नीचे जाने वाले गद्दियों को रोक कर उनसे चन्दा लिया जाय और स्वराज-उत्सव गद्दी छोरे-छोरियों के नाच से शुरू हो।

सात दिन की प्रतीक्षा के पश्चात् गद्दियों के काफिले सोनमुख के अड्डे पर आ पहुँचे। चट्टान का बदला हुआ रूप देख कर सैकड़ों गद्दी गुस्से से आग बगूला हो गये। पर लोगों के कहने-सुनने से वे गुस्से को पी कर रह गये। बहुत से गद्दियों ने अपने-अपने फूल चट्टान के पैरों पर चढ़ा दिये। एक प्रश्न हर एक गद्दी के मुख पर अंकित नजर आता था। वे पूछना चाहते थे कि यह किसकी मूर्ति घड़ी जा रही है। पर अभी इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन था क्योंकि मूर्ति की गरदन से नीचे तक ही छेनी पहुँच पाई थी।

शम्भु जल्दी-जल्दी हथौड़े और छेनी से काम ले रहा था। वह चाहता था कि स्वराज-उत्सव शुरू होने तक किसी न किसी प्रकार सिर की भी कुछ न कुछ रूप रेखा-सी जरूर बनादे।

वह रात भी कितनी सुन्दर थी जब खंडहरों से सटे हुए मैदान में लोग स्वराज-उत्सव मनाने के लिए इकट्ठे हुए। एक

बहुत बड़े घेरे में गद्दियों की भेड़ें जमा कर दी गई थीं। बीच-बीच में भेड़ें ममिया उठतीं। जैसे पूछ रही हों—यह कैसा उत्सव है ? एक बहुत बड़ा अलाव था जिसके गिर्द एक बहुत बड़े घेरे में गद्दी छोरे-छोरियों का प्राचीन नाच आरम्भ हुआ। छोरियों का सुनहरी रंग और भी जगमगा उठा। उनकी मेंढ़ियां लटक-लटक जातीं। उनकी आँखे झुक-झुक जातीं। जैसे वे अपनी सुन्दरता के बोझ से स्वयं ही दबी जा रही हों। बांसुरियां वाले बांसुरियां बजा रहे थे। ढोलिए ढोल बजा रहे थे।

तिलक ने पास खड़े बुड्ढे मोची का कन्धा झंझोड़ कर कहा—"अब तो चाँद और सितारों को भी चाहिए कि नीचे उतर कर गद्दी छोरे-छोरियों के साथ नाचने लगें।"

बुड्ढे मोची ने उन रुपयों में से कुछ रुपये निकाले जो उसने सर्दियों मे खाने के लिए जोड़ रखे थे और अगरोला के हाथ में थमाते हुए उसने कान में कुछ कहा, और अगरोला बाजार की तरफ दौड़ गया।

"क्या मंगवा रहे हो, बाबा!" तिलक ने कहा, "इस समय किस की दुकान खुली होगी ?"

"देखते जाओ," बुड्ढे मोची ने कहा।

थोड़ी देर बाद अगरोला एक पीपा उठाये लौट आया। तिलक ने पूछा—"इस पीपे मे क्या है, बाबा ?"

"गाय का घी है, बाबूजी," बुड्ढा मोची कह उठा, "हवन-यज्ञ तो होना ही चाहिए। स्वराज उत्सव क्या नित-नित आता है?"

अगरोला कहीं से एक बड़ा सा कड़छा भी उठा लाया था। पीपे का मुँह ऊपर से खुला था। बाबा का संकेत पाकर उसने पीपा और कड़छा उठाया और नाचने वाले छोरे-छोरियों से रास्ता मांग कर अलाव के पास जा पहुँचा। कड़छे मे घी भर-भर कर वह आग पर डालने लगा! आग की लपटों को जैसे

नया जोश आ गया। गाय के घी की सुगन्ध चारों ओर फैल गई।

जब अगरोला ने बचा हुआ घी पीपा उठा कर पूर्ण अहुति के रूप मे एक दम अलाव पर फेंक दिया तो एक दम लपटें ऊपर उठीं। उस समय तिलक ने बुड्ढे मोची का सिर अपने दोनों हाथों से घूमा कर कहा—"वह देखो, बाबा, चट्टान कितनी खुश नजर आती है।"

बाबा बोला—"अब चट्टान नहीं, मूर्ति कहो।"

तिलक ने पूछ लिया—"जानते हो यह किस की मूर्ति है?"

बाबा कह उठा—"भला आप ही बता दीजिए, बाबूजी!"

"उसकी जिसका तुम्हे इन्तजार था।"

"किसका इन्तजार था?"

"गांधी बाबा का।"

बुड्ढे मोची ने उछल कर कहा—"तो गांधी बाबा सोनमुख में आ निकले?"

तिलक कह उठा—"चट्टान से पूछ लो।"

छोरियां और छोरे नाच मे मग्न थे जिस मे पहाड़ का लहराव भी था और मैदान का फैलाव भी!

काँगड़ी[1]

हुजूम बेहंगम, हजूम का शोर कभी न थमनेवाला वावेला। 'आज़ाद काश्मीर' का नारा इस शोर मे डूबता और उभरता हुआ नज़र आता। हजूम के रेले भयानक धकापेली का दृश्य पेश कर रहे थे। मालूम होता था कि लोग जेल की दीवार से जा टकरायेगे। जेल का दरवाज़ा तोड़ डालना भी असंभव न था। शेख़ रमज़ान ही ने पहले-पहल 'आज़ाद काश्मीर' का नारा लगाया था। आज वह जेल मे बन्द था। उसे किसी तरह रिहा कराया जाय, बस यही इस बावेले का मकसद था।

डोगरा सिपाही लाठियाँ सँभाले खड़े थे। जेल की दीवार हजूम का मुँह चिढ़ा रही थी। आज तो गोली भी चल सकती थी। पूरे बारह बजे हरि पर्वत के किले से तोप छूटी। इसके साथ ही हजूम का शोर ऊँचा होता गया।

एक तरफ औरते खड़ी थीं जो अपनी बराय नाम खानापुरी पर शर्मिन्दा हो रही थी। एक अधेड़ उमर की औरत ने अपने फेफड़ों की पूरी ताकत से चिल्लाकर कहा, पहले काश्मीर आज़ाद हो ले, फिर शेख़ की राय से सब काम किये जायँगे। ...चल हट, चुड़ैल—कोई बोली क्या, तेरा मतलब है कि हम शेख की

[1] वह अँगीठी जो काश्मीरी लोग पेट से बाँधे रहते हैं।

राय से धान कूटा करेंगे, शेख के हुक्म से भात पकाया करेंगे ?... फिर भी दिन के बारह बजे इसी तरह तोप छूटा करेगी—एक मैली मेंढियों[१] वाली लड़की बोली, शेख इस तोप को बन्द नहीं कर सकता ..अपने दोनों हाथों से चेचक के दाग़ों से भरे हुए गालों को सहलाते हुए उसने बौखलाये हुए हजूम पर एक लम्बी निगाह दौड़ाई। पास खड़ी माँ का कन्धा झँझोड़ते हुए वह बोली, मैं सच कहती हूँ, माँ, आज सरकार शेख को छोड़ देगी...और नहीं छोड़ देगी तो हम क्या कर लेंगे ?—माँ बोली, सरकार तो वही करेगी जो उसके जी में आयेगी। जेल की दीवारें पत्थर की हैं, बेटी, और जेल का दरवाज़ा मोटे लोहे का। इस दीवार को, इस दरवाजे को कौन तोड़ सकता है ? सरकार के पास सब कानून है, सब ताकत है, बेटी ! हजारों आदमियों का हजूम चुपके से तो खिसकाने से रहा—एक बुढ़िया ने शह दी, शेख को सीख़चों के पीछे कब तक रखा जा सकता है ? शेख तो अल्ला से शिकायत कर सकता है। शेख ने हमें जगाया। सरकार नाराज होगई। शेख ने पूछा, मेरा क्या कसूर है ? सरकार ने शेख के हथकड़ी पहना दी। शेख जोर-ज़ोर से हँस रहा था। शेख चाहता तो उसी वक्त अल्ला से शिकायत करता। पर वह हँसता-हँसता जेल में चला आया।

हजूम दायें से बायें और बायें से दायें डोल रहा था। कभी जेल की ओर दबाव ज्यादा हो जाता तो कभी पीछे की ओर। ऐसे मालूम होता कि लहरें सागर-तट से टकराकर उधर ही को जा रही हैं, जिधर से आई थीं।

हर व्यक्ति अपनी टाँगों को सर्दी से बचाने के लिए बार-बार अपने फिरन[१] को जिस्म के साथ लपेटने की कोशिश कर रहा था। फिरन की आस्तीनें चढ़ी हुईं, बाज़ू बाहर लटके हुए जैसे

१ वस्त्रविशेष।

बाँहें सिरे से नदारद हों। नंगे सिर और कुल्ला-नुमा टोपियाँ। सिरों पर मैल की पपड़ी जमी हुई, टोपियों पर मैल की तहें चढ़ी हुई। लम्बा कद, अर्ध-नग्न सीने जिनकी मछलियाँ उभरी-उभरी। आँखें एक सिरे से भूख, बेबसी और नादारी का अमानतदार। लिबास से एक भारी और सड़ाँध-भरी बू उठ रही थी जैसे थोड़ी वर्षा के पश्चात् उपलों के ढेर से निकलती है।

बेपनाह हजूम के नारे डोगरा सिपाहियों के हृदय और मस्तिष्क पर अधिकार जमा रहे थे—जनता की माँग—शेख़ को आज़ाद करो ..जनता की माँग—पुलिस राज बन्द करो ..जनता की माँग—शेखको आजही रिहा करो...पर सिपाहियों के मस्तिष्क के दूसरे हिस्से में कानून का राज्य उसी तरह कायम था। हम भी सरकार का नमक खाते हैं। सरकार की ताकत, हमारी ताकत। हतनियों के बेटे, ये ही तो आज बुरी तरह पिटेंगे—एक सिपाही कह रहा था, यह बावेला फिजूल है। शेख़ रमज़ान बाग़ी है। सज़ा तो अब उसे ज़रूर मिलेगी। एक बाग़ी के लिए इतनी छीना-झपटी का मतलब? हजूम बनाकर चिल्लाने का फायदा?

सब को विश्वास था कि शेख़ को छोड़ दिया जायगा। औरतों के कहकहे इस अस्पष्ट-सी बग़ावत के कोलाहल में ख़लत-मलत हो रहे थे। धकापेल बराबर जारी थी। बर्फ-जैसी सफेद दाढ़ीवाला एक बुड्ढा गुस्से से भरी ज़ुबान चला रहा था। आज शेख़ यहाँ होता तो तुम लोगों पर बहुत लानत-मलामत करता...छोड़ो, बाबा, कोई बोला, इन धक्कों से भी हमारी ताकत का पता चलता है। अभी तो थोड़ा ज़ोर आज़मा रहे हैं। यह हजूम है हजूम। सरकार क्या नहीं जानती कि अल्ला फरमाता है, तेरी जन्नत है तेरी माँ के पैरों के तले; मेरे बन्दे!' शेख़ ने हमे बताया कि माँ का मतलब है मादरे-वतन। हम शेख़

को रिहा कराके छोड़ेंगे ..एक सफेदपोश ने अपने साथी को घूरते हुए कहा, जेल मे भी शेख को क्या तकलीफ हो सकती है ? उसे वक्त पर खाना मिलता होगा। जो वह माँगता होगा सरकार को सात विलायतों से लाकर वही चीज शेख को खिलानी पड़ती होगी। क्यों मैं झूठ कहता हूँ ? ..बावा ने इस सफेदपोश को यों घूर कर देखा जैसे उसकी गुस्ताखी माफ न की जा सकती हो।

अपने ओठों पर जुबान फेरते हुए बावा ने महसूस किया कि चीखें और कहकहे आपस में उलझ गये हैं । जब मजलिस मे घडे बजाये जाते हैं, उस समय गवैया हर किसी को अपने मातहत समझ बैठता है। जब भेड़ें और बकरियाँ ममयाती हैं, चरवाहा एक बादशाह की तरह कदम उठाता है । बावा ने हजूम की ओर देखा । उसे यों महसूस हुआ कि सबका ध्यान उसी की ओर केन्द्रित हुआ चाहता है, सब आवाजें उसी को बुला रही हैं, सब की इच्छा-शक्ति उसे नेता मानने को तैयार है।

धूप के बावजूद सर्दी महसूस हो रही है । बावा ने ऊपर सूर्य की ओर निगाह उठाई ..'ऊपर क्या देख रहे हो, बावा ?'—कोई बोला, 'हमें बताओ हम क्या करें ? हम लाठियों से नहीं डरते, बन्दूकों से नहीं डरते। हम अपना खून बहा सकते हैं। चुप क्यों हो, बावा ? और नहीं तो नारे ही लगाओ।'

'हमारे बुजुर्ग महज नारे नहीं लगाते थे'—बाबा बोला । 'हमारे बुजुर्ग बहादुर थे। शेख ने हमें सब से पहले बताया कि बारहमूले की चट्टानें हमारे ही बजु ः ोने खुद अपने हाथों से तोड़ डाली थीं।'

'और वह जलोद का किस्सा ?'—वह नवयुवक कह उठा, 'क्या फरिश्तों की मदद हमारे बुजुर्गों को बिलकुल नहीं मिली थी?'

बावा ने चिल्लाकर कहा—"बारहमूले की चट्टानें तोड़कर इस

घाटी का बहुत-सा पानी निकाल देने के बाद इस कोसों लम्बी-चौड़ी झील के सरपरस्त जलोद से हमारे बुज़ुर्गों का खुला मुकाबला हुआ। खुद अपने हाथों से हमारे बुज़ुर्गों ने जालिम जलोद को मार डाला था। और अपने हाथों से उन्होंने उसकी लाश पर यह पत्थरों का मकबरा चुन दिया था जो आज हरि पर्वत कहलाता है।"

बाईं ओर से धक्के पड़ने शुरू हो गये। दाईं ओर की इन्सानी दीवार बाबा का इशारा पाकर बाईं ओर को सरकने लगी। बाईं ओर की दीवार ने अपनी भूल महसूस की और वह दाईं ओर की बजाय बाईं ओर ही को घूम गई।

पीछे एक जगह गाली गलौज हो रही थी। धकापेल में किसी का हाथ दूसरे की जेब पर जा टिका था और वह अब इस बेचारे को गिरहकट सिद्ध करना चाहता था। बाबा का बस चलता तो दोनों को डॉट दिलाता। चले आये शेख को रिहाई दिलाने। ये काठ के उल्लू क्या जाने कि काश्मीर की किस्मत का फैसला होनेवाला है और ये अभी तक एक दूसरे को ज़लील करने पर अकड़े खड़े हैं। जाते है तो जायें जहन्नुम मे, बाबा ने झट फैसला कर लिया और उधर से निगाह चुराकर बेपरवाह हजूम को देखने लगा।

घुड़सवार फौजियो का एक दस्ता मौके पर पहुंच चुका था। उनके क़हकहे हजूम के शोर से अलग सुनाई देते थे। इनके बाप हातो, इनके बेटे हातो। जाकर बोझ क्यों नहीं उठाते ये खच्चर?—एक बोला, आज ये हमारे घोड़ों के पैरों तले रौंद डाले जायँगे ...साले हरामी गोले—दूसरे ने कहा, हमें व्यर्थ बुलाया गया। ये तो चार लाठियों की मार नहीं खा सकते। और फिर इन घुड़सवारों का ठट्ठा सबका सब 'शाल शाली शलग़म' और 'बाद बादी बलग़म' पर केन्द्रित हो गया। बाद बादी बलग़म के

मारे हुए हातो क़यामत के दिन तक फौज में भरती नहीं किये जा सकते। पिछले महाराज साहब के जमाने में इन्हे एक अवसर ज़रूर दिया गया था पर ये हमेशा के लिए ठुकरा दिये गये। जाहिल, हकीर, बुज़दिल। हतनियाँ हमेशा ऐसे ही बेटे जनती हैं। साले धूप में बन्दूके रखकर खड़े हो गये थे। महाराज ने पूछा तो बोले—सर्दी से हाथ अकड गये हैं, हुजूर, धूप लगेगी तो बन्दूके भी गरम हो जायँगी और गोलियाँ चलेगी, ठुस ठुस ठुस हमारे घोडे इन पर जरा रहम नहीं करेंगे—एक बाँका युवक बोला, लेकिन ख़ुद मुझे इन पर रहम आ रहा है।

धूप थी। पर बर्फ़ानी हवा भी तो चल पडी थी। हजूम की हरक़त सुस्त होती गई। धकापेल का भयानक दृष्य ख़तम हो रहा था। बाबा ने सोचा यह उसी की कोशिश का नतीजा है। आख़िर लोग इतने जाहिल तो नहीं कि जिसे अपना नेता मान ले, उसी के हुक्म का लिहाज न करे।

औरते खमोश थीं, मस्त, जुगाली करती भैंसों की तरह। माँ मरे बर्फ़ानी हवा की—बुढ़िया अपने फटे-पुराने फिरन को सँभालते हुए बोली, आज बहुत सर्दी है, मैं घर जाती हूँ... आई हो तो तमाशा देखकर ही जाना, दादी—कोई कह उठी, अभी तो पतझड ही शुरू हुई है, जाड़े मे क्या करोगी, दादी? अल्ला के हुक्म से पतझड़ आती है,अल्ला के हुक्म से जाड़ा आता है...मैली मेढ़ियोंवाली लड़की ने अपनी माँ का कन्धा झँझोड़ा। बोली, जाड़ा आयेगा तो क्या बहार न आयेगी, माँ ?...ऊनी फिरन मे उसका शरीर बर्फ़ानी हवा का हमला भली-भाँति सह सकता था। अभी उसका लहू गरम था। घुड़सवार फौजियों की ओर एक लम्बी निगाह दौड़ाते हुए उसने सोचा, उस पर एक जबरदस्त फब्ती कसे। पर यह देखकर कि उसकी आवाज़ फ़ौजियों के कानों तक नहीं पहुंच सकती, वह क्रुद्ध हो उठी।

दादी की खोखली निगाहों को एक शग़ल मिल गया। उसे यों महसूस हुआ कि नई नसल की इस लड़की का खून उसकी बूढ़ी रगों मे पहुंच रहा है ..मेरे बेटे इनका लहू पी लेंगे--दादी ने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में नई अकड़ दिखाते हुए कहा। और वह लड़की झट बोली, मेरे भाई इनकी बोटियाँ चबा जायेंगे। पीछे इनकी बहने रो रोकर इन्हें पुकारेंगी...बहनों ने क्या कसूर किया कि भाई मार डाले जायेंगे?--दादी ने पोपले मुँह से हँसते हुए पूछा। लड़की ने इस खुले मैदान का अहाता करने वाले चिनारों की ओर देखना शुरू कर दिया था। चिनारों के पत्ते अब हरे न थे। वह सोच रही थी कि पतझड़ शुरू होते ही हरा रंग लाल रंग मे कैसे बदल जाता है। उसका दिल इन चिनारों की ओर भागने को ललचा उठा, जहाँ पत्ते गिर-गिरकर पूरा फ़र्श तैयार कर चुके थे। पिछले वर्ष उसने अपनी गली की सब लड़कियों से ज्यादा पत्ते जमा किये थे। अब की फिर वह अपनी सब सहेलियों से ज्यादा पत्ते जमा करने को ललचा उठी ..दादी बोली, मेरे कानों में धब-धब धब-धब की आवाजें आ रही हैं। सारा काश्मीर इधर ही को उमड़ा आता है। अब इन फौजियों का घमण्ड टूट जायगा। वे खुद सरकार से कहेंगे कि शेख को छोड़ दो। वे आ रहे है। उनके क़दम एक साथ उठते सुनाई दे रहे है।

बर्फानी हवा और भी तेज हो गई थी। बाबा की ओर बहुत से लोग बड़े ध्यान से देख रहे थे, जैसे वह अभी-अभी एक होशियार मदारी की तरह अपने थैले से विलायत का कोई बेनज़ीर फल निकालकर दिखा सकता हो...दौलत ऐसे आती है जैसे बर्फ गिरती है, दौलत ऐसे जाती है जैसे बर्फ पिघलती है—कोई बोला, पर हमें दौलत नहीं चाहिए...और बाबा बोला, हाँ, हमें दौलत नही चाहिए, हमें आज़ादी चाहिए। बर्फ

आहिस्ता-आहिस्ता गिरती है और] झट-झट पिघलती है। आये साल बर्फ गिरती है, आये साल बर्फ पिघलती है। पर ग़ुलामी अनगिनत बरसों से क़ायम है। शेख़ ने हमे आजादी का सबक़ पढ़ाया। पर शेख़ को सरकार ने पकड़ लिया। हम शेख़ को आज़ाद करायेंगे...पहले बहुत बर्फ गिरा करती थी, अब उतनी बर्फ नहीं गिरती बाबा—सफेदपोश बोला, अब शायद अल्ला नाराज़ हो गया है...अब क्या यह बर्फ का किस्सा कभी ख़तम न होगा?—बाबा झुँझलाया, हाँ, तो लगे हाथों मैं तुम्हे शेख़ की बात सुना दूँ। शेख़ की बात कभी झूठी नहीं हो सकती। हमारे बुजुर्ग बहादुर थे। इस कोसों लम्बी-चौड़ी झील का पानी निकालने के बाद जब वे इस घाटी मे पहाड़ों से उतर-कर आबाद हो गये तो पड़ोसी देशों से बहुत से आक्रमणकारी काश्मीर मे घुस आते। वे हमेशा गरमियों मे हमला करते और हमारे बुजुर्ग डटकर लड़ते। कोई आक्रमणकारी काश्मीर पर कब्जा जमा लेता तो सर्दियों मे, जब बर्फ सब रास्ते बन्द कर देती, दुश्मन को लेने के देने पड़ जाते। हमारे बुजुर्ग उसे मार भगाते। शेख़ सच कहता है। हमारे बुजुर्ग बर्फों से डरते न थे ..सफेदपोश ने दायें हाथ से अपनी ठोड़ी को सहलाते हुए कहा, हाँ, बाबा, बुजुर्ग बर्फ से डरते न थे और शायद जब से हम गुलाम बने बर्फ भी कम होती गई। पिछले वर्ष उसके अगले वर्ष से कम बर्फ गिरी थी। भला हो आग का यह न हो तो बर्फ, हमें मार डाल। अब कम बर्फ गिरती है तो हम कम आग तापते हैं। पहले ज्यादा बर्फ गिरती थी तो हम ज्यादा आग तापते थे। बर्फ से सिर्फ आग बचाती है। बर्फ सिर्फ आग से डरती है। बर्फ, सिर्फ आग ही का लिहाज़ करती है हाँ, बेटा,—बाबाने कहा, बर्फ सिर्फ आग ही का लिहाज़ करती है। शेख़ भी यही कहता है ..क्या कभी फिर वह ज़माना आ सकता है जब फिर

पहले जितनी बर्फ गिरेगी ?—किसी ने पूछा, क्या यह झूठ है कि अल्लाह के हुक्म से ज्यादा बर्फ गिरती है और अल्लाह के हुक्म से कम बर्फ गिरती है ?. ज्यादा बर्फ से क्या लोगे ?—सफेदपोश ने हँसकर पूछा. ज्यादा आग कहाँ से लाओगे ? मैं चाहता हूं कि कि बर्फ से छुटकारा ही मिल जाय ताकि आग की गुलामी की जरूरत न रह जाय ।

मालूम होता था कि हजूम भी बर्फ की तरह जमता चला जाता है । अब न पहले-सा वावेला था, न वह पहली-सी धकापेल । पुलिस के सिपाही और घुड़सवार फ़ौजी हैरान थे कि बर्फानी हवा ने ऐसी क्या लोरी दी कि हजूम को मैदान में खड़े-खड़े नींद आ रही है यार, मैंने सोचा था कि मेरी लाठी आज काश्मीरियों का लहू पियेगी—कोई बोला, यह प्यासी की प्यासी रह जायगी . अभी कुछ नहीं कहा जा सकता—बाईं ओर से किसी ने कहा, शायद आज गोली चल जाय । ये लोग जेल पर हमला करेंगे और हाकिम गोली चलाने का हुक्म सुना देंगे.. ठहरो, बेटा जब हुक्म मिलेगा तो खूब एड़ी मार-मार कर तुम्हें दौड़ाऊँगा—एक घुड़सवार अपने घोड़े को पुचकार रहा था । अभी अफसर जेल के अन्दर मशविरा कर रहे हैं, बेटा, और अभी तक हजूम ने कानून की कुछ बेअदबी भी तो नहीं की ..

बाबा हैरान था । शायद ये लोग बर्फ की तरह जम जाने पर मजबूर हैं । इतनी आग अब कहाँ से आये कि यह फिर से पिघलने लगे ? उसे बर्फानी हवा पर गुस्सा आ रहा था । उसने चिल्लाकर कहा—"अरे तुम्हारी आग को क्या हो गया ।"

बाबा के समीप कुछ लोग फिर से हिलने लगे । मालूम होता था, अभी आग बुझी नहीं और ये लोग तमाम हजूम को गरमा सकेंगे और फिर यह लशकर का लशकर जेल के दरवाजे पर

टूट पड़ेगा । उन्हे अपना फैसला भूल तो नहीं गया। आज सूर्य डूबने से पहले शेख को छुड़ाना होगा 'अरे तुम्हारी आग को क्या हो गया।' बाबा का यह बोल असर रखता था। उसके दाये-बाये लोग तनकर खड़े हो गये। वे खाँस-खाँस कर गला साफ करने लगे ताकि नारा लगाते वक्त आवाज़ साफ और जोरदार निकले। उस वक्त बाबा ने एक मदारी की तरह चिल्लाकर कहा—आजाद काश्मीर, और जब लोगो की आवाजे उलझती सुलझती हुई 'ज़िन्दाबाद' कह उठीं तो उसे यकीन हो गया कि शेख़ का पैगाम बेकार नहीं गया। आज हम शेख़ को छुड़ायेंगे, कल हम आज़ादी हासिल करेंगे। शेख़ खुद कहेगा, हाँ, अब माँ के पैरों तले जन्नत आबाद है। अगर शेख़ को गिरफ्तार न कर लिया जाता तो हम अज़ाद हो चुके होते। ईदगाह मे तक़रीर करते हुए शेख़ ने कहा था, हम सात दिन के अन्दर-अन्दर आज़ाद हो जायँगे। लेकिन हम कमज़ोर निकले। शेख़ को हम से छीन लिया गया। पहले शेख़ की रिहाई, पीछे हमारी आज़ादी। हम आजाद होकर रहेंगे। हाँ, हमारी आग अभी बुझी नहीं...हजूम के नारे ऊँचे उठते गये। फिर पहला-सा कोलाहल पैदा हो गया। लोग चिल्ला रहे थे...जनता की माँग—शेख़ को आजाद करो ..जनता की माँग—काश्मीर को आजाद करो . जनता की माँग—प्रजाराज कायम करो...

लोग बाबा की ओर आँखे उठाये खड़े थे। एक ओर से कुछ घबराये हुए लोग आवाजे कसने लगे—

जब लीडर ही बुजदिल हो तो लोग क्या कर सकते है?

एक सत्तरा-बहत्तरा आदमी कैसे लीडर बन सकता है?

यह किधर का दबंग है?

कहाँ शेख़, कहाँ यह बुड्ढा, हाँ जी!

यह तो अब शिकारा भी नहीं ले सकता।

इसका मुँह पोपला, इसका दिमाग़ खोखला।

इस शेख़चिल्ली को तो क़ब्रिस्तान में भी जगह नहीं मिल सकती।

बाबा डर गया। ये अपमान-भरी अवाजें उसे इतनी बुरी नहीं लगी थीं। पर अभी वह ज़िन्दा रहना चाहता था। यह भी हो सकता था कि लोग उसका फिरन फाड़ डालते और उसे अपने पैरों तले रौंदते चले जाते। वह लाख चीख़ता-चिल्लाता, लोग बिल्कुल न सुनते। उसकी हड्डियां टूट जातीं...लेकिन फिर से सँभलकर उसने नारा लगाया—शेख़ रमज़ान, और जब हज़ारों आवाज़े 'ज़िन्दाबाद' कह उठीं तो उसे यकीन हो गया कि अभी तक हजूम की बागडोर उसी के हाथ में है। शेख़ हमारा इमाम है—बाबा बोला, शेख़ हमें सदियों की खोई हुई आज़ादी दिलायेगा। ईदगाह मे तक़रीर करते हुए शेख़ ने कहा था, पुराना काश्मीर ख़तम होकर ज़मीन के नीचे दफन हो गया। आज नया काश्मीर पैदा हो रहा है। हमें आजादी मिलकर रहेगी जो कि बर्फ़ से लड़नेवाले हमारे बुज़ुर्गों को नसीब थी।

औरतों की टोली मे मैली मेंढ़ियोंवाली लड़की चिनारों के शरत्-ग्रस्त पत्तों की ओर देख रही थी। पत्तों का लाल रंग देखकर उसे ख्याल आया कि चिनारों के सीने मे छिपी हुई आग की लपटें बाहर निकल रही हैं। एक बार फिर उसे खयाल आया कि यहां से भाग जाय और चिनारों के नीचे गिरे हुए सब पत्ते जमा कर ले और उन्हे घर ले जाये। इनके कोयले बना ले। पहले इन्हें आग लगा दे और जब ये अधजले हो जायँ तो पानी छिड़क कर इन्हे बोरों में भरने के लिए बुझाकर रख ले। यह हुनर उसने मा से सीखा था। हर लड़की यह हुनर जानती थी। चिनार के पत्तों के कोयले अच्छे दामों पर बिक जाते थे। इन्हें बेचकर वह नया फिरन सिला लेगी—ऊनी फिरन। बाकी कोयलों से जाड़े भर आग तापते हुए घरवाले उसकी ओर तारीफ़ी निगाहों से देखा

करेंगे। जाड़े का पाला चिनार के पत्तों को आग ही से तो काटा जा सकता है। इन कोयलों को ज़रा-सी आग दिखा दो, बस यह जलते रहेंगे—बुझने लगे तो थोडे से कोयले और डाल दो। राख में भी आग लग जाती है। यह चिनार के सीने की आग होती है जो पहले हरे रंग के नीचे दबी रहती है...मुझे तो सच नहीं आता—दादी बोली, पटवारी का बेटा कहता है कि पहले काश्मीर में चिनार न थे, मुगलों ने बाहर से लाकर चिनारों के बीज यहाँ बोये...वह लड़की बराबर उन चिनारों की ओर देख रही थी जो इस मैदान का अहाता किये खड़े थे। दादी ने हँसकर कहा—"बर्फ तो अल्ला का भी लिहाज़ नहीं करती, बेटी, बर्फ सिर्फ आग से डरती है। पटवारी का बेटा तो पागल है। चिनार हमेशा से यहाँ खडे है। वह बकता है"..."छोड़ो ये बातें, अम्मा"—उस लडकी की माँ बोली—"शेख़ का नारा लगाओ। जो आग शेख़ ने सुलगाई है वह हमें हमेशा ज़िन्दा रखेगी। हमने शेख़ को अपने जेवर तक दे डाले। देहात से भी चाँदी के बोरे भर-भरकर लाये गये। औरतों ने शेख़ को सब से ज्यादा मदद दी है।"

जेल के दरवाजे पर खड़े हुए सिपाही चौंक उठे। हजूम फिर हरकत में आ रहा था ..जागी हुई बगावत सोती नहीं—कोई बोला, आज जरूर बलवा होगा। हम भी सरकार का नमक खाते हैं। हमारी लाठियाँ मजबूत हैं .आज दनादन गोलियाँ चलेगी-एक घुड़सवार कह रहा था, रोज-रोज तो यह तमाशा देखने को नहीं मिलता। सरकार की उमर बहुत लंबी है। सरकार को कुछ खतरा नहीं। हमारी मुलाजमत बरकरार रहेगी...हजूम के नारे ऊँचे उठते जा रहे थे। एक घुड़सवार ने हँसते हुए कहा, काश्मीर आज़ाद है। काश्मीर अपना, सरकार अपनी। कोई इन पागलों से पूछे कि वे क्या चाहते हैं?...शेख़ रमज़ान बागी है—कोई बोला, बागी के लिए हमेशा जेल होती है, हमेशा लम्बी सज़ा...

जेल में शेख़ को निहायत शराफ़त से रखा गया है—बाईं ओर से आवाज़ आई, पहले वक्तों की और बात थी। बाग़ी का सिर क़लम करने का हुक्म दे दिया जाता था, उसे शराबी हाथी के पैरों तले रौंदवा दिया जाता था...तक़रीर झाड़ना और दावत उड़ाना, यही शेख़ का काम रह गया था—दाईं ओर से आवाज़ आई, चन्दे दे-देकर लोग तंग आ चुके थे। हर औरत के ज़ेवर उतर गये। मुलकी खिदमत का यह ढोंग अब खतम हुआ... सरकार मेहरबान है—पीछे से कोई बोला, अभी हुक्म मिल जाय कि चलाओ दनादन गोलियां तो हम तमाम हजूम को यहीं भूनकर रख दें...

हजूम जेल की ओर सरक रहा था। कोलाहल में कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी। यह तो कढ़ी का उबाल है—एक घुड़सवार बोला, इसे बग़ावत मत समझो। काश्मीरी और बग़ावत। ये बेजोड़ बातें है। ये वर्फों के मारे हुए हमारा क्या मुक़ाबला करेंगे? हम हथियारबन्द, ये निहत्थे। बहुतों को तो यह भी इल्म नहीं कि बन्दूक किधर से चलती है और बाग़ी बनते इन्हें शरम न आई...शेख़ की और बात है—पीछे से कोई बोल उठा, वह कुछ पढ़-लिख गया है। सरकार ने उसे वज़ीफ़ा दिया था। अब वह सरकार का नमक हराम करने की क़सम खा चुका है। सरकार ने कहा, आओ, बेटा, जेल में रहो। पहले थोड़ा और नमक खाओ; फिर एक साथ सब नमक हराम कर लेना...

बाबा ने देखा कि पल-पल बढ़ता हुआ हजूम मौत के मुँह मे जा रहा है। लोग चिल्ला रहे थे—

आज लहू बहाना होगा।
हम शहीद हो जायँगे। आज हमारा इम्तहान है।
हमने भी माँ का दूध पिया है।

"फौजियों के लिए तो यह तफरीह का सामान होगा"—बाबा बोला, "क्या मौत के मुँह में जाना ज़रूरी है ?"

"मर जाने से तो ज़िन्दा रहना अच्छा है"—सफ़ेदपोश चिल्ला उठा।

"ग़ुलाम की ज़िन्दगी ही क्या है ?" बाबा ने पलटकर कहा, "मुझे शेख़ की बात याद है। मेरी बच्ची से शेख़ ने कहा कि ख़ूब इल्म हासिल करो, बेटी, यही इल्म फिर दूसरी लड़कियों में बाँट देना। और फिर हर लड़की राजो बन जायगी। और राजो मेरी बेटी हँस पड़ी थी। वह चिनार का एक पत्ता उठा लाई जिसे एक कीड़े ने कुछ इस तरह काट डाला था कि उस पर 'शेख़' के लफ़्ज़ का गुमान होता था। इसे देखकर शेख़ हँस पड़ा। बोला मैं समझ गया, राजो बेटी, तू यह कहना चाहती है ना कि पत्ते-पत्ते पर शेख़ लिखा हुआ है। फिर बात का रुख़ मेरी तरफ़ पलटते हुए कहा था, आज हर आदमी को अपना लीडर बनना होगा—ख़ुद अपना शेख़। सिर्फ़ एक शेख़ रमज़ान से आज़ाद काश्मीर का सपना सच नहीं हो सकता। अब शेख़ की इस बात पर ग़ौर करने का वक़्त आ चुका है। मौत के मुँह में तो जब चाहें जा सकते हैं।"

"कोई आदमी आगे न बढ़े" सफेदपोश ने चिल्लाकर कहा। दायें बायें से यह आवाज़ गूँज उठी—कोई आदमी आगे न बढ़े। जैसे यह भी एक नारा हो।

कुछ लोग, इसके बावजूद आगे बढ़ने के लिए ज़िद कर रहे थे। लेकिन थोड़ी धकापेल के बाद हजूम फिर से जमने लगा। पीछे की तरफ़ लोग अभी तक चिल्ला रहे थे...काश्मीर को आज़ाद करो...पुलिसराज बन्द करो ..प्रजाराज कायम करो।

"जब लीडर जेल में चला जाय तो इसी तरह होता है," सफ़ेदपोश बोला, "लेकिन शेख़ कोई मामूली लीडर नहीं।"

"शेख़ सच कहता है," बाबा कह उठा, "ग़ुलाम हो जाने के बाद हमारे बुज़ुर्गों ने पै-दर-पै बहुत से हमला-आवरों को काश्मीर में दाख़िल होते देखा। एक आता, एक चला जाता। हमारी ज़िन्दगी के हर हमले के दौरान में कुछ दायरे-से पैदा होते जो डल या जेहलम की सतह पर कंकड़ फेंकने से पैदा होते हैं। लेकिन जैसे डल या जेहलम के सोये-सोये से पानियों पर ये दायरे क़ायम नहीं रहते उसी तरह हम पर भी इन हमलों का असर जायल होता रहा। लेकिन अब वक्त एक नई करवट ले रहा है..."

"हाँ, बाबा, वक्त एक नई करवट ले रहा है," सफेदपोश ने चिल्लाकर कहा।

"शेख़ सच कहता है," बाबा बोला, "डल तो ख़ैर एक झील है, जेहलम तो दरिया है! जेहलम के सोये-सोये से पानी को आजाद काश्मीर मे खूब जागकर बहना होगा। आज काश्मीर को शेख़ जैसे बेटों की ज़रूरत है जो उसका पैग़ाम घर-घर पहुँचा सकें। आज हर गाँव को एक शेख़ चाहिए, हर घर को एक शेख़ चाहिए।"

एक अधेड़ उमर का आदमी अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए कह उठा-"अपने हाथों सेकाढ़ा हुआ एक शाल मैंने शेख़ को पेश किया था, बाबा, शेख ने मुसकराकर कहा था, इस शाल पर तुम अपनी मौलिक कला का प्रयोग कर सकते हो तो क्या काश्मीर की धरती पर कोई नया नमूना नहीं काढ़ सकते?"

बाबा ने इस फनकार की पीठ ठोंकते हुए कहा—"क्यों नहीं! हम काश्मीर की धरती पर जरूर एक नया नमूना काढ़ेंगे।"

सफेदपोश ने इस फनकार के गॅदले-से रंग के लिबास की ओर घृणा से देखा और कहा—"यह नमूना काढ़ने से पहले इस से कहो, बाबा, कि अपने फिरन को जरा साबुन भी दिखा दे। आजादी से पहले सफ़ाई की जरूरत है।"

बाबा हँस पड़ा। बोला–"मेरा फिरन कौन-सा साफ़ है, बेटा? मैं भूखा हूँ। सफाई से पहले भात की ज़रूरत है।"

सफेदपोश ने झेंपने की बजाय औरतों की टोली की ओर देखते हुए कहा—"अब भला कोई उस लड़की से पूछे कि उसकी मेंढ़ियाँ मैली क्यों हैं, क्या अपने दूल्हे के आने से पहले गुस्ल नहीं करेगी, नये सिरे से मेंढ़ियाँ नहीं गुंधवायेगी?"

"सफाई भी जरूरी है, बेटा," बाबा बोला, "शेख सच कहता है। आज़ाद काश्मीर की औरतें सचमुच ही हूरें बन जायँगी। उनकी मेंढ़ियों से इतर की खुशबू आयेगी। उनके फिरन चमकेंगे।"

बर्फानी हवा का जोर और भी बढ़ गया। लोग अपने फिरन अपने जिस्म के साथ भींच-भींच कर सर्दी से बचने की कोशिश करने लगे। लेकिन बर्फानी हवा और भी तेज़ होती गई। हजूम जम गया, हजूम की धकापेल जम गयी, हजूम का बावेला जम गया। हाँ, इस बाजू की हरकत अभी खतम नहीं हुई थी, जैसे बर्फ के नीचे से दरिया बह रहा हो।

"क्या कभी यह भी सोचा तुमने कि हम गुलाम क्यों होगये थे?"—बाबा ने पूछा।

सफेदपोश ने मानो बुड्ढे की बागडोर सँभालते हुए कहा—"बताओ, बाबा, हम गुलाम क्यों हो गये थे। यह बात तो शेख ने भी नहीं बताई।

"अब शेख अपनी जगह है, बेटा, मैं तो शेख नहीं।"

"लेकिन, बाबा, तुम खुद कह चुके हो कि शेख का फरमान है हर आदमी अपना शेख खुद बने।"

"तो तुम खुद समझ लो कि हम गुलाम क्यो हो गये थे।"

"तुम समझा दो तो कौन बुराई है, बाबा? अपना शेख बनते कुछ देर तो लगेगी ही।"

"तो सुनो। सच्ची बात तो यह है कि जब से हमने आग की गुलामी की हम गुलाम हो गये।"

"वह कैसे?"

"हमला-आवर हमला करते और हमारे बुजुर्ग उन्हे मार भगाते। फिर एक चालाक हमला-आवर आया। उसने हमें आग की गुलामी सिखाई। उस साल हमारे बुजुर्ग दुश्मन को मार भगाने में कामयाब न हो सके। वे बैठे आग तापते रहे। वह बहादुरी चली गई। बुज़दिली आ गई।"

"हाँ, बाबा,—काश्मीरी बैठा काँगड़ी की आग तापता रहता है।"

"काँगड़ी बाहर से आई, बेटा—वह होशियार हमला-आवर इसे अपने साथ लाया। फिर घर-घर काँगड़ी घुस गई।"

"हाँ, बाबा,—घर में दस आदमी हैं तो हरेक की अपनी-अपनी काँगड़ी—तो दरअसल काँगड़ी ही हमारी दुश्मन हुई न, बाबा?—तो दरअसल काँगड़ी ही हमारी गुलामी का सबब हुई ना!"

सफेदपोश के शब्द बाबा के दिमाग़ में गूँज उठे। आज उसके सामने तसवीर का नया रुख़ उभरता गया। उसने चिल्लाकर कहा—हाँ बेटा, दरअसल काँगड़ी ही हमारी गुलामी का सबब हुई। दायें-बाये से ये शब्द गूँज उठे और तमाम हजूम के आखिरी किनारों तक घूम गये!

"इस वक्त हर किसी के पास काँगड़ी मौजूद है, बाबा!" सफेदपोश चिल्लाया।

बाबा ने अपना फिरन उठाकर अन्दर से अपनी काँगड़ी निकाली जिसमें चिनार के पत्तों की आग बुझती जा रही थी। उसे खड्ड की ओर फेंकते हुए वह बोला—"अब हम अन्दर की आग तापेंगे। काँगड़ी ने हमें नामर्द बनाया—गुलाम बनाया।

लोगों के दिमाग़ अभी तक गुलामी की काँगड़ी से छुटकारा न पा सके थे।

और बाबा ने उस चट्टान पर खड़े-खड़े सोचा और शेख़ रमजान ?

कबरों के बीचोबीच

दस लाख भूख-मौतें, पन्द्रह लाख, उन्नीस लाख और इस हफ्ते कुल जमा चौबीस लाख। और अभी तो इस भयानक दुर्भिक्ष का जोर बढ़ रहा था...

गीता के मस्तिष्क में उस समय एक लोरी के स्वर घूम रहे थे : 'छेले घुमालो पाड़ा जुड़ालो, वर्गी एलो देशे : बुलबुलिते धान खेयेछे खाजना देव किशे ?' अर्थात् बच्चा सो गया, महल्ला शान्त हो गया। देश में वर्गी आ गये। बुलबुलों ने धान खा लिया। अब लगान कैसे देंगे ?

चलते-चलते उसने यह लोरी अपने साथियों को सुनाई। जाफ़री ने सबकी ओर से पूछा—"यह वर्गी क्या बला होती है, गीता ?"

"भयानक वर्गी ! ..नागपुर के राजा रघुजीराव भोंसले के सिपाही वर्गी कहलाते थे।"

अली अमजद बोला—"मेरा ख्याल है कि इस लोरी में किसी महत्त्वपूर्ण घटना की ओर इशारा किया गया है।"

गीता पहले चुप रही। फिर जब साथियों की फुस-फुस बन्द हो गई, वह बोली—"बंगाल की यह लोरी मुझे सदा उदास कर जाती है। नवाब अलीवर्दी खाँ का समय था। वर्गी मराठे बंगाल में घुस आते थे। ये वे खूनी रीछ थे, जिनके पंजों से साँस

खींचकर लेटी हुई जनता भी न बच सकती थी। नवाब उनसे बचने के लिए सदा उन्हें अपने खज़ाने से दे-दिलाकर लौटा देता। जनता हैरान थी कि इतना लगान कहाँ से कुछ दे। बुलबुलें अलग धान की बालियाँ नोचती रहतीं।"

जाफरी कह उठा—"मेरा तो ख्याल है कि यह क़हत भी कोई वर्गी है।"

"भयानक वर्गी!" गीता बोली।

और वर्गियों से कहीं अधिक भयानक था यह दुर्भिक्ष। आज जलपान किये बिना ही वे अपनी अगली मंज़िल की ओर चल पड़े थे। आज वह उदास बंगाल की उदास सड़क पर उदास-उदास चले जा रहे थे।

"आगे पेटे किछु डाल—आगे पेटे किछु डाल—" गीता चिल्लाने लगी। अर्थात् पहले पेट में कुछ डाल ले। यदि वह जलपान कर सकी होती तो शायद उसे एक फकीर की यह आवाज याद न आती। और फिर कलकत्ता के फुटपाथों पर पड़े हुए भूख के मारों की चीख़-पुकार उसके कानों में जिन्दा हो उठी... सर्वनेशे क्षुधा!...आमार पोड़ा कपाल!.. अभागा कोन दिके जाय?...पोचे मर!... पोका पड़े मर!...अर्थात् सर्वनाश करनेवाली भूख! हमारा जला हुआ भाग्य! अभागा किस ओर जाय? सड़ कर मर! पड़-पड़ कर मर!..सर्वनाश करनेवाली भूख ने माताओं की ममता तक को ख़त्म कर डाला था और वे आज अपनी कोख के बेटों तक को गालियाँ दे रही थीं—सड़कर मर! कीड़े पड़ पड़-कर मर!

सातों साथियों का यह काफला ऊँटों के भटके हुए कारवान की तरह उदास-उदास चला जा रहा था। सबसे आगे गीता थी। वह खादी की श्वेत साड़ी और लाल ब्लाउज पहने हुए थी। अपने कन्धे पर अपना सामान लटकाये हुए और एक हाथ

में पार्टी का झण्डा उठाये हुए, जिसकी लाल ज़मीन पर श्वेत हथौड़े और हँसिये की आकृति भी मटमैली और उदास-उदास नज़र आती थी, उसके पीछे जाफरी और फिर अमजद, अली अख्तर और भूषण और उनके पीछे पराशर और कपूर। सबके तन पर कमीज़ और निकर। अपने-अपने हिस्से का सामान उठाये हुए। सब बराबर के कामरेड हर तरह के भावुक शिष्टाचार से आज़ाद।

उनके पास रोटियाँ तो थीं ही नहीं कि लोक-कथा के पथिक की तरह उन्हें किसी वृक्ष की घनी छाया में कपड़ा बिछाकर फैला देते और बारी-बारी ऊँचे स्वरों में कहते जाते—एक खाऊँ, दो खाऊँ, तीन खाऊँ ? या सब की सब खा जाऊँ ?

धूप अब और भी तेज़ हो गई थी। सातों साथियों के चेहरों पर वह पतली-पतली सुइयों की तरह चुभने लगी। गर्द उड़कर उनके वस्त्रों पर पड़ रही थी। सुरमे की सी धूल मीलों तक फैली हुई थी। और वातावरण में मुर्दा मांस की बदबू कुछ इस तरह समाई हुई थी कि उससे छुटकारा पाना असम्भव प्रतीत होता था।

ऊँचे-ऊँचे नारियल उदास थे। कटहल और महुआ के वृक्ष उदास थे। आम और शहतूत भी उदास थे। और क्षितिज भी उदास-उदास बल्कि धुआँ-धुआँ नज़र आता था।

हवा के झोंके के साथ मुर्दा मांस की बदबू का रेला आकर गीता से टकरा गया। उसने सोचा, परे झाड़ियों में कोई लाश पड़ी सड़ रही होगी। ज़रूर यह आदमी के मुर्दा मांस की बदबू थी। पर गिद्ध या चील का कहीं पता न था। झट उसे पुरानी गाली याद आ गई—'तोर भोड़ा के चीले ओ खाबे ना !' अर्थात् तेरी लाश को चीलें भी नहीं खायेंगी ?

जाफरी बोला—"क्या सोच रही हो, गीता ?"

गीता ने मुड़ कर जाफ़री की ओर देखा। वह मुसकरा तो न सकी, चलते-चलते बोली—"यह प्रतीत होता है यहाँ समीप ही किसी की लाश सड़ रही है।"

अजमद कह उठा—"लाश होते तो गिद्ध भी होते।"

अली अख्तर बोला—"गिद्ध न होते तो चीलें ही होतीं।"

सड़ती हुई लाश से किसी को कुछ दिलचस्पी न थी। और सच तो यह है कि वे डर गये थे कि कहीं सड़ती हुई लाश मिल गई तो उसे ठिकाने लगाने की मुसीबत आ खड़ी होगी।

अपने कालिज में ये सब लड़के खूबसूरत लड़कियों का ख़ास ध्यान रखते थे। कपूर को खूब याद था कि जब गीता उनके कालिज में पहले रोज नाम लिखाने आई थी तो वह किस तरह झूम उठा था। उसने अपने सब मित्रों का ध्यान गीता की साड़ी की ओर खींचते हुए कहा था—'खलीज बंगाल की कुल नीलाहट यहाँ जमा हो गई है।' उस समय वह यह न जानता था कि एक दिन वे भूख-मौतों के आँकड़े जमा करने के लिए गीता के नेतृत्व में एक टोली बना कर देश की सेवा कर पायेंगे।

कपूर ये आँकड़े जमा करते-करते पहले अकसर झुँझला-कर रह जाता था। किसी भूखे के मुँह में कुछ डाला जाय या प्यासे के मुँह मे जल की बूँद टपकायी जाय तो कुछ सेवा भी हो। वह अपने साथियों से वाद-विवाद छेड़ देता। उसका मस्तिष्क उस पगडण्डी का रूप धारण कर लेता जो धूल की गहरी धुन्ध में गुम हो गई हो। गीता अपने गले पर जोर डालकर कहती—यह जो खाते-पीते प्रान्तों से अब बगाल में अनाज आ रहा है, इसमें भूख-मौतों के आँकड़े जमा करने का आन्दोलन ही का सब से बड़ा हाथ है। यह अनाज की गाड़ियाँ धड़ाधड़ कलकत्ते पहुँच रही हैं, यह जो स्थान-स्थान पर मुफ्त लंगर खोले जा रहे हैं, हमारे इस आन्दोलन ही की सहायता

से। विचार तो करो हमारे जैसी और कितनी टोलियाँ बंगाल के दुर्भिक्ष-पीड़ित भागों में यह सेवा कर रही होंगी। और कपूर चुप रह जाता।

'कम्युनिस्ट पार्टी जनता की पार्टी' गीता ने सिंहनाद किया और उसने मुड़कर अपने साथियों की ओर देखा। उसकी आँखों मे एक कुँवारी मुस्कान नाच उठी। और चलते-चलते सब साथियों ने मिलकर सिंहनाद किया—कम्युनिस्ट पार्टी जनता की पार्टी। उनकी भूख तो किसी तरह दब न सकी। पर यह भरोसा भी कुछ कम न था कि क्लियोपेटरा उदास नहीं रही।

कपूर को सहसा एक फ्रांसीसी लेखक की सूक्ति याद आ गई—'स्त्री को एड़ी से लेकर चोटी तक परखना चाहिए, जैसे मछली दुमसे लेकर सिर तक जाँची जाती है।' गीता भी एक मछली ही तो थी जो बंगाल की खाड़ी से उचक कर धरती की लहरों पर थिरकने लगी थी। पर अगले ही पल उसे झुँझलाहट हुई। उसी लेखक का दूसरा विचार उसे झंझोड़ रहा था—'हमारे सारे संघर्ष का उद्देश्य केवल आनन्द की तलाश है, पर कुछ ऐसे शोक हैं जिनकी उपस्थिति मे आनन्द की अभिव्यक्ति से शर्म आनी चाहिये।' ठीक तो था। उसे अपने ऊपर शर्म आने लगी। क्लियोपैटरा लाख मुसकराये, यहाँ इश्क का प्रश्न ही न उठना चाहिए।

पराशर बोला—"कहो कामरेड कपूर, क्या सोच रहे हो?"

कपूर ने गीता के हाथ में झण्डे की ओर देखा और वह बोला—"सोचने की भी तुमने एक ही कही, कामरेड पराशर!"

भूषण कह उठा—"भूख है और मौत है। इससे अधिक आदमी सोच ही क्या सकता है?"

फिर पराशर ने जापानी बमबारी का ज़िक्र छेड़ दिया। इस

पर सब साथियों ने अपना-अपना गुस्सा निकाल लिया। पर वातावरण बराबर मुर्दा मांस की बदबू से बोझल था।

यह एक छोटी-सी रेलगाड़ी ही तो थी। ऊँघती चाल से चली जा रही रेलगाड़ी। लाल झण्डे वाली गीता इस रेल के लिए इंजन बनी हुई थी। यह सब उसी की शक्ति थी कि रेल आगे बढ़ी जा रही थी, नहीं तो सबके सब डिब्बे ढेर हो जाते—अचल मुर्दों की तरह! कपूर चाहता था गीता से भी आगे जाकर इस नन्हीं-मुन्नी रेलगाड़ी का इंजन बन जाय और इतना दौड़े, इतना दौड़े कि सब साथी उसके साथ दौड़ने पर मजबूर हो जायँ।

गीता ने मुड़ कर जाफरी से पूछा—"क्या सोच रहे हो, कामरेड?"

जाफरी बोला—"वही जो कामरेड कपूर सोच रहा है।"

और इस गाड़ी के सब डिब्बे कहक़हा मार कर हँसने लगे। थोड़ी देर के लिए वे भूल गए कि उन्होंने सवेरे से जलपान तक नहीं किया या यह कि धूप पहले से कहीं ज्यादा तेज़ हो गई है।

भूख के मारे गीता का बुरा हाल था। उसे अनुभव हुआ कि वह एक सुरमादानी है—खाली सुरमादानी! सुरमा कभी का खत्म हो गया, नाम अब भी सुरमादानी। उसने मुड़ कर कपूर की ओर देखा, जैसे कह रही हो—तुम अपनी आंखों में सुरमा की सलाई फेरना चाहो भी तो मैं कहूँगी, क्षमा चाहती हूँ, कामरेड कपूर!

धूप उन्हें जला रही थी। मंजिल पर पहुंचना तो ज़रूरी था। ऊपर से सब चुप थे, भीतर से यही चाहते थे कि किसी खेत की मेंढ़ पर अपने को यों फैला दें जैसे किसी ने बड़ी मेहनत से कुछ कपड़े धोकर डाल दिए हों। वे दायें-बायें देखते जाते थे और फिर सामने नज़र दौड़ाते, अभी मंजिल दूर थी।

सब पसीना पसीना हो रहे थे। धूल के मारे अलग तबियत परेशान थी। कपूर धूल के बादल को घूरता हुआ पीछे रह गया। मन ही मन से उसने उसे चार-पाँच अश्लील गालियाँ दे डालीं। फिर वह भाग कर अपने साथियों से जा मिला। साथ-साथ चलना किसी हद तक आसान था।

पराशर बोला—"ज़रा गीता की साड़ी का तो मुलाहिज़ा कीजिए।"

कपूर ने शह दी—"जी, हाँ। बहुत मैली हो रही है। शायद पूरी अठन्नी के रीठे भी इसे धोने के लिए नाकाफी हों।"

भूषण कह उठा—"हर चीज़ महँगी ही रही है। महँगी और आसानी से हाथ न लगने वाली। महँगे ही सही, इतने रीठे मिलेंगे कहाँ?"

कपूर ने उलट कर फिर कहा—"यही तो मैं कह रहा हूँ। ज़रा सोचो तो। लाहौर के इण्डिया काफी हाउस में, गीता ऐसी हालत में चली जाय तो यकीन करो, उसे पगली समझ कर निकाल दिया जाय।"

गीता हँसकर दोहरी हो गई। बोली—"यह सच है, कामरेड कपूर। पर मैं कहती हूँ, रीठों से कहीं अधिक आवश्यकता जलपान की है।"

कपूर कह रहा था—"अच्छा बोलो, गीता, क्या खाओगी! घी में तले हुए नमकीन काजू?"

गीता झुँझलाई—"तुम तो उपहास कर रहे हो।"

"उपहास कैसा? मैंने तुम्हारी दिलपसन्द चीज़ का नाम ले दिया है।"

"पर घी में तले हुए नमकीन काजुओं से अधिक स्वादिष्ट होगी क्रीम काफी।"

"कहाँ मिलेगी क्रीम काफी?"

"कड़वी कसैली काफी क्रीम के साथ मिलकर एक नया ही जायका पैदा कर देती है।"

"जी हाँ।"

"मुझे याद आ रहा है काफी की मशीन का ऊँघता-ऊँघता शोर मेरे दिमाग़ पर कभी-कभी हथौड़े की चोट कर जाता था।"

"ओहो! हथौड़े की चोट!"

एक बार सब साथी शहद की मक्खियों की-सी भिनभिनाहट में उलझ गये। फिर बात का क्रम आरम्भ करते हुए गीता बोली—"बंगाल भूखा है। हम भी तो कई बार भूखे रह जाते हैं।"

बात को फिर से इण्डिया काफी हाउस की ओर घुमाते हुए कपूर बोला—"काफी से ज्यादा तुम्हें मेरी बातों में रस आ जाता था, गीता! तुम्हारी गैर हाजिरी में मेरे सामने फैज़ का वह मिसरा उजागर हो उठता—'गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा सुलगती हुई शाम!' ऐश-ट्रे में सिगरेट की राख गिराते हुए मुझे महसूस होता कि मेरी ज़िन्दगी इस सिगरेट की तरह है और वह ऐश-ट्रे श्मशान भूमि बन उठती।"

खूब-खूब! सब साथियों ने एक स्वर से कहा। गीता ने खामोश दाद दी और पीछे को घूम कर कपूर की ओर एक मुस्कराहट फेंक दी।

कहीं मनुष्य की शकल नज़र न आती थी। एक बरसाती नदी की खुश्क तलेटी पार करते हुए गीता सोचने लगी—अच्छी फ़सलें होने पर भी यह दुर्भिक्ष! उस समय उसकी आँखों में एक बुड्ढे किसान का चित्र घूम गया जिसकी भयानक गुफाओं की-सी आँखों में झाँक कर उसने गहरे-गहरे सायों के पीछे देख लिया था कि किस तरह मौत एक रीछनी की भांति दबकी बैठी है। वह कलाकार होती तो उसे अपने सर्वोत्तम चित्र के रूप में दुनिया के सामने रखती। उसका नाम तो बस एक ही हो

सकता था--भूखा बंगाल !

मालूम होता था अब वे कोई बातचीत न कर सकेंगे। उनकी रही-सही हिम्मत भी ख़त्म हो रही थी। और यत्न करने पर भी वे रेंग-रेंग कर ही चल सकते थे।

हवा भी मरियल-सी मालूम होती थी। कहीं दो घूँट पानी भी तो न मिल सकता था। कपूर को यह ख्याल आया कि अपने साथियों पर नुकताचीनी शुरू कर दे। भाड़ में जाय देश-प्रेम और काला नाग डस जाय जनता की पार्टी को। शैतान चाटता रहे भूख-मौतों के आंकड़ों को......चौबीस लाख हुए तो क्या और तीस या पैंतीस लाख हो गये तो क्या? अजब हिमाकत है। भूख-मौतों के ऑकड़े जमा करने से आखिर हाथ क्या आयेगा? वह चाहता था घर लौट जाय। अपने विचार को वह उलट-पुलट कर देखता रहा। यह भी कठिन था। गीता को छोड़ कर वह कहीं न जा सकता था। उसने एक मुशायरे में सुनी हुई एक नई कविता पर विचार करना शुरू कर दिया--'कारखानों में मशीनों के धड़कने लगे दिल !' काश ! वह स्वयं भी किसी कारखाने की मशीन होता और उसका दिल बराबर धड़कता रहता। उसका दिल तो डूब रहा था। उसके पग बुरी तरह बोझल हो रहे थे। उसका दिमाग़ जवाब देने लगा। यह ठीक था कि कम्युनिज्म के बिना इस देश की तपेदिक का इलाज नहीं होने का। पर वह किधर का इलाज है कि भूख-मौतों के ऑकड़े जमा करते-करते आदमी खुद भी भूख का शिकार हो जाय? क .म्यु . निज्म.. वह सोचते-सोचते लड़खड़ा रहा था। पर जैसे खुद कामरेड लेनिन उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसका हौसला बढ़ा रहा था--"कारखानों मे मशीनों के धड़कने लगे दिल !' यानी जब मशीन भी दिल रखती है तो आदमी अपने दिल को क्यों डूबने दे?

मटमैले आकाश पर बादल बिलकुल न थे। सातों साथियों के जिस्म में अथाह लावा पिघल रहा था। गीता बोली—"हम इसी तरह चलते रहे तो यह धूप हमें आलुओं की तरह भून डालेगी।"

एक वृक्ष के नीचे पहुँच कर सब साथी गोल दायरे मे बैठ गये और मुनाफाखोरों को सौ-सौ गालियाँ सुनाने लगे। धरती क्या करती ? एक-एक करके ये लोग आये और गाँव-गाँव से सब अनाज निकाल ले गये। इस दौरे मे देखे हुये दर्दनाक चेहरे उनकी आँखों मे फिर गए। नंग-धड़ंग बच्चे। मर्द भी सब चीथड़ों मे, औरतें भी सब चीथड़ों में, लटकती हुई छातियों से लटके हुए बच्चे अधमुए। क्या जवान, क्या बुड्ढे, सब चूसी हुई गँडेरियों की तरह बेकार ! अरहर नहीं तो दाल कैसी ? चावल नहीं तो भात कैसा ? सब अनाज चोर मण्डियों में जा पहुँचा था। जीवन की व्यंग्योक्ति देखिए कि लोग निर्दयी अनाज चोरों की बजाय अपने देवताओं को कोस रहे थे। ये हाथ की रेखाओं से किस्मत की पगडण्डी ढूंढ़ने वाले लोग जीवन पर झपटने की सामर्थ्य खो बैठे थे।

सिर के नीचे बाँह का तकिया बना कर गीता ज़रा परे हट कर लेट गई। उसकी आँखे मिच गईं। उसके मन मे अनाज-चोर घूमने लगे, जिन्होंने बंगाल के छः करोड़ किसानों का गला घोंटने का षड्यन्त्र किया था। उसके हाथ किसी अनाज-चोर की मरम्मत करने को तरस रहे थे। रात हो जाय और वह अपने चूहेदान को धो-माँज कर रख दे, फिर सवेरे पता चले कि मोटे-मोटे चूहे इसमें फँस गये हैं और वह उन्हें जिन्दा ज़मीन में दफ़ना दे, यह सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई।

जाफ़री बोला—"कलकत्ते के फुटपाथों पर भूखे बंगाल की

इज्जत बिक रही है। कितनी शर्म की बात है !"

अमजद कह रहा था—"खुद माँ-बाप अपनी बेटियों को बेचने पर मजबूर हैं।"

अली अख्तर ने भी अपना स्वर छेड़ दिया—"दस-दस बीस-बीस आने में जवान लड़कियाँ बेसवाओं के हाथ बिक जायँ, ग़ज़ब हो गया ग़ज़ब !"

भूषण ने कहा—"अब तक बीस हज़ार कुँवारियाँ बहू बाज़ार मे रात की रानियाँ बन चुकी हैं। ताज्जुब है !"

पराशर ने अपनी मेघ-गम्भीर आवाज़ में कहा—"ये कुँवारियाँ बिक न जातीं तो फुट पाथों पर भूख का शिकार हो जातीं।"

कपूर अब तक चुप था। बोला—"भूख की बाढ़ में ये सब कुँवारियाँ डूब गईं। ग़ज़ब हो गया।"

गीता सो रही थी। कपूर ने उठ कर उसके माथे को हलका सा झटका दिया—"उठो गीता, मंज़िल पर पहुँचना तो जरूरी है।"

गीता का अंग-अग दुख रहा था। उसके जी मे आई कि वह अपने साथियों से कहे—तुम लोग आगे बढ़ जाओ। मुझे यहीं पड़े-पड़े मर जाने दो। मैं नहीं चाहती कोई मेरी लाश को श्मशान-भूमि में जलाये; मैं नहीं चाहती कोई मेरी लाश को कब्र में दफनाये। कोई भूखा गिद्ध मुझे खा लेगा। पर उसके साथी उसे कब छोड़ने वाले थे ?

अपनी साड़ी का पल्लू उसने कमर के गिर्द कस कर बाँध लिया। बोली—"अब हम सीधी पंक्ति में चलेंगे बराबर-बराबर।"

"बहुत खूब !" सब साथी एक स्वर से बोले।

तीन साथी दाईं ओर, तीन साथी बाईं ओर। बीच में गीता, लाल झण्डा उठाये हुए। दाईं ओर क्रम से जाफ़री, अमजद और अली अख्तर, और बाईं ओर कपूर, पराशर और भूषण। वे काफी ऊँची ज़मीन पर पहुँच गये थे। सामने का

गाँव, जहाँ उन्हें पहुँचना था, दूर ही से नज़र आने लगा। सबका हौसला नये सिरे से कायम हो गया, जैसे सब ने छाछ का एक-एक गिलास चढ़ा लिया हो।

सूर्य अब उतना गर्म न था कि फिर से उनके शरीर में लावा पिघलने लगे। चलते-चलते सब साथी रुक गये। बाईं ओर एक मोर नाच रहा था—बंगाल के दुर्भिक्ष से बेख़बर! सब उसे ध्यान से देखने लगे। कपूर को क्रोध आ गया। हरामज़ादा! किस तरह नाच रहा है जैसे शराब पी रखी हो। सामने मोरनी बैठी है। पट्ठा उसे ख़ुश करने के लिए यह गुर न जाने किससे सीख आया है! उसके हाथ में तीर-कमान होता तो पहले ही तीर से वह इस मोर को ख़त्म कर डालता। फिर उसके विचारों ने पलटा खाया। नहीं, नहीं, यह तो ज़ुल्म होगा। वह अब इस मोर को बता देना चाहता था कि कम्युनिज्म का सन्देश मोरों के लिए भी उतना ही जरूरी है जितना आदमियों के लिए, बल्कि कम्युनिस्ट समाज में एक मोर भी बराबर का हिस्सा-दार हो सकेगा, दूसरे कलाविदों के साथ मिल कर वह भी किसी कला भवन की स्थापना कर सकेगा। न जाने वह कब से नाच रहा था? देखते-देखते चमकीला पंख सुकड़ गया।

सातों साथी फिर अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने लगे। सबने रूमाल से अपना-अपना चेहरा पोंछ लिया था। गीता ने अपने बालों में कंघी भी कर ली थी। कपूर ने चोर आँखों से उसकी सीधी माँग की ओर देख कर कहा, "मैं कहता हूँ हवाई जहाज़ से नीचे देखने पर गंगा भी तो इसी तरह एक रुपहली लकीर बन कर रह जाती होगी—गीता की माँग ही की तरह।" और इस पर सब साथी खिलखिला कर हँस पड़े।

चलते-चलते गीता ने एक बंगाली लोक गीत छेड़ दिया—
'कत मानुष गोरू मरे गैल ज्येष्ठी मासेर झड़े, ओ भाई ज्येष्ठी

मासेर झड़े !' अर्थात् कितने आदमी और पशु मर गये ज्येष्ठ मास के तूफ़ान में, ओ भाई, ज्येष्ठ मास के तूफ़ान मे !

पास से कपूर ने इस गीत को उठा लिया और धीरे-धीरे सब साथी गीता के साथ शामिल हो गए—"कतो मानुष गोरू मरे गैलो ज्येष्ठी मासेर झड़े ओ भाई, ज्येष्ठी मासेर झड़े !"... आज उन्होंने आकाश से जो आग बरसती देखी थी, उससे तो कहीं अच्छा होगा ज्येष्ठ मास का तूफ़ान। कपूर गीता की मुसकराहट को निमन्त्रण देना चाहता था, पर यह मुसकराहट इस मौत के तूफ़ान का सामना करते-करते अपनी सब महक खो बैठी थी—वह महक जो लाहौर के इण्डिया काफी हाउस के वातावरण में कपूर की प्रतिमा को गुदगुदाती रहती थी।

जाफ़री बोला—"कपूर की कहानी 'काफी हाउस की एक शाम' मुझे बहुत पसन्द है।"

गीता की आँखों में एक पल के लिए फिर कुँवारी मुस्कान थिरक उठी। बोली—"कामरेड जाफ़री के साथ मैं भी सहमत हूँ, कपूर ! 'काफी हाउस की एक शाम' मे तुमने मुझे उर्वशी बना दिया . .हाँ तो मैं पूछती हूँ तुम्हारी लेखनी काफी हाउस से बाहर कब निकलेगी ?"

कपूर बोला—"मेरी नई कहानी का नाम होगा लाश !"

सब साथी चौंक उठे—लाश ?

'जी हाँ, लाश !"

गीता ज़रा देर से चौंकी—"कैसी लाश ?"

कपूर ने बड़ी गम्भीरता से कहा—"जो न जलाई गई, न दफ़नाई गई !"

"अवश्य लिखो, कपूर और मैं इसका बंगला अनुवाद करने का वचन देती हूँ।"

"पहले ही से धन्यवाद !"

लाश का ध्यान आते ही गीता को फिर सारा वातावरण मुर्दा मांस की बदबू से बोझल महसूस होने लगा और हवा भी किराये के शोक करने वालों की तरह रस्मी तौर पर साँय-साँय किये जाती थी।

दिन ढल रहा था। सारा आकाश उदास-उदास नज़र आता था--उदास-उदास और बेरंग। झाड़ियाँ ख़ामोश थीं--ख़ामोश और दिलगीर!

गाँव समीप था। झोंपड़ियाँ साफ दिखाई दे रही थीं। पास जाने पर मालूम हुआ कि कई बुड्ढे वृक्ष गाँव के इतिहास के अमानतदार हैं।

इस गाँव में एक जुलाहे ने आगे बढ़ कर इस काफ़ले का स्वागत किया। 'बंगाल मर गया तो कौन जिन्दा रहेगा?' सब साथियों ने सिंहनाद किया।

बड़े-बड़े वृक्षों के उस पार गाँव की मस्जिद भी ख़ामोश और दिलगीर थी। सारे गाँव पर नहूसत बरसती थी। जुलाहे ने एक मरियल-सा बच्चा उठा रखा था। पता चला कि यहाँ अधिक आबादी मुसलमानों की थी। उन्होंने मस्जिद के सामने जमा होकर यह फैसला किया था कि वे गाँव को छोड़कर बाहर न जायँगे।

गीता ने जुलाहे के समझ आने योग्य अन्दाज में उसको धीरज बँधाया और पूछा, "यहाँ कितनी भूखमौतें हुई हैं, बाबा?"

पता चला कि केवल दस आदमी जिन्दा हैं। आठ दूसरे आदमी और दोनों ये बाप-बेटा। वे भी जल्द मर जायेंगे। उसने बहुत कठिनाई से उत्तर दिया और अब आँसुओं की बाढ़ को न रोक सका।

गीता ने कहा—"रोते क्यों हो? हम तो तुम्हारे सेवक हैं, बाबा!"

कपूर बोला—"अब जल्दी करो, गीता !"

गीता ने धीरे से कहा—"हाँ, कामरेड, बस अभी शुरू करते हैं।"

फैसला हुआ कि पहले जिन्दा लाशों का निरीक्षण किया जाय। दो आदमी सत्तरे-बहत्तरे मालूम होते थे, जैसे जोंकों ने उनका सब खून चूस लिया हो। एक झोपड़ी मे बारह वर्ष का एक अनाथ छोकरा दम तोड़ रहा था। उसके पास एक पड़ोसिन सेवा को मौजूद थी जो अब अपने घर में अकेली रह गई थी। यही बुढ़िया बीच-बीच में उठकर उन सत्तरे-बहत्तरे बुड्ढों के मुँह में पानी टपका आती थी। एक स्थान पर एक नन्हा बच्चा अपनी माँ की चूसी हुई गुठलियों जैसी छातियों को बराबर चूसता जा रहा था ..अब और हिम्मत किसमें थी कि इन भयानक झाँकियों मे उलझा रहता।

सातों साथियों का काफला अब कब्रिस्तान की ओर चल पड़ा। अपना-अपना सामान सबने जुलाहे की झोंपड़ी में छोड़ दिया था। अपने बच्चे को गोद में उठाये वह जुलाहा इस काफले को पथ दिखा रहा था।

गीता नई क़ब्रें गिनती जाती थी और कपूर रजिस्टर पर अंक चढ़ाता जाता था। इतनी मेहनत से तो कोई इतिहास की गुज़री हुई शताब्दियों को भी न गिनता होगा।

क़ब्रिस्तान के साथ-साथ एक दरिया बह रहा था। नई क़ब्रें खत्म होती नज़र न आती थीं। वह जुलाहा साथ न होता तो नई और पुरानी क़ब्रों में कुछ मुग़ालता भी हो सकता था। पर अब तो किसी तरह की भूल की सम्भावना न थी।

"या अल्ला !" जुलाहा पीली आँखों से आकाश की ओर देखकर बोला। यह उसकी पत्नी की कब्र थी। गीता ने उसको धीरज बँधाया और वह हाँफते हुए बैल की तरह चल पड़ा।

अब तक गीता एक-एक क़ब्र के पास पहुँचकर पूरी होशियारी से गिनती के अंक लिखाती जाती थी। अब इतना सब्र न था। अब वह दूर ही से गिनती कर लेती। और यह भी ज़रूरी न रह गया था कि हर हालत में जुलाहे की तसदीक के बाद ही गिनती को ठीक समझा जाय, यह पता चल गया था कि बाक़ी का क़ब्रिस्तान केवल नई कब्रों के कारण बढ़ता चला गया था।

वह जुलाहा आज्ञा लेकर वापस चला गया। जाते हुए वह कहता गया कि वह अपने कौमी सेवकों के लिए थोड़े दाल-भात का प्रबन्ध करना अपना फर्ज़ समझता है। मौत तो आयेगी ही। परसों नहीं तो कल। अधिक चिन्ता तो आज की थी। आतिथ्य तो आवश्यक है।

सातों साथी आगे ही आगे चले जा रहे थे। एक हृदय-द्रावक, भयानक चीख़ वातावरण में गूँज रही थी।

अब वे कब्रिस्तान की अन्तिम सीमा पर पहुँच गये थे। यह एक कोना था—ठीक साठ का कोण बना हुआ था।

सामने एक क़ब्र पर श्वेत बालोंवाली एक बुढ़िया बैठी थी। गीता बोली—"हम क्षुधा-मृत्यु के आँकड़े प्राप्त कर रहे हैं, माँ !"

"क्षुधा-मृत्यु के आँकड़े !" बुढ़िया ने एक गुस्ताख़ क़हकहा लगाया।

"जनता की लाल पार्टी की सेवा हमारा आदर्श है, माँ !"

"लाल पार्टी !" बुढ़िया ने फिर गुस्ताख़ कहकहा लगाया।

"माँ, हँसो मत। हम तो क्षुधा-मृत्यु के आँकड़े प्राप्त कर रहे है। हमने जलपान भी नहीं किया। पिघलानेवाली धूप भी हमारी राह न रोक सकी। हम यह गिनती समाचारपत्रों को भेजते हैं और अनाज की गाड़ियाँ देश के खाते-पीते भागों से कलकत्ते पहुँच रही हैं और स्थान-स्थान पर फोकट लंगर खोले जा रहे हैं, माँ !"

"फोकट लंगर !" बुढ़िया ने फिर क़हकहा लगाया।

"माँ, हँसो मत। हम तो नवीन क़ब्रें गिन रहे हैं, माँ !"

बुढ़िया चुप हो गई। उसने क़हक़हा न लगाया। बोली—"गिन लो क़ब्रें, राजकन्या !"

"हाँ, माँ।"

पता चला कि क़ब्रों से दुगुनी लाशें तो दरिया में फेकी जा चुकी थी। और एक बात और भी तो थी। इस कब्र में बुढ़िया के दो बेटे पिल्लों की तरह सोये पड़े थे। उनके चार बेटे और भी थे। वे भी भूख के बीमार थे। एक दिन वे एक साथ मर गये। वह उनके लिए एक भी कब्र न खोद सकी। इन हाथों से उसने उन्हे दरिया मे फेंक दिया।

गीता बोली—"इस मृत्यु का अंत नहीं है संसार मे। पर हम भी तो तुम्हारी सन्तान हैं, माँ।"

अब वह बुढ़िया रो रही थी। उसको धीरज बँधाने की शक्ति गीता मे तो न थी। न जाने कितने दिनो से वह इस क़ब्र पर धरना दिये बैठी थी, जैसे अब उसने मौत पर झपटने का इरादा कर लिया हो।

क़ाफला लौट पड़ा। सामने पश्चिम में सूर्य अस्त हो रहा था। मालूम होता था वह एक ख़ूनी है और अनगिनत लोगों के खून से हाथ रगकर क्षितिज मे पनाह ढूँढ़ रहा है। गीता ने मुड़-कर उस बुढ़िया की ओर दृष्टि फेकी। और एक बार फिर कल-कत्ते के फुटपाथों पर पड़े हुए भूखके मारों की चीख़-पुकार उसके कानों मे ज़िन्दा हो उठी . . सर्वनेशे क्षुधा।... ..आमार पोड़ा कपाल... ..अभागा कोन दिके जाय ?... ..पोचे मर !...... पोका पोड़े मर। .. ..अर्थात् सर्वनाश करनेवाली भूख ! हमारा जला हुआ भाग्य। अभागा किस ओर जाय ? सड़कर मर ! कीड़ेपड़ पड़-कर मर ! .....और वह तेज़-तेज़ पग उठाने लगी।

उसके पीछे कपूर था, फिर पराशर और भूषण, और उनके पीछे अली अख़्तर, अमजद और जाफरी। मालूम होता था कि वे सातों साथी उस बुढ़िया के सातों बेटे थे जो धरती और पानी की क़ब्रों से उठ कर चले जा रहे थे, आगे ही आगे, नये फोड़ों की तरह उभरी हुई कब्रों के बीचोबीच !

रंग

पुराने किले की दीवारें चित्र की पृष्ठभूमि मे दूर तक चली गई थीं जहाँ दैत्याकार द्वार के भीतर लोगों की लंबी पक्ति को प्रवेश करते दिखाया गया था। किले से हटकर एक बुढ़िया अपने भारी-भरकम लहँगे की चुन्नटों को सँभाले खड़ी थी। लाल-पीली थिगलियोंवाली चोली और लाल-काली बिंदियोंवाली ओढ़नी पहने वह दूर तक फैले हुए मैदान की ओर निहार रही थी। अनुमान के इसी चित्र पर एशियाई सम्मेलन की प्रदर्शिनी मे प्रथम पारितोषिक दिया गया था। यद्यपि अनुमान के मित्रों की समझ में यह बात अब तक न आती थी कि उसने इस चित्र का शीर्षक 'धरती माता' क्यों रखा था।

दादी अम्मा खुश थी। वह बार-बार चित्र के समीप आकर टकटकी बाँधे इसे देखने लगती। उसे विश्वास न आता था कि यह उसी का चित्र है। वही लहँगा, वही चोली, वही ओढ़नी। उसे याद था कि इनसे कैसी दुर्गंध आ रही थी। न जाने अनुमान इन्हें कहाँ से उठा लाया था। यह फैसला किया गया था कि इन्हे तीन चार बार साबुन दिखाया जाय। धुलने पर इनके रंग निखर गये थे और थिगलियों पर चमक आ गयी थी। इन्हें पहनकर वह अनुमान के निर्देश के अनुसार दीवार से सटकर खड़ी हो गयी थी। दो-तीन दिनों मे चित्र तैयार हो गया था।

वह अब तक हैरान थी कि चित्र में पुराने किले की दीवारें कहाँ से आ गयीं। वह यह भी नहीं समझती थी कि द्वार के भीतर जानेवाले लोग कहाँ से आ रहे हैं और भीतर क्यों जा रहे हैं। अनुमान उसे समझाने का यत्न करता था, पर दादी अम्मा हँसकर इसी बात पर तान तोड़ती कि यह सब रंगों की माया है।

द्वार पर किसी ने दस्तक दी। आज रेखा इधर टपक पड़ी थी।

"उस रोज प्रदर्शिनी मे तुमने मेरा चित्र बनाने का वचन दिया था," रेखा ने आँखें फाड़-फाड़कर अनुमान को घूरा।

दादी अम्मा बोली, "रेखा का चित्र अवश्य बनाओ, बेटा!"

अनुमान चाहता था कि रेखा की मुखाकृति को कुछ इस अंदाज से पेश करे कि काली-कलूटी चट्टानों पर सूर्य की किरनें बिखरने का दृश्य पैदा हो जाय। उसके मन की चारदीवारी में एक नया दरीचा खुल गया। वह रंग घोलने लगा। प्लेट में ऊदे, नीले, बादामी, लाल और न जाने किस-किस रंग के रास्ते नज़र आ रहे थे। शीशे के प्याले में पानी भरा हुआ था, जिसका रंग कई-कई रंगों के मेल से स्याह हो रहा था।

दादी अम्मा परे को घुम गई। रेखा ने हंसकर कहा—"शायद दादी अम्मा भागकर उन्हीं लोगों में शामिल होना चाहती है जो पुराने किले के अन्दर चले जा रहे हैं।"

अनुमान ने रेखा की बात का उत्तर पहले एक हल्की-सी मुसकान से दिया। बोला—"चाहो तो तुम भी उसी भीड़ मे गुम हो सकती हो। पर तुम्हारा चित्र बनाये बगैर मै तुम्हे कहीं नहीं जाने दूँगा।"

रेखा बोली—"प्रदर्शिनी मे एक सज्जन 'धरती माता' को ध्यान से देखते हुए कह रहे थे कि कलाकार ने बीसियों असफल यत्नों के पश्चात् यह सच्चा और एक साथ सादा और रंगीन

अंदाज़ पेश किया होगा।"

अनुमान ने सिर हिलाते हुए कहा—"यह बात तो बहुत-सी चीज़ों के बारे में कही जा सकती है।"

रेखा फिर कह उठी—"उस रोज़ प्रदर्शिनी में एक सज्जन कह रहे थे कि इस बुढ़िया की हड्डियाँ लोहे की हैं और वह अनगिनत शताब्दियों से इसी रास्ते पर चलती आई है। दूर तक फैला हुआ मैदान जिस पर सूर्य की किरनें चमक रही हैं, अपनी मिट्टी पर गर्वित नजर आता है। इस चित्र में एक संदेश है, एक अध्ययन। इसे धरती माता कहिए चाहे भारत माता, इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह चित्र जीवन का प्रतीक है।"

अनुमान बोला—"मैंने तो यही दिखाने का यत्न किया है कि जीवन की गति कभी रुकती नहीं। आखिर लोगों में कला के खरे-खोटे सिक्के परखने का शौक पैदा हो रहा है, यह देखकर किसे खुशी न होगी।"

रेखा ने हँसकर कहा—"पर जहां तक कलाकारों का संबंध है, वे सदा एक दूसरे की रचना की बुराई करते नज़र आते हैं।"

"शायद इसका कारण यह है कि हम एक संक्रांति-युग में से गुज़र रहे हैं, रेखा!" अनुमान ने तूलिका को रंगों की प्लेट पर नचाते हुए कहा, "धरती माता की रचना में मुझे अधिक-से-अधिक दो दिन लगे होंगे। सच पूछो तो असल काम तीन-चार घंटे में ही समाप्त हो गया था। भला तुम ही कहो कि एक मनोभाव को कई-कई सप्ताहों या महीनों तक कैसे स्थिर रखा जा सकता है?"

"जी हाँ," रेखा कह उठी, जैसे वह चाहती हो कि अब धरती माता का किस्सा यहीं खत्म हो जाय।

रेखा अनुमान के आदेशानुसार भूमि पर उकड़ूँ बैठ गई, उसके बाजू ऊपर को उठ गये, जैसे कोई कूँज पर तोल रही हो।

उसकी आँखों में काजल के डोरे चमक उठे। उस समय कान के ऊपर से होती हुई दाईं ओर से एक लट उसके गाल पर आकर रुक गई। वह चाहती थी कि अब यह लट यहीं टिकी रहे ताकि यह क्षण चित्र में इसी अंदाज़ में अमर हो जाय।

"मैं वेग और गति का कायल हूँ," अनुमान कह उठा, "मैं चाहता हूँ कि ऐसी चीज़ बने जो जीवन का चित्रण ही न हो, बल्कि इसमें जीवन पर प्रभावित होने की योग्यता भी होनी चाहिए।"

रेखा मुसकरायी जैसे अपनी क्षुद्रता की तलाफी कर रही हो।

"वेग और गति से काम न लिया जाय तो ताज़गी और शक्ति कहाँ से आयगी?" अनुमान ने जल्दी-जल्दी रंग लथेड़ते हुए कहा। उसके हाथ में एक बड़ा-सा बोर्ड था जिस पर चित्र बनाने के लिए रेशमी वस्त्र जमा दिया गया था।

अनुमान ने जैसे रेखा के मुख से शब्द छीनते हुए कहा—"चित्र देखकर यह अनुभव होना चाहिए कि रंग दौड़ रहे हैं।"

"हाँ, हाँ," अनुमान ने उछलकर कहा—"ठहरे हुए पानियों से कहो कि कला को एक स्थान पर रुकना नहीं चाहिए। हमारे बहुत-से कलाकार तो एक चक्कर में घूम रहे हैं, वे जहाँ से चलते हैं वहीं आ खड़े होते हैं। मालूम होता है, वे इसी चक्कर में घूमते रहेंगे, और कोई फ़ासला तै नहीं करेंगे।"

प्लेट के सारे रंग एक-दूसरे के समीप चले आये थे। अनुमान खुश था कि उसकी तूलिका सपाटे भर रही है। उस समय रेखा कह उठी—"मुझे प्रदर्शिनी के उद्‌घाटन का वह दिन हमेशा याद रहेगा जब एक आलोचक ने कहा था कि 'धरती माता' ने हिंदुस्तानी कला के इतिहास में एक नया पन्ना उलट दिया है। इसमें हिंदुस्तान अपने समस्त व्यक्तिगत स्वभाव के साथ उभरता नज़र आता है। सच पूछा जाय तो हिंदुस्तान ही को नहीं, कुल

एशिया को इस प्रकार की रचना पर गर्व होना चाहिए। यह चित्र इस बात की स्पष्ट दलील है कि समस्त एशिया एक है।"

अनुमान बोला—"मैं तो अभी तक एक नौसिखिये की हैसियत रखता हूँ, रेखा! यह और वात है कि मुझे प्रदर्शिनी में पहला पुरस्कार दिया गया। एशिया तो वहुत विशाल है, एशिया का प्रत्येक देश अपनी कला के लिए विख्यात है।"

रेखा कह उठी—"नाचते थिरकते रंग तुम्हारी तूलिका का इशारा समझते हैं। मालूम होता है, तुम्हारे रंग एशिया की सैर करते रहते हैं, क्योंकि तुमने एशिया की आत्मा को पा लिया है।"

अनुमान उस समय कत्थई में नीलाहट मिला रहा था। बोला—"एक-एक रंग के बीस-बीस शेड होते हैं, मानव का एक-एक मनोभाव भी बीसियों शेड रखता है। अपनी प्रशंसा सुनकर भला किसे खुशी न होगी, और यह तो स्पष्ट है कि खुशी का शेड प्रत्येक अवस्था में समान नहीं होगा।"

रेखा उठ कर देखना चाहती थी कि चित्र कहाँ तक पहुँच चुका है। वह पूछना चाहती थी कि एक-एक रंग के बीस-बीस शेडों पर तुम कैसे अधिकार जमाये रखते हो। वह जानती थी कि कोई-कोई रंग तो बहुत नटखट होता है और शरारती बालक की भाँति वश में नहीं आता। बादामी, नीला, आबनूसी, संदली, सब्ज, सुर्ख और सुरमई, वह कहना चाहती थी कि कलाकार जिन्दा रहे संसार में रंगों की क्या कमी है। कभी-कभी एक रंग दूसरे रंग की लहर लिए हुए मचल उठता है। एक रंग दूसरे रंग का सन्तुलन स्थिर रखता है। एक रंग चुप-चुप-सा नजर आता है तो दूसरा ज़बानदराज़, और कभी कभी तो यों अनुभव होता है कि रंगों में ज़रा भी एकस्वरता क़ायम नहीं हो सकी और वे फिसादियों की तरह हाथा-पाई पर उतर आये हैं। ऊदा,

उन्नाबी, कत्थई, अनभ्यस्त कलाकार के यहाँ ये रंग आपस में लड़ाई ठान बैठते हैं। पर होशियार कलाकार का यही कमाल है कि वह रंगों में दोस्ती करा देता है।

अनुमान जल्दी-जल्दी रंग लथेड़ रहा था। वह चाहता था कि आज ही चित्र सम्पूर्ण हो जाय। जैसे वह प्लेट से रग उठा-उठाकर चित्र पर फेंक रहा हो। दीवाने, खामोश और शरमीले रंग, गाते-नाचते रंग, दूर-अंदेश, मदहोश और नकचढ़े रंग, मनचले, जोशीले और ज़बरदस्त रंग—सब रंग उसके हाथ के खिलौने थे। वह उनसे खेलता था।

रेखा ने चेहरा घुमा कर अनुमान की ओर देखा। उसके भारी-भारी फूले हुए पपोटे और मोटे-मोटे ओंठ उस समय बेहद उजागर हो उठे। बोली:—"मेरा तो विचार है कि प्लेट से रंग उठाने से पहले इसे खूब तोल लेना चाहिए और साफ-साफ पूछना चाहिए कि भई रंग तुम्हें उज्र तो नहीं, इन्कार तो नहीं।"

अनुमान के हृदय और मस्तिष्क को गुदगुद-सी हुई। यह उसकी सीधी प्रशंसा तो न थी, पर बातचीत के इस पहलू में उसने झट बात का रुख अपनी ओर मोड़ते हुए कहा—"कोई-कोई रंग तो मुझे बेखुद कर देता है।"

रेखा ने उछल कर कहा—"असल रंग वही है जो आत्मा की गहराई से परिचित कराये। तुम मेरा चित्र तो बना रहे हो, अनु-मान, पर जरा मेरी आत्मा के रग का ध्यान रखना।"

अनुमान कह उठा—"नीला, सब्ज़, पीला, लाल, सुरमई—कहो तुम्हारी आत्मा का कौन-सा रंग है, रेखा? और सुनो, रंग तो सदा समान नहीं रहते। वसन्त के रंग और हैं, पतझड़ के और। मैं नहीं जानता कि तुम्हारी आत्मा का क्या रंग है, रेखा। हाँ, तुम चाहो तो मुझे अपनी आत्मा के रंग से परिचित करा सकती हो।"

"अपना रग मैं स्वयं नहीं जानती," रेखा ने चेहरा घुमा कर अट्टहास किया।

अनुमान ने चित्र में रेखा के चेहरे के सोये-सोये-से रग को तूलिका की सहायता से जगाते हुए कहा—"प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक देश का भी रंग अपना होता है, बल्कि एक विशेष रंग का एक विशेष शेड। और मेरा तो विचार है कि संसार के बहुत सारे लड़ाई-झगड़े का कारण यही है कि ससार के देश न केवल अपने रंग से अपरिचित हो रहे हैं, बल्कि वे यह भी भूल रहे हैं कि किसी एक नुक़ते पर सब रंग मिल कर एक हो जाते हैं।"

रेखा बोली—'एशियाई सम्मेलन ने इसी बात पर जोर दिया कि समस्त एशिया का एक रंग है।"

अनुमान के मन में एशियाई सम्मेलन के बहुत-से डेलीगेटों की शकलें घूम गईं जिनमे कई स्त्रियाँ भी थीं। दो-तीन स्त्रियों के चेहरों पर शोक और दु:ख में डूबी हुई मुसकान थिरक उठती थी जैसे उन्हे अभी तक युद्ध का समय याद आ रहा हो जब उनके यहाँ न स्त्रियाँ सुरक्षित थीं, न बच्चे। उनके अट्टहास बीच ही से टूट जाते थे। उनके चेहरों पर हीनता के भाव को छुपाने की शक्ति न मुसकान मे थी न गांभीर्य्य में। उनके वस्त्र चुस्त थे। पर बोलते समय उनके बोल गले में अटक जाते थे। युद्ध में जीवन बड़ा कठिन होता है--एक स्त्री ने रुकते-रुकते उसे बताया था, और इस प्रकार मानों अपनी धरती का दु:खान्त नाटक एक ही वाक्य में समोकर पेश कर दिया था। उस समय उसका हृदय और मस्तिष्क काँप कर रह गये थे। और उत्तर में उसने केवल इतना ही कहा था कि क्या कोई ऐसी अवस्था उत्पन्न नहीं की जा सकती कि युद्ध का हमेशा के लिए अन्त हो जाय। क्योंकि युद्ध के बमों के नीचे तो न चुस्त वस्त्र पहने जा सकते है, न

अट्टहास गूँज सकते हैं और न कलाकार रंगों के साथ वार्तालाप कर सकता है।

रेखा ने अपनी कनपटियाँ खुजलाते हुए कहा—"अब तो चित्र खूब उभर रहा होगा।"

अनुमान कह उठा—"आज मैंने अपनी तूलिका को खुली छुट्टी दे रखी है और वह एक ही छलाँग में पाँच-पाँच रंगों के बीच का फासला तै कर रही है।"

रेखा चाहती थी कि उठ कर चित्र का निरीक्षण करे और देखे कि वह किस प्रकार धड़ाधड़ बीसियों रंग निगल रही है। पत्थर की मूर्ति की भांति अचल अवस्था में बैठे रहना तो कठिन था। अपनी गूँजदार आवाज़ में वह अनुमान से पूछना चाहती थी कि कहीं चित्र मे उसके चेहरे पर मुजरिमियत तो नहीं झलक उठी। उसे याद आया कि एक डेलीगेट ने अपने देश के लोक-संगीत की चर्चा करते हुए एक लोक-धुन का विशेष रूप से ज़िक्र किया था जिसमें ताल का अंदाज कुछ ऐसे ही था जैसे कोई सिपाही पैंतरा बदल रहा हो। वह अनुमान से पूछना चाहती थी कि क्या उस नाच-धुन के ताल की तरह कहीं तुम्हारा रंग तो सिपाही की तरह पैंतरा नहीं बदल रहा? एक दूसरे डेलीगेट ने अपने देश के राष्ट्रीय नृत्य की प्रशंसा मे कहा था कि कोई बाहर का आदमी इसे देखे तो यही कहेगा कि यह स्वतंत्रता का नाच है। अर्थात् इस नृत्य की प्रत्येक गति परतंत्रता की शृङ्खलाओं को तोड़कर फेंकने की प्रतीक हो। वह पूछना चाहती थी कि क्या आज अनुमान के रंग भी स्वतंत्रता का नाच नाचने लग गये हैं। सम्मेलन का एक भाषण उसके मस्तिष्क में गूँज उठा जिसमें सम्मेलन के संयोजक ने कहा था कि यह ग़लत है कि एशिया को पहाड़ों और नदियों ने टुकड़े-टुकड़े कर रखा है। एशिया की संस्कृति ने इन नदियों पर पुल   वे हैं और इन पहाड़ों में

सुरंगें खोद रखी हैं। आज एशिया के देश एक दूसरे का चेहरा पहचान रहे हैं। आज वे अपने आदर्श की महत्ता परख रहे हैं। वह आदर्श यही है कि स्वतंत्रता का गान गूँज उठे। इनसानियत, शराफत और शांति की पोषक संस्कृति—इन शब्दों पर जोर देकर वह पूछना चाहती थी कि आज कलाकार के हाथों में खेलने-वाले रंग उस विष के विरुद्ध, जो जीवन की नस-नस में फैल रहा है, प्रतिवाद की आवाज़ बुलंद नहीं कर सकते। पर भूख के मारे रेखा का बुरा हाल था। उसे यों महसूस हुआ कि उसका चेहरा पथरा गया है। वह उठकर अपने मकान की ओर भाग जाना चाहती थी। चित्र खिंचवाना भी निरी बकवास है, उसने सोचा, आखिर कब तक कोई ज़मीन पर उकड़ूँ बैठे-बैठे एड़ियाँ रगड़ता रहे। अनुमान मेरी लाख प्रशंसा करे। मुझे इसका क्या लाभ। आखिर वह यह चित्र मुझे तो देने से रहा। मैंने ख्वाह-मख्वाह यह बेगार मोल ली।

अनुमान की तूलिका कला की सीमाओं को छू रही थी। खिड़की से आती हुई सूर्य की किरनें रेखा के चेहरे पर गज़ब ढा रही थीं। उस समय अनुमान की आँखों में उस गुड़िया का बड़ी-बड़ी आँखोंवाला गोल-मटोल-सा चेहरा घूम गया जो कोरिया की कन्याओं ने देश की एक महिला डेलीगेट के हाथ सम्मेलन के प्रधान पद पर बैठनेवाली महिला के लिए भेजी थी। उसका हाथ तेजी से चलने लगा। बोला- "रेखा, तुम भी तो एक गुड़िया हो यद्यपि कोरिया से आई हुई गुड़िया के चेहरे पर कलाकार ने हमेशा के लिए एक मुसकान कायम कर दी है और तुम्हारे चेहरे पर प्रतिक्षण एक नया मनोभाव झलक उठता है। कवि का नाम लिये बिना ही मैं कह सकता हूं—

जब किरनें हिमालय की चोटी गूंथें
सोये हुए आबशार आँखें खोलें

जब कंचन नीर-सी झलकती हो फ़िज़ा
ऐसे मे काश तेरी आहट पायें।

रेखा बोली—"कवियों की बातें छोड़ो। इतना तो मैं भी मानती हूं कि असल रंग वही है जिसमें विशालता भी हो और गहराई भी।"

अनुमान कह उठा—"असल रंग वही है जिसका कोई व्यक्तिगत स्वभाव हो, और व्यक्तिगत स्वभाव भी ऐसा कि यह दबाने से और उछले और पहले से कहीं अधिक ऊँची आवाज़ से बोलने लगे।"

रेखा हँसकर लोट-पोट हो गयी। बोली—"रंगों की क़लंदरी कोई क़लंदर ही पहचान सकता है। रंगों के बोलने की बात भी आपने खूब मौके पर कही। हमारे बहुत-से कलाकारों के रंग तो अपने देश की भाषा में बोलने की बजाय विदेशी भाषा मे बोलने लगते हैं।"

अनुमान ने अपनी जगह से उछलते हुए कहा—"रंगों की भाषा की दृष्टि से समस्त एशिया की एक भाषा है। एशिया के कलाकार आत्मा की आवाज़ का कुछ अधिक ध्यान रखते है।"

रेखा का ध्यान धरती माता की ओर पलट गया। वह कहना चाहती थी कि इस चित्र का सबसे बड़ा कमाल यही है कि इसकी रचना बोलने वाले रंगों की सहायता से की गयी है। ये रंग एशिया की सार्वजनिक भाषा के परिचायक हैं। पर बाह्य रूप से उसने यही कहा—"सम्मेलन के डेलीगेट अपने-अपने देश में पहुँचकर धरती माता की चर्चा करेंगे।"

अनुमान बोला—"पर सम्मेलन की सरगर्मियों के कारण मैं रंगों की प्लेट को छू भी नहीं सकता था। यह प्रतीत होता था कि मेरी रचना-शक्ति जमीन मे धँस गई है और जब तक 'धरती माता' पर मिले हुए पुरस्कार के रुपये खर्च नहीं हो जाते, मैं

कोई चीज़ तैयार नहीं कर सकूँगा। आज भी तुमने दर्शन न दिये होते तो मेरे रंग प्लेट मे पड़े-पड़े सोते रहते। तुम मानो न मानो तुम्हारा यह चित्र देखकर बहुत-सी लड़कियाँ तुमसे ईर्ष्या करने लगेंगी।"

रेखा ने घमंड के मारे सिर अकड़ा लिया। वह कहना चाहती थी, धन्यवाद, बहुत बहुत धन्यवाद। तुम्हारा चित्र तुम्हे मुबारक, मैं चलती हूँ। तुम्हारे रंग तुम्हारे गुलाम हैं। वे तुम्हारे इशारों पर नाचते है। मैं क्यो तुम्हारी गुलाम होने लगी?

अनुमान कह उठा—"किसी यात्री ने विभिन्न प्रदेशों के रंगों का निरीक्षण करते हुए लिखा है—बंगाल मे प्रवेश करने के कई रास्ते हैं, पर वहाँ से निकलने का कोई रास्ता नही।"

रेखा का अकड़ा हुआ सिर एक क्षण के लिए नरम पड़ गया। एक कृत्रिम-सी मुसकान उछालते हुए बोली—"मेरे लिए तो आज तुम्हारा घर ही बंगाल बन गया है। तुम्हारे रंगो ने मुझे घेर रखा है।"

अनुमान ने हँसकर कहा—"इन झिझकते काँपते रंगों से मत डरो, रेखा।"

रेखा सँभलकर बोली—"झिझकते काँपते रंगों की भी एक ही कही। कोई तुम्हारी कुदक्कड़े लगानेवाली तूलिका को देखे।"

अनुमान के चेहरे पर मुसकान बिखर गयी। चित्र पर रंग लथेड़ते हुए उसने कनखियों से रेखा के चेहरे का निरीक्षण किया। वह कहना चाहता था कि कलाकार की तूलिका तो एक नित्य वस्तु है और यह तो सदा से कुदक्कड़े लगाती आयी है। इसी तूलिका के कारण ही तो रंगों का मूल्य है। इसी ने संसार का इतिहास लिखा है। अतीत के परदे पर इसी की कारगुज़ारी बार-बार उजागर हो उठती है। इसी ने 'शांति चिरंजीवी' के नारे लगाये। इसी ने दैनिक जीवन की पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और श्रेणी

को विशेषता प्रदान की।

रेखा उकड़ूँ बैठे-बैठे तंग आ चुकी थी। वह चाहती थी कि उठकर अपने घर चली जाय और आराम करे। अचानक उसकी आँखों में एक खूनी का चित्र उभरा। जैसे वह छुरा थामे उस पर झपट रहा हो। वह सहमकर अपनी जगह पर बैठी रही। थोड़े क्षणों की खामोशी के पश्चात साहसपूर्वक बोली—"इधर तुम रंगों में उलझ रहे हो उधर सभ्यता के पथ में काँटे बिछाये जा रहे हैं।"

अनुमान ने हँसकर कहा—"अभी इन काँटों की बात मत छेड़ो। मैं डरता हूँ कि इनके विचार ही से तुम्हारे पाँव घायल न हो जाँय।"

"तुम्हे तो रक्त की कल्पना करते समय पहले इसके रंग का ही ध्यान आता होगा"।—रेखा कह उठी, "पर शरीर से बाहर निकलने के पश्चात बहुत शीघ्र रक्त काला पड़ जाता है।"

"लाल और काला—कलाकार की दृष्टि में दोनों रंग बराबर हैं। हाँ रेखा, रक्त पहले लाल होता है, फिर वह काला पड़ जाता है" अनुमान ने जोर देकर कहा, "कदाचित् तुम कहना चाहती हो कि जब तक संसार के झगड़े खत्म नहीं हो जाते, कलाकार को अपना कार्य बन्द रखना चाहिये। पर यह कैसे हो सकता है—एशियाई सम्मेलन ही को लो। कोई मुझसे पूछे तो मैं यही कहूँगा कि यदि एक एक रंग मान लिया जाय तो कहना होगा कि तीस से अधिक रंगों के डेढ़ सौ से अधिक डेलीगेट सम्मिलित हुये।"

"रंगों के डेलीगेट या शेड?" रेखा ने व्यंग से पूछ लिया, "मै कहती हूँ कि क्या एशियाई सम्मेलन के रंगों का ठाठ हमारे अभागे देश के दुर्भाग्य में कुछ भी कमी नहीं कर सकता। ऐसे सम्मेलन तो शांति के दिनों मे शोभा देते हैं। सम्मेलन तो खत्म

हो गया। पर करफ्यू आर्डर अभी तक खत्म नहीं हुआ।"

अनुमान ने खिसियाना होकर कहा—"मैं मानता हूँ कि करफ्यू आर्डर सम्मेलन के लिए अपशकुन था। पर इसके अलावा कोई अन्य उपाय भी तो न था।"

रेखा खामोश हो गयी। यद्यपि वह कहना चाहती थी कि आज करफ्यू आर्डर भी बेबस नजर आता है। क्योंकि इसके बावजूद देश के विभिन्न शहरों में मकानों और दुकानों को आग लगाने और राह-चलते लोगों के छुरा भोंकने के समाचार आते हैं और बार-बार पुलिस और फौज लोगों की भीड़ पर गोलियाँ चलाने पर मजबूर हो जाती है। सुनते हैं सबसे अधिक अत्याचार स्त्रियों पर किये जा रहे हैं। शांति बेबस है। ऐसे में तो कलाकार के रंग भी संकट में पड़ गये हैं। कलाकार अपने आगे पीछे के दृश्यों से कैसे अछूता रह सकता है।

इतने में दादी-अम्मा थाल में खाना परोसकर ले आयी। अनुमान अपनी तूलिका को रंगों की प्लेट पर फेंककर अपनी जगह से उठा और थाल पर झुक गया। रेखा ने अपनी जगह से उठकर पहले चित्र का निरीक्षण किया। अभी तक उसका चेहरा उजागर नहीं हुआ था, आँखों ही आँखों में उसने दादी अम्मा का धन्यवाद किया और भोजन में सम्मिलित हो गयी। बोली, "पेट पूजा के विना तो सब रंग फीके नज़र आते हैं।"

"ढेर की ढेर चीजें पड़ी हैं, रेखा बेटी," दादी अम्मा ने हँसकर कहा, "आराम से पेट पूजा करो।"

अनुमान पूरे जोर से हाथ चला रहा था। रेखा हँसकर बोली—"इतनी शीघ्रता से तो तुम चित्र पर रंग भी नहीं लथेड़ते।"

दादी अम्मा रसोई की ओर घूम गयी, और दूसरे थाल में अधिक रोटियाँ और खाने की चीज़ रखकर ले आयी। अनुमान

घोला—"जिस रोज़ मुझे ज्यादा भूख लगती है, अम्मा को न जाने कैसे पता लग जाता है।"

रेखा ने शह दी—"समस्त संघर्ष भूख के लिए ही तो है। भूखा कलाकार क्या खाक चित्र बनायेगा।"

"चित्रों की बातें फिर कह लेना, रेखा बेटी", दादी अम्मा ने हँसकर कहा, 'पहले आराम से खाना खा लो।"

अनुमान बोला—"जब मैं चित्र बनाता हूँ तो कोई-कोई रंग यह कहता सुनायी देता है कि बताओ मेरा पथ किस ओर है।"

रेखा ने बढ़ावा दिया, "तो रंग भी पथभ्रष्ट हो जाते हैं ?"

अनुमान को अंदेशा था कि यदि उसने लंबी बातचीत शुरू कर दी, तो रेखा भोजन पर अधिक हाथ मार जायगी। ओठों तक आयी हुई बात को रोककर वह शीघ्रतापूर्वक पेट पूजा करता रहा। रेखा भी समझ गयी। वह और भी तेजी से हाथ चलाने लगी।

दादी अम्मा उठकर चित्र के सामने खड़ी हो गयी। बोली—"अभी तक रेखा का रूप तो नज़र नहीं आता।"

"अम्मा सच कहती है," रेखा ने आँखें चमकाकर कहा, "तुम्हारी इस असल और नकल की गड़बड़ की खातिर मुझे और कब तक उकड़ूँ बैठना होगा ?"

अनुमान ने इसका कुछ उत्तर न दिया, यद्यपि वह दादी अम्मा की रुचि के भजन की तुक मे 'नाम' के स्थान पर 'रंग' रखकर कहना चाहता था कि 'रंग ने लाखों जन है तारे।' अर्थात् रंग लाखों इन्सानों की मुक्ति का कारण बन चुका है। बोला—"चित्र को पूर्ण होने दो रेखा। इसे देखकर तुम यही कहोगी कि अब चाहे तुम्हें कोई मार ही डाले। क्योंकि इस चित्र मे तुम हमेशा ज़िन्दा रहोगी।"

रेखा के माथे पर तीन बल पड़ गये। जैसे वह कहना चाहती

हो कि उसकी मृत्यु उसके शत्रुओं को आये। वह क्यों मरने लगी, भाड़ में जाये चित्र। अभी उसने देखा ही क्या है। बोली—"अभी तक तो यों प्रतीत होता है कि चित्र के रंग आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं जैसे अपना अर्थ वे स्वयं भी न समझते हों।"

अनुमान ने पहले अट्टहास किया, फिर उसने रुकते-रुकते कहा—"रंगों पर विश्वास रखो, रेखा!"

भोजन से निवट कर अनुमान और रेखा अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। अनुमान फिर रंगों से खेलने लगा। वह कहना चाहता था कि आज तो रंग सीढ़ियों पर चढ़ रहे हैं। धरती के रंग और आकाश के रंग, छिदरे-छिदरे और घने रंग, जागरण और स्वप्न के रंग, हृदय और मस्तिष्क को टटोलनेवाले रंग, और समय के झूले में झूलनेवाले रंग।

दादी अम्मा रसोई की ओर घूम गयी। रेखा बोली—"जिस प्रीति से आज अम्मा ने भोजन पकाया उसी प्रीति से तुम्हें मेरा रूप उभारने के लिए रंग लगाने चाहियें, अनुमान।"

अनुमान हँसकर कह उठा, "मैं तो दो-एक रंगों को दबाना चाहता हूँ ताकि चित्र में एकस्वरता उत्पन्न हो जाय, जैसी कि इकतारे पर गानेवाले बैरागी के गान में होती है।"

रेखा ने शह दी—"कोई-कोई रंग तो पहले ही दबा होगा। जैसे बंगाल का दुष्काल का मारा हुआ कृषक। कहीं दबे हुये रंगों को न दबा देना।"

"कोई किस मुँह से इस कविता की प्रशंसा करे?"

रेखा ने आँखें घुमाईं। रेखा की फैलती हुई नाक और भी फैलती हुई नज़र आयी। उसकी उनींदी आँखें बार-बार कलाकार के चमकते हुये मस्तक की ओर उठ जातीं। अनुमान कहना चाहता था कि काली-कलूटी छिपकली-सी तेरी रंगत इस बात की दलील है कि वस्तुतः तुम देश के किसी आदि-वासी क़बीले से

संबंध रखती हो। तुम्हारी रगों मे बहनेवाले रक्त में आर्य रक्त का सम्मिश्रण बहुत कम मालूम होता है। यद्यपि अनगनत शताब्दियों से तुम्हारे पुरखा आर्य सभ्यता से प्रभावित होने के कारण अपने कबीले से निकलकर आर्यों की संतान में सम्मिलित हो चुके हैं। परंतु तुम्हें अपनी काली चमड़ी पर शरमाने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि यही तो तुम्हारी बपौती है। बाह्य रूप से उसने इतना ही कहा :

"अपनी गरदन ज़रा और अकड़ा लो, रेखा !"

रेखा का गोल-मटोल चेहरा कुछ-कुछ चौमुखा-सा नज़र आने लगा। उसकी आँखों से एक जंगली-सा मनोभाव झलक उठा। अनुमान ने तीन-चार बार बड़े ध्यान से रेखा के चेहरे का निरीक्षण किया। उसे यों अनुभव हुआ कि रेखा को अपने आदि-वासी क़बीले की संस्कृति की पुकार सुनाई दे रही है और यह पुकार यही है कि आर्यों की सतान से बदला लो। आखिर यह झूठ तो नहीं कि देश के आदि-वासी कबीले, जो आज जंगलों और पहाड़ों के वासी हैं, आर्यो के इस देश मे आने से पूर्व मैदानों में आबाद थे। आर्यों ने उन्हे उनके ग्रामों से मार भगाया और अपनी सभ्यता फैलाने लगे। आदि-वासी कबीलों के बहुत से लोग आर्य संस्कृति का प्रभाव स्वीकार करने के बजाय और धीरे-धीरे आर्यो मे विलीन हो गये। बचे-खुचे आदि-वासी क़बीलों की आज कोई पूछ गछ नहीं। देश की राजनीति सौ-सौ पलटे खाती है परंतु आदि बासी अपने यहाँ समय की मंद गति के अनुरूप छकड़े की चाल से रींग रहे हैं। एक दिन आयगा कि यही आदि बासी विद्रोह के लिए तैयार हो जायेंगे और अपने लिए जन्म-भूमि की माँग करेंगे। अनुमान की दूरदर्शी निगाहे रेखा की आँखों मे इसी माँग का निरीक्षण कर रही थीं। उसकी तूलिका पौन दर्जन रंगों के सम्मिश्रण से इसी मनोभाव का

चित्रण करने लगी। कभी आड़े-तिरछे, कभी गोल चक्करों में रंग फैल रहे थे।

रेखा कह उठी—"कभी-कभी कोई चित्र देखकर मुझे ख्याल आता है कि एक रंग दूसरे रंग को गालियाँ दे रहा है।"

"तुम भी कैसी-कैसी बातें सोचने लगती हो, रेखा।" अनुमान ने अपनी फुदकती हुई तूलिका को रोककर कहा, "इस चित्र मे कम-से-कम ऐसी कोई बात नहीं होगी।"

"कोई-कोई रंग तो यों नज़र आता है जैसे काटने को दौड़ रहा हो," रेखा ने फिर मुँह बनाया। जैसे वह जी से यही चाहती हो कि कलाकार चिढ़कर कह उठे—तुम अपने घर जा सकती हो, मुझे तुम्हारा चित्र बनाने की आवश्यकता नहीं।

अनुमान बोला—"जब एक रंग दूसरे रंग से मिलता है तो सभ्यता जन्म लेती है, एक रंग दूसरे रंग को काटने को दौड़े, इसे तो सभ्यता नहीं कहते। बहुत-से रंगों का मिलाप तो बहुत-सी सभ्यताओं के परिचय का प्रतीक है। पर शर्त यही है कि सब-के-सब रंग अपने-अपने स्थान पर ठीक और जीवित हों। नाचते, कूदते रंग, दौड़ते रंग सदा खुश होकर मिलते हैं। यों भी होता है कि एक रंग खींचना शुरू कर दे और दूसरा रंग उतना ही लिपटता चला जाय। एक रंग दूसरे रंग से शत्रुता करे, यह तो सभ्यता का अपमान है।"

"उकड़ूँ बैठे-बैठे कोई क्यों न तंग आ जाय?" रेखा ने महीन निगाहों से अनुमान को घूरा, "रंगों का दर्शन-शास्त्र बघारने के बजाय ज़रा चित्र को पूर्ण करने की ओर ध्यान दो।"

"अब यह कठिनाई एक-आध घंटे की और समझो," अनुमान ने गिड़गिड़ाकर कहा, "रंग में बड़ी शक्ति है। मुझे विश्वास है यह चित्र तुम्हें अमर कर देगा। काश, मैं यह चित्र एशियाई

सम्मेलन की प्रदर्शिनी में रख सकता। इसके सम्मुख 'धरती माता' का रंग भी फीका पड़ जाता।"

"तुम बार-बार एशियाई सम्मेलन की बात ले बैठते हो।" रेखा ने नाक भौं सिकोड़ कर कहा, "मैं मानती हूँ कि एशियाई सम्मेलन बहुत बड़ा उत्सव था। पर यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि समय के गालों से अश्रु पोंछने में यह सम्मेलन कहाँ तक सफल हुआ।"

अनुमान बोला—"यदि एशिया वाले आपस में एका न रखें तो यूरोप उन्हें खा जायगा।"

रेखा के चेहरे पर एक व्यंगपूर्ण मुसकान फैल गई। एक अदृष्ट-सी कटुता ने इस मुसकान को झँझोड़ा और वह कह उठी—'क्या यह कुछ कम व्यंग्योक्ति है कि एशियाई सम्मेलन के पंडाल के भीतर मंच पर एशिया के नक्शे के दोनों ओर एशिया के बहुत से देशों के झण्डे साथ-साथ लगे हुए थे। पर हमारे अपने देश का झण्डा कहीं नजर नहीं आ रहा था।"

अनुमान ने घबरा कर रेखा को घूरा। बोला—"तुम बहुत भोली हो, रेखा! प्रत्येक देश का झण्डा वहाँ मौजूद था। पर हमारे देश का झण्डा तो अभी तक बहुत-सी श्रेणियों के सार्वजनिक झण्डे के रूप में नहीं अपनाया जा सका।"

रेखा कह उठी—"जब तक देश का एक झण्डा मौजूद नहीं, इतने बड़े सम्मेलन से कैसे वास्तविक लाभ पहुँच सकता है? तीन चार रंगों के मेल से सार्वजनिक झण्डा बनाना कुछ इतना कठिन काम भी तो नहीं। पर रंगों के मेल से पहले आत्माओं के मेल की आवश्यकता है।"

"शायद तुमने गौर नहीं किया", अनुमान ने चित्र पर रंग लथेड़ते हुए कहना शुरू किया, "दूसरे देशों के झण्डों के समीप प्रतीक रूप से अपने देश का रंग यों पेश किया गया था। दोनों

ओर पाँच-पाँच कोनो वाले सितारे इस बात के परिचायक थे कि गणित विद्या का जन्म इसी देश मे हुआ। बीच में सात कोनों वाला सितारा इस बात की ओर संकेत कर रहा था कि हम सार्वभौमिकता और ग्रहणशीलता के पक्षपाती है। नीचे की ओर कुछ रेखायें पंचतत्वों का प्रतिनिधित्व कर रही थीं और इनके ऊपर पाँच पंखड़ियो वाला कमल देश की संस्कृति का सूचक था।"

रेखा की कल्पना मे देश का झण्डा लहरा रहा था। वह आँखे झपकाते हुए कह उठी--"एशियाई सम्मेलन में इन सितारों और पाँच पंखड़ियों वाले कमल की ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया होगा। काश दूसरे देशों के साथ हमारे देश का झण्डा भी मौजूद होता।"

रेखा ने घूर कर अनुमान की ओर देखा। जैसे यह सब उसी का दोष हो कि अभी तक झण्डे के प्रश्न पर राजनैतिक दलों मे राय का फर्क पाया जाता है। वह यह नही समझ सकती थी कि आखिर इतनी-सी बात पर फैसला क्यों नहीं कर लिया जाता। सब तो स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं। सब तो प्रगति चाहते हैं।

साथवाले कमरे से चरखे की घूँ-घूँ गूँज उठी। रेखा चाहती थी कि उठकर दादी अम्मा से कहे कि चरखे की घूँ-घूँ पृष्ठभूमि के संगीत के रूप मे बहुत निरर्थक प्रतीत होता है। इस घूँ-घूँ मे इतनी शक्ति नही कि देश के माथे से अपमान के धब्बे धोकर साफ कर सके। जब तक देश का एक झण्डा नही मान लिया जाता मातृभूमि की आँखों से अश्रु बहते रहेंगे और जनती इसी प्रकार बेचैन और वेदनामय रहेगी। वह अनुमान से कहना चाहती थी कि अपने रंगों को बन्द कर दो जब तक समस्त रचनात्मक शक्तियाँ किसी एक केन्द्र के गिर्द जमा नहीं

हो जातीं और हमारी कठिनाइयों का कोई हल तलाश नहीं कर लिया जाता।

रेखा की संक्षिप्त-सी खामोशी भी अनुमान को बहुत असह्य लगी। बोला—"आज तो तुम्हारा रूप देखा नहीं जाता। मालूम होता है कि सौ परदों मे रहने वाली तुम्हारी आत्मा जाग उठी है।"

"आखिर इस प्रशंसा का मतलब ?" रेखा ने आश्चर्य से पूछ लिया।

अनुमान ने हॅसते-हॅसते कहा—"अब तो रंग बहुत आगे निकल चुके है। अब ये अपनी मंजिल पर पहुँच कर ही रुकेंगे। मैं दादी अम्मा को पुकार कर कहना चाहता हूँ कि आज इस घूॅ-घूॅ को रहने दो। ऐसा न हो कि कोई रंग बिदक जाय और केवल उसी के कारण समस्त किये धरे पर पानी फिर जाय आज एशिया के माथे पर मुझे नया ही रंग उभरता नज़र आ रहा है।"

रेखा कह उठी'—"एशिया की चिन्ता मे घुलने वालों से मैं केवल इतना ही कहना चाहती हूँ, पहले घर की गुत्थियाँ सुलझा ले।"

अनुमान बोला—"मुझे तो तुम्हारे चेहरे पर भी एशिया का नक्शा उभरता नज़र आता है, रेखा।"

"ऊँह, एशिया का नक्शा," रेखा ने नाक भौं सिकोड़कर कहा, "यहाँ तो प्रतिदिन पुराने घावो मे नये घावों की वृद्धि होती रहती है।"

अनुमान कह उठा—"बहुत शीघ्र एशिया के ओठों पर मुस-कान थिरक उठेगी।"

"तीतर का रंग मटियाला होता है, क्योंकि वह शिकारियों की दृष्टि से बचना चाहता है," रेखा ने शह दी, "मैं सोचती हूँ

कि तुम्हारे एशिया से कहूँ कि तीतर से शिक्षा लो। शायद तीतर को अपना रंग मटियाला-बनाने के लिए शताब्दियों तक इसी चिन्ता मे घुलना पड़ा होगा कि वह खेतों मे छुपे रहने की क्या तरकीब निकाले। यूरोप की निगाह से बचने के लिए एशिया को भी कोई ऐसी ही तरकीब निकालनी चाहिए। उसे भी मटियाले रंग मे बचाव का कुछ न कुछ उपाय अवश्य नजर आ सकता है।"

"ही ही ही," अनुमान ने हँसते-हँसते कहा, "तो पहले ही बता दिया होता कि तुम्हे धरती माता का मटियाला रंग पसन्द है, तुम्हारे चित्र मे इसी रंग का आधिपत्य दिखाया जा सकता है। पर मैंने आज एक नया प्रयोग किया है, और बीसियों रंगों का सम्मिश्रण उपस्थित किया जा रहा है। कदाचित् तुम्हें विश्वास नहीं आयगा कि रंगों के भी पंख होते हैं।"

रेखा उकड़ूँ बैठे-बैठे तंग आ चुकी थी। वह चाहती थी कि दोनो भुजाये फैलाकर अँगड़ाई ले और चित्र की दाद देने की बजाय अनुमान पर ऐसी फबती कैसे कि एशियाई सम्मेलन की प्रदर्शिनी मे मिले हुए प्रथम पुरस्कार का सब नशा हिरन होजाय। वह हैरान थी कि आज सवेरे-सवेरे उस पर अनुमान के यहाँ आने की धुन क्यों सवार हो गयी थी। अनुमान के रंगों में इतनी शक्ति कहाँ है कि जीवन से टक्कर ले सके? अब तो उसकी तूलिका को रुक जाना चाहिये। यह चित्र न हुआ कोई डाइन हुई जो इतने घण्टों से बराबर रंग निगल रही है। मुझे इससे क्या प्राप्त होगा? जिसकी जेब में पैसे होंगे इसे खरीद ले जायगा। कलाकार लाख प्रयोग करता रहे, चित्र हमेशा पूँजी-वादियों के यहाँ बिकता है। क्या ये लोग रंगों का आशय समझते हैं?

अनुमान ने रेखा को छेड़ा—'रंग वास्तव में त्रिमूर्त्ति के

समान है, रेखा !"

रेखा ने हाँ में हाँ मिलाने की कुछ आवश्यकता न समझी, न उसने मतभेद प्रकट करने को विशेषता दी। वह कहना चाहती थी कि रंगों के पीछे भागते-भागते तुम्हारा मस्तिष्क खराब हो गया है। रंगों का आशय तुम स्वयं भी नहीं समझते।

अनुमान ने अपने कथन पर हाशिया चढ़ाते हुए कहा—"रंग ही ब्रह्मा के समान जन्म देता है। रंग ही विष्णु के समान पालन करता है, और रंग ही शिव शम्भु महेश या नटराज के समान नाश कर डालता है।"

रेखा ने अनुमान को घूरा। वह समझती थी कि अनुमान सच कहता है। क्योंकि एक देश का झण्डा जो रचना और विकास का दम भरता है, दूसरे देश के लिए ध्वंस का कारण बन जाता है।

अनुमान कह उठा—"अपना चित्र देखकर तुम खुश हो जाओगी, रेखा! त्रिमूर्त्ति के रंग एक ही तल पर उजागर हो गये हैं।"

रेखा ने झुँझलाकर कहा—"अब तुम्हारी आज्ञा के बिना तो मैं इसे देखने से रही।"

अनुमान ने उसे छेड़ा—"तुम बहुत अच्छी लड़की हो।"

रेखा उठ कर खड़ी हो गयी और चित्र का निरीक्षण करते हुये कह उठी—"कम से कम यह मेरा चित्र कदापि नहीं हो सकता।"

"तो यह किसका चित्र है?" अनुमान रेखा की आँखों में इस कटुता का विश्लेषण करने लगा।

"मैं क्या जानूँ यह किसका चित्र है," रेखा ने अनुमान को झिंझोड़ा।

"लोग एक समय में एक ही सन्देश सुन सकते हैं," अनु-

मान ने सफाई पेश की।

परे से दादी अम्मा भी इधर चली आयी और चित्र देख कर बोली, "आज तुमने कैसे-कैसे रंग लगाये हैं, बेटा! तुमने तो रेखा का रूप ही बिगाड़ डाला।"

"अभी थोड़ा काम बाक़ी है," अनुमान ने खिसियाना हो कर कहा।

रेखा के चेहरे पर निराशा फैल गयी! अनुमान बोला—"अम्मा, रेखा के लिये चाय बनाओ। मैं उसे खुश किये बगैर नहीं जाने दूँगा।"

"मुझे चाय नहीं चाहिये", रेखा ने बेदिली से कहा।

दादी अम्मा बोली—"ग्वाले के आने का समय तो हो चुका है। मैं बाहर जाकर देखती हूँ।"

दूध के लिये पात्र उठा कर दादी अम्मा बाहर निकल गयी। अनुमान ने चित्र उठा कर दीवारगीरी पर रख दिया और स्वयं अपनी कुरसी पर आ बैठा। रेखा उस दीवार की ओर घूम गयी जहाँ 'धरती माता' का चित्र लटक रहा था।

पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट। अनुमान ने रेखा को सम्बोधन करने की कुछ आवश्यकता न समझी। अम्मा अभी तक नहीं आई थी। अनुमान के हृदय और मस्तिष्क में किसी ने काँटा-सा चुभो दिया। उसने चिल्ला कर कहा—"ज़रा बाहर जाकर अम्मा को तो देख आओ रेखा।"

रेखा ने इसका कुछ उत्तर न दिया। यद्यपि वह चाहती थी कि पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो कि 'धरती माता' के मुकाबले पर मेरा अपना चित्र निरर्थक क्यों नज़र आता है। उसकी कल्पना चमक उठी।

एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट। अनुमान बोला—"ग्वाला कभी-कभी बहुत देर से आता है। अम्मा को अन्दर

बुला लाओ, रेखा।"

रेखा बाहर चली गयी। कुछ क्षणों के पश्चात् वह दौड़ी-दौड़ी अन्दर आयी और बोली—"खून—एक नहीं—दो खून।"

दोनों बाहर की ओर दौड़े। सड़क के दूसरे किनारे पर ग्वाले की लाश पड़ी थी और पास ही औंधे मुँह दादी अम्मा की लाश पड़ी थी। दूध की मटकी टूट जाने के कारण सड़क पर मक्खियों ने धावा बोल दिया था। एक क्षण के लिए रेखा और अनुमान ने एक दूसरे से कुछ पूछना चाहा। उन्होंने ग्वाले की लाश उठा कर फुटपाथ पर रख दी और फिर दादी अम्मा की लाश उठाकर घर की ओर चल पड़े।

एक क्षण के लिये रेखा का ध्यान अपने चित्र से हटकर 'धरती माता' की ओर पलट गया।

कुंग पोश

और सब फूल वसन्त मे खिलते हैं; पर केसर पतझड़ मे खिलती है। वह मटमैली अबाबील, जो अभी-अभी उस टीले से पंख फैला कर उड़ गई थी, शायद केसर को जी भरकर देखने के लिए ही इधर आ बैठी है। क्या यह धरती कभी इतनी बाँझ हो जायगी कि केसर का उगना बन्द हो जाय?

कितनी चहल-पहल है यहाँ। ये लड़कियाँ हैं या रंगों की परियाँ? इनको देखता हूँ, तो ऐसा लगता है कि एक बहुत बड़ा दुपट्टा है, जिसमें ये रंग की धारियाँ बनकर लहरा रही हैं। वे केसर के फूल चुन रही हैं। उनके सुडौल शरीर देखता हूँ,तो उस बुत-तराशको दाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिसने मांस मे पत्थरकी-सी नोक-पलक पैदा की।

रंग की इन लहरोंमे मेरा दिल, जो पहले अमीराकदल पुल के नीचे से गुजरनेवाला शान्त और बेरंग जेहलम[1] था, अब उछलने लगा है। क्या काश्मीर की सभी स्त्रियाँ एक-सी सुन्दर हैं? नहीं तो। न तो सभी एक-सी कोमल हैं और न एक-सी सूक्ष्म और मदमाती ही। रंग अलग बात है, रूप अलग।

ठेकेदार ललकार रहा है—"जल्दी हाथ चलाओ, जल्दी।"

1 हिन्दी में प्रायः 'जेहलम' को 'झेलम' लिखते हैं जो अशुद्ध है।

लड़कियाँ ख़ुशी-ख़ुशी फूल चुन रही हैं। वे पहले ठेकेदार की कड़क सुनकर सहम जाती हैं; पर फिर बातों का वही सिलसिला शुरू हो जाता है। जैसे भूत, वर्तमान और भविष्य का सारा सौन्दर्य इस खेत में जमा हो गया है। ये गोरी-गोरी गरदनें; काली-काली आँखें—काली-काली बदलियों-सी—जिनमें बिजली चमक रही हो। होंठ—कार्तिक के शहद से कहीं रसीले और चमकीले। बातें करती हैं, तो होंठों के कोने हिलते हैं और मेरे दिल पर रंगीन फुहार पड़ती है।

कुछ बूढ़ी स्त्रियाँ भी फूल चुन रही हैं। साल के साल केसर चुनते-चुनते उनकी जवानी बीत गई है। जब वे दुलहिनें बनी इधर आ निकली थीं, तब भी ये खेत इसी तरह केसर पैदा करते थे।

वह लाल फिरन[1] वाली युवती, जो किसी बच्चे की माँ बनने वाली है, फूल चुनती-चुनती थक जाती है, जैसे लाले की टहनी वर्षा के बोझसे झुक जाय। मेरी निगाह घूम-फिर कर उस छिन-ब्याही अल्हड़ लड़की पर आ ठहरती है, जिसने हरा ऊनी फिरन पहन रखा है। उसकी नरगिसी आँखों में लाज है, झिझक है और कुछ-कुछ डर भी। उसके चेहरे पर बचपन की नटखट लाली गभीरता की ओर पहला कदम उठा रही है। यह नहीं कि उसने मुझे देखा नहीं। देखनेमें तो कुछ बुराई नहीं। और यदि इसमें कुछ बुराई है, तो मैं उससे पूछना चाहता हूँ कि कनखियों से किसी अपरिचित की ओर देखना और फिर पलकें झुका लेना क्या कम अन्याय है? उसकी बाँहों की तराश देखूँ या उसकी पतली-पतली उँगलियाँ?

ठेकेदार के बोल डाँट रहे हैं, झँझोड़ रहे हैं, और जब वह लाल-पीला हो कर कह उठता है—'और फुर्तीसे—और फुर्तीसे',

१ काश्मीरी स्त्रीकी पोशाक।

तब हर एक का चेहरा पीला पड़ जाता है, बूढ़ी स्त्रियों का भी।

फूलों की पत्तियाँ बैंगनी रंग की हैं। हर एक फूल में छै छै तार हैं—तीन पीले और तीन नारंगी। फूल चुनने के बाद उन्हें धूप में सूखने के लिए डाल दिया जायगा। फिर नारंगी तार, जो असल केसर है, अलग कर लिए जायँगे। पीले तार फेंक दिए जाने चाहिएं; पर या तो वे यों ही केसर में मिल जायँगे, या उसका वजन बढ़ाने के लिए जान-बूझकर उस मे मिला दिये जायँगे।

पिछले सप्ताह जब मैं अपनी पत्नी और पुत्री के साथ चाँदनी रात मे केसर के फूल देखने आया था, तो केसर के तार सोने की तरह चमक रहे थे। कभी मैं ऊपर आकाश पर तारों को देखता रहा था और कभी केसर के तारों को। मेरे मन में एक सुन्दर चित्र बन गया है। उस हरे फिरन वाली अल्हड़ लड़की ने फिर एक बार मेरी ओर देख लिया है। सात साल पहले भी मैं काश्मीर आया था। जो चित्र उस समय मेरे मन में अपने-आप बन गया था, वह भी तो क़ायम है। यह दूसरी बात है कि उस में केसर का खेत मौजूद नहीं; पर वह कमी इस समय पूरी हो रही है।

केसर चुनती-चुनती कुमारियाँ एकाएक ऐसा गीत मिलकर गाने लगी हैं, जिसे सुनकर ठेकेदार के बुड्ढे गले मे भी सुर खुर-खुराने लगे हैं:—

यार गोमय पाम्पोर वते कुंग पोशव रुटनालमते
सुछम तते बछुस यते बार सायबो बोजतम जार।

—'मेरा प्रीतम पाम्पुर की तरफ़ चला गया। (और वहाँ) केसर के फूलों ने उसे गले लगा लिया। (आह!) वह वहाँ है और मैं यहाँ! ओ ख़ुदा! मेरी विनती सुन।'

वह हरे फिरन वाली शरमीली लड़की बड़ी होकर शायद

इस गीत में अपने जीवन का कोई फीका पड़ा हुआ रंग उभारने का यत्न करेगी।

यह ऊँची-नीची धरती है। यह कुछ जेहलम के किनारे-किनारे और कुछ उससे दूर हटती गई है। कितने ही छोटे-छोटे अलग-अलग टीले-से नज़र आ रहे हैं।

मैं ठेकेदार से पूछता हूँ—"इन टीलों को इधर क्या कहते हैं ?"

वह उत्तर देता है—"वुडर या करेवा।"

ठेकेदार का चेहरा, जिस पर गहरी झुर्रियाँ नज़र आ रही हैं, और भी शान्त हो गया है। मानो वह भी एक ज़रूरी अदमी है और जैसे इस प्रश्न का उत्तर वही दे सकता है। उसने मुझे अपने पास खाट पर बैठा लिया है। वह मुझे बता रहा है कि ये वुडर या करेवा सब के सब बारानी धरती के टुकड़े हैं; पर हैं बड़े उपजाऊ।

"तो क्या इन सभी वुडरों में केसर पैदा होती है ?"

"नहीं तो। केसर तो पाम्पुर के वुडरों में ही पैदा होती है। इस बारह हज़ार बीघा धरती पर खुदा का बड़ा फ़ज़ल है।...यहाँ मिट्टी केसर पैदा करती है।"

उसने मुझे यह भी बताया है कि यह ज़मीन महाराज की निजी मिलकीयत है। जो भी इसे ठेके पर लेता है, इसकी आधी केसर अपने नीचे खेती करने वालों में बाँट देता है और आधी स्वयं ले लेता है, जिसमें से उसे ठेके का रुपया चुकाना होता है।

"आधी छटाँक केसर तैयार करने के लिए चार हज़ार तीन सौ बारह फूल चाहिएं।"—वह बड़े गर्व से कह रहा है, जैसे उसके बाप-दादा सदा केसर का ठेका लेते रहे हैं। उसकी कुशल आँखें, जिन में कुछ आत्म-प्रशंसा भी झलकती है, मस्त हो उठी हैं—जैसे उसने केसर का यह भेद मुझे बताकर कभी न

कभी केसर का ठेका लेने के लिए उकसा दिया है।

(२)

केसर से मुझे प्यार हो गया है। मैं इसे सब जगह देखना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान के नक्शे पर मैं हर जगह केसर छिड़क देना चाहता हूँ।

"धन्य है वह धरती, जहाँ केसर ने जन्म लिया है"—यह कहते हुए कल एक दुकानदार ने मेरे लिए पाँच रुपये की केसर तोल दी थी। जेब से रुपये निकालता हुआ मैं सोच रहा था कि कौन जाने श्रीनगर के इस दुकानदार की पत्नी का नाम केसर हो और वह रात को घर आ कर उसके सामने भी कह उठे—'धन्य है वह धरती, जहाँ केसर ने जन्म लिया।' और वह स्त्री यह समझे कि उसके सौन्दर्य की प्रशंसा हो रही है, यह नहीं कि उसके पति ने एक खाना बदोश लेखक के पास थोड़ी केसर बेच-कर एक-आध रुपया कमा लिया है।

मेरे मन की सारी कविता सिमट सिमटा कर केसर के इर्द-गिर्द घमने लगी है। मेरी पत्नी ने केसरिया साड़ी पहन रखी है। माँ की देखादेखी मेरी पुत्री ने भी केसरिया फ्राक पहन लिया है। और मैं खुश हूँ।

काश ! उस शरमीली लड़की ने केसर के खेत में केसरिया फिरन पहना होता, तो उसका गोरा रंग एक सुनहरी झलक ले उठता। वह मुझे और भी सुन्दर दिखाई देती। मैं सोचता कि वह केसर के खेत की बेटी है, या फिर केसर की देवी है!

शफ़क की केसरिया प्रसन्नता देखता हूँ, तो सोचता हूँ कि उषा ने मेरी भावना समझ ली है। पर यह रंग तो उसे सदा से प्यारा है। नित नये हैं केसरिया उषा के चाव और वे सब रंगीन भाव, जो सदा से कवियों और लेखकों से होली खेलते आये हैं। क्या केसरिया उषा की ओर देख कर उस शरमीली अल्हड़ लड़की

को यह ध्यान नहीं आया कि उसी की तरह वह भी केसरिया फिरन पहन ले ? या क्या वह प्रतिदिन दिन चढ़े जागती है ? उषा को न सही, केसर चुनती-चुनती केसर के तार तो वह देखती ही है और उन्हे देखकर खो-सी जाती होगी। यहीं से वह केसरिया फिरन का खयाल बड़ी आसानी से ले सकती थी। पर कौन बताये उसे कि वह सफेद ऊनी फिरन, जिसे उसने बड़े शौकसे सिलवाया है, या सिलवाना है, जरूर केसरिया रँगा ले ?

पाम्पुर श्रीनगर से बहुत दूर नहीं। तॉगा जाता है। पर जो आनन्द पैदल जाने में है; वह तॉगे में कहॉ ? मै कई बार पाम्पुर हो आया हूॅ, और केसर के फूलों से कहीं ज्यादा वह अल्हड़ लड़की ही मुझे इस आकर्षण का कारण प्रतीत होती है। हर बार वही हरा फिरन—हरा फिरन! क्या उसके पास केवल यही एक फिरन है ? जी चाहता है कि आगे से अपनी पत्नी को तब तक नई साड़ी न लेकर दूॅ, जब तक उसकी सब-की-सब साड़ियाँ फट नहीं जायॅ। उस अल्हड़ लड़की में क्या कुछ कम जान है ? उसका दिल क्या किसी अलग मिट्टी का है ?

बहुत यत्न करता हूॅ कि किसी तरह वह अल्हड़ लड़की मेरे दिल से निकल जाय ; पर वह तो उल्टा मेरे दिल में समाती चली जा रही है। कई बार तो मैंने उसे स्वप्न में भी देखा है। वह मुझे क्यों नहीं छोड़ती ? वह मुझे क्यों घूरती है ? क्यों खिलखिला कर हॅस पड़ती है ? मैं क्या जानता था कि मेरे ये भाव यों उछल पड़ेंगे। जैसे वह कहती हो—'हरे फिरन से इतनी नफरत क्यों ? घास भी तो हरी होती है। बल्कि मैं तो चाहती हूॅ कि तुम भी हरे कपड़े पहनो। वृक्ष भी तो हरे दुशाले ओढ़ते है।... पर तुम न मानोगे।...अच्छा, मैं ही मान जाऊॅगी। मैं केसरिया फिरन पहने लेती हूॅ ।...क्या तुमने यह समझ लिया था कि मेरे पास केसरिया फिरन है ही नहीं ? वाह, ख़ूब सोचा तुमने !

पिछले साल मैंने यह केसरिया फिरन बनवाया था ; पर यह न जानती थी कि एक दिन एक बनजारा आयेगा और इसे पहनने की फ़रमाइश करेगा। मेरी ओर देखो ..देखो .देखो तो...मैंने केसरिया फिरन पहन लिया है। मैं केसर के खेत की बेटी हूँ या फिर केसर की देवी हूँ।'

कल भी दिन भर इसी कोशिश मे रहा कि किसी तरह यह लड़की मेरे दिल मे न आने पाये। एक लेख लिखने बैठा, तो मैंने महसूस किया कि यह केसर की देवी मुझे कह रही है—'किस पर लिखोगे ? उस केसर के खेत पर, जहाँ तुमने मुझे पहले-पहल देखा था ? या उस ठेकेदार पर, जिसने तुम्हें अपने पास बड़े अदब से खाट पर बैठा लिया था ?'

जब मैं नहाने लगा, तब मेरे मन की किसी अज्ञात गहराई से केसर की देवी की आवाज़ आने लगी---'पानी बहुत ठण्डा है क्या ? मैं जानती हूँ, तुम ठण्डे पानी से नहाना पसन्द नहीं करते। मुझ से क्यों न कहा ? मैं क्या इनकार कर देती ? मैं झट आग सुलगाती और पानी गरम कर देती। साबुन है ? है तो। अच्छा, नहा लो। मैं जाती हूँ।'

नहाकर ग़ुस्लखाने से निकला, तो मेरा चेहरा उदास था। पत्नी ने पूछा—'क्या बात है ? कुछ खोये-खोये-से नज़र आते हो !' पर मैंने हँस कर बात आई-गई कर दी। आख़िर उससे क्या कहता ? मैं भीतर ही-भीतर घुला जारहा था और पछताता था कि केसर के खेत पर गया ही क्यों।

जब मैं सैर करने के लिए बेरंग जेहलम के किनारे हो लिया, तब भी मैंने महसूस किया कि वह केसर की देवी मेरा पीछा कर रही है। एक परों वाला रंग है, जो उड़ता चला आ रहा है। यह रंग अपने स्थान पर चिपक गया और तसवीर बोल उठी—'दासी का क्या कसूर है ? यों दिल हटा लेना था, तो मुझे न बुलाया

होता, मेरा सोता प्यार न जगाया होता। यह कहाँ की रीति है जी? खेत की मेंड़ के पास खड़े होकर क्यों टकटकी लगा कर तुम मेरी ओर देखते रहे थे? तुम मुझ से कुछ बोले तो न थे; पर तुम्हारी आँखें तो बोली थीं। तब उन्हें क्यों न समझाया तुमने? एक बार नहीं, दो बार नहीं, तुम तो पूरे सात बार पाम्पुर के खेतों पर आ निकले और वह भी पैदल। जब मैं यह जान गई, तो तुमसे प्यार करने लगी।'

मैं परेशान-सा हो गया। कुछ बोल भी तो न सका। आख़िर क्या कहता? कसूरवार तो था ही। उसकी बातों का मैंने बुरा नहीं माना, पर मैं उसका स्वागत नहीं कर सकता था। मैं चाहता था, वह मुझे छोड़ दे, क्षमा कर दे। जब उसकी आँखों में आँसू आ गये, तो मैं डरे हुए हिरन की तरह रुक कर खड़ा हो गया। पहले तो मैंने सोचा कि उससे साफ़-साफ़ कह दूँ—'कैसा प्यार? कहाँ का आनन्द?' पर मैं खुल्लम-खुल्ला यह न कह सका। इसके बजाय मैंने कहा—'केसर की देवी, रो नहीं। रोने से क्या लाभ? संसार को देख। संसार की विशालताओं को देख। दूर नहीं, तो पाम्पुर को ही देख। आँसू-भरी आँखे देखती तो हैं; पर एक धुँधली-सी पत्त-चादर के बीच में से। ज़िन्दगी और निगाहों के बीच आँसू न होने चाहिएँ। इससे रंग अपनी वास्तविकता खो देते हैं। और तेरी ज़िन्दगी तो उड़ने वाली अबाबील है। क्या आँसू तेरे पंख भारी न कर देंगे? तुझे तेरा प्रेमी मिल जायगा एक दिन; पर मुझे छोड़ दे, क्षमा कर दे!' वह न मानी। बराबर रोती रही। न मैं केसर के खेत पर गया होता, न यह मुसीबत आ खड़ी होती।

मैं बाज़ार मे जा निकला। मन पहले की तरह परेशान था। अब यह अनुभव भी था कि मैं अकेला हूँ। अच्छा ही हुआ। पैर की हर हरकत हल्की प्रतीत होती थी। बाज़ार तो किसी की

मिलकियत नहीं। मैं आज़ाद था। फिर यों ही मेरी निगाह एक छत की ओर उठ गई। एक क्षण के लिये मुझे ऐसा लगा कि मेरे मन से रंग का एक टुकड़ा उड़ कर सामने खिड़की में थिरकने लगा है। मेरे पैर रुक गये। कितना हमवार चेहरा था। सुर्ख गाल—जैसे दो उजले ताक़ों में दीए जल रहे हों। और आँखें—दो अँधेरी रातें, जिन में टटोल-टटोल कर चलना पड़ता है।

(३)

लाख यत्न करने पर भी दिल हटता नहीं। मैं उलझा हुआ रहता हूँ—अपने सिर के लम्बे बालों की तरह। राह चलते डरता हूँ। पहले वह पाम्पुर की देवी थी। वह मेरे मन का केसरिया ख़याल अब वह स्त्री थी, जो खिड़की में यों बैठी थी, जैसे चौखट में तस्वीर जड़ दी गई है। वह मेरी ओर किस तरह देखती रही थी। मैंने अपने हृदय में एक चुटकी-सी महसूस की थी, जैसे कोई नादान बच्चा किसी सुन्दर रंगीन तस्वीर की बोटी नोच ले। वह क़सूरवार थी? नहीं, वह बेकसूर थी। फिर कसूर किसका था? तो क्या यह मेरा कसूर था?

कल मैंने फिर दूर से उसे देखा, तो वह फाख्ता की तरह मुझे देखती रही। घर लौटने पर मैंने महसूस किया कि दो काली मदमती आँखें मेरा पीछा कर रही हैं, दो अँधेरी रातें मेरे जीवन उजाले में घुल-मिल जाना चाहती हैं। मैंने अपनी पत्नी की शरण ली। मेरा दिल धड़क रहा था। दिल मानता नहीं। इसका भेद मैं स्वयं नहीं समझता—

दिल दरिया समुन्दरों डूँघा
कौन दिलां दीयाँ जाणे?
विच्चे चप्पू विच्चे बेड़ी
विच्चे वंज मुहाणे!

—'दिल भी एक दरिया है, समुद्र से कहीं गहरा। कौन जान

सकता है दिल की बातें ? इसमें क्या चप्पू, क्या किश्ती और क्या मल्लाह (सभी डूब जाते हैं)।'

क्या पंजाब के इस किसान को भी मेरी तरह ऐसी उलझन में फँसना पड़ा था ? अब जो उस छत की ओर देखता हूँ, तो यही मालूम होता है कि उस पाम्पुर की देवी ने ही यह रूप धारण किया है। पर उसका फिरन तो हरा था और इसे लाजवर्दी रंग पसन्द है। वह केसरिया फिरन क्यों नहीं पहन लेती ? पर हर फूल को अपना रंग पसन्द है, जैसे हर पत्ती को अपना गाना।

मुझे याद है कि बचपन में एक बार मैंने लाजवर्दी कोट सिलवाया था। वह बुरा तो नहीं लगता था। माँ कहा करती थी—'हर रंग एक नई ही ख़ुशी देता है, मेरे लाल !' यदि उसको यह बात मालूम हो जाय, तो वह झट कह दे—'यह लाजवर्दी फिरन तुम्हे पसन्द नहीं ! वे दिन भूल गये, जब लाजवर्दी कोट पहन कर स्कूल जाया करते थे और इतनी भी समझ न थी कि यह लड़कों को सजता है या लड़कियों को ?'

उसकी आँखे कितनी लाज-भरी हैं। यह लाज न होती, तो वह कितनी ओछी लगती। इतनी लाज भी तो भली नहीं कि दिलका भेद दिल ही में रह जाय। मैं उसकी ओर क्यों देखता हूँ ? मेरे दिल की धड़कन तेज़ क्यों हो रही है ? वह कैसे बनी इस खिड़की की रानी ? किसने उसे भड़कीले चौखटे में जड़ा ? किससे पूछूँ ? कौन सुनाये उसकी कहानी ? उसे इस धुरी के गिर्द घूमने पर किसने आमादा किया ? कसूर किसी का भी हो, वह स्वयं बेकसूर है। मैं उसे दूरसे देखता हूँ। देखने में तो कुछ बुराई नहीं। मुझे उससे नफरत भी तो नहीं।

इस काली आँखों वाली के चेहरे पर कभी-कभी हँसी दौड़ जाती है, जैसे अँधेरी रात के काले-काले बादलों मे बिजली गोटे की अनेक धारियाँ टाँक दे। मेरा दिल अन्दर ही अन्दर सुकड़

रहा है। सोचता हूँ, वह रोती भी होगी। काजल-सा बरस जाता होगा। क्या उसे उस हरी-हरी घास की याद नहीं आती, जो मख़मल की तरह उसके पैरों तले बिछी रहती होगी? घास की सोंधी-सोंधी ख़ुशबू, जिसने फूलों की महक के अलावा हज़ार बार उसे रिझाया होगा, वह भूली तो न होगी। वह ज़रूर किसी ग़रीब किसान के घर मे पैदा हुई है। इस मटियाले घर के साथ उसका नाता बहुत पुराना मालूम नहीं होता।

पर वह कुछ गाती क्यों नहीं? गाना जानती तो होगी। ज़रूरी नहीं कि बाँसुरी किसी के मुँह लगाने पर ही बजे। हवा भी तो सुर जगा दिया करती है। सुर नींद के माते नहीं होते। इनकी नींद बड़ी हल्की होती है। कभी-न-कभी ज़रूर उसके कंठ में सुर जाग पड़े होंगे, डर कर ही सही। इसलिये अब आँखें ही नहीं, मेरे कान भी उसके कोठे की परिक्रमा करते रहते हैं। अब तो मैं देखता हूँ कि आँखों से कहीं ज्यादा बेचैनी कानों को है। काश! मैं कभी दूर से उसका फड़फड़ाता गीत सुन पाऊँ। मैं सोचता हूँ। कान बराबर उधर खिंचे रहते हैं। आँखों में एक रंगीन ग़ुबार-सा छाया रहता है। जब लौंग फ़ेलोने लिखा था—'रात संगीत से शराबोर हो जायगी और सब फ़िक्र-फ़ाके, जो दिन भर हमें सताते रहते हैं, बद्दुओं की तरह डेरा-डण्डा उठाकर चलते बनेंगे,' तो शायद उसे भी मेरी ही तरह तरसना पड़ा होगा। गाँव के अपने आप पैदा होते रहने वाले गीत कभी तो इस लड़की की ज़बान पर आते ही होंगे।

किसे बनाऊँ अपने भेद का साझेदार? डरता हूँ कि समाज का हाथ बढ़कर उन सारी प्यालियों को अपने कंठ में न उँडेल ले, जिनमे मैंने बड़े चाव से कई रंग घोले हैं। पर यह डर तो लगा ही रहेगा। लाख सोचता हूँ, डर बेकार है—मज़हब का डर, ख़ुदा का डर, समाज का डर; पर ये तमाम डर पीछा ही

नहीं छोड़ते। वह सदाचार क्या, जो केवल डर पर टिका हुआ हो? वह सदाचार क्या, जो नफरत सिखाय, बैर सिखाय? नहीं, अब मैं नहीं डरता।

कल रात मैं अपने सारे साहस को जमा करके उसके यहाँ चला गया। वह झट मेरे स्वागत के लिए उठी। बड़ी इज्ज़त से उसने मुझे काले काश्मीरी कम्बल पर बैठा दिया।

"पाम्पुर की देवी!"—अपने मनमे मैंने पुकारा, और मेरे होंठों पर ये शब्द आये—"तुम्हारा नाम क्या है?"

शहद जैसे मीठे स्वर में उसने उत्तर दिया—"कुंग पोश।"

मैंने देखा कि एक केसरिया लाज उसके गालों पर फूटने लगी है। "कुंग पोश!" मैंने पूछा—"कुंग पोश का क्या अर्थ है?"

"कुंग पोश यानी केसर का फूल।"

उसे ऐसी जगह देख कर मुझे झट ख़याल आया—और सब फूल वसन्त में खिलते हैं; पर केसर पतझड़ में खिलती है! मैंने महसूस किया कि मेरे कानों में वही गीत गूँज रहा है, जो मैंने पाम्पुर के खेत में सुना था:—

> यार गोमय पाम्पोर वते
> कुंग पोशव रुटनालमते
> सछम तते बछुस यते
> बार सायबो बोजतम जार!

मैं सोचने लगा कि पीछे यही ख़याल मेरी पत्नी को न आ रहा हो—'मेरा प्रीतम पाम्पुर की तरफ चला गया। (और वहाँ) केसर के फूलों ने उसे गले लगा लिया। (आह!) वह वहाँ है और मैं यहाँ! ओ ख़ुदा! मेरी विनती सुन।'

कुंग पोश बहुत ख़ुश नज़र आती थी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लाल-लाल धारियाँ एक जाल-सा बुन रही थीं। रात का पहला आदमी उसके यहाँ आया था। उसने सोचा होगा कि मैं

उसे रुपया ही न दूँगा, बल्कि चनार का एक हरा पत्ता भी दूँगा, जिसका अर्थ यह होता है कि मैंने उसे अपना प्रेम भी दे दिया है। फिर कुंग पोश लकड़ी के बने चनार के पत्ते पर इलायची और बादाम की गिरियाँ रख कर ले आई। मैंने एक गिरी उठा ली—"शुक्रिया।"

"इलायची न लोगे?"

"इलायची तो मैं खा चुका हूँ।"

काँगड़ी में कोयले दहक रहे थे—उसके गालों की तरह। कुंग पोश ने वह काँगड़ी मेरी ओर सरका दी।

"शुक्रिया।"

सुन्दर थी उसकी मुखाकृति—केसर और उषा की लाली से कहीं सुन्दर। काले रेशमी बाल रातों के अनगिनत साये छुपाये हुए थे। कुंग पोश अल्हड़ तो न थी। हाँ, शरमीली जरूर थी। बिजली के प्रकाश में उसका लाजवर्दी फिरन उसे खूब सज रहा था।

बालाखाने की भाषा कुछ रस्मी वाक्यों तक सीमित रहती है। मैं इससे परिचित नहीं था। उलाहना, धन्यवाद और अनुग्रह के झट-झट बदलते रंग कुंग पोश की आँखों में कैसे देखता? मेरा दिल धड़क रहा था। कहक़हा कैसे लगाता—ऐसा कहकहा, जो किसी पहाड़ी चश्मे की आवाज़ पैदा करता!

कुंग पोश ने लकड़ी का बना हुआ चनार का पत्ता, जिस पर बादाम की गिरियाँ और इलायचियाँ ज्योंकी त्यों पड़ी थीं, मेरी ओर बढ़ाया। मैंने खामोशी से एक इलायची उठाकर मुँह में डाली। वह मेरी तरफ देखने लगी। सचमुच वह केसर का फूल थी।

मैं मुस्कराया। वह भी मुस्कराई। मैं शायद एक 'नागराय' था और वह एक 'हीमाल', और शायद काश्मीर की पुरानी प्रेम-

कथा एक बार फिर दोहराई जाने वाली थी। पर मैंने सभल कर कहा—"मैं तो गीत जमा किया करता हूँ।"

"गीत? कैसे गीत?"

"गाँव के गीत।"

"गीत—गीत—" इससे अधिक वह कुछ न कह सकी। मैंने उसकी ओर देखा और मुझे ऐसा लगा कि किसी दुलहिन की भड़कीली पोशाक मेरी आँखों के सामने मैली हो गई है। उसने अपनी थकी हुई बाँह उठाई और काँपती उँगली से सामने के मकान की ओर इशारा किया, जहाँ घूँघरू बज रहे थे और प्रकाश झिलमिला रहा था। "जाओ, उस तरफ चले जाओ। उधर गीत भी बिकते हैं और ..और .."

उसके लहजे में खेतों की गुनगुनाहट थी। मै उन खेतों की ओर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ, जहाँ मिट्टी केसर पैदा करती है।

और सब फूल वसन्त में खिलते हैं; पर केसर पतझड़ में खिलती है। क्या यह धरती कभी इतनी बाँझ हो जायगी कि केसर का उगाना बन्द हो जाय?

ये आदमी : ये बैल

ओर यह पुरानी टूटी-फूटी सड़क बराबर चलती रहती है। बरसों से इसने इस शहर को अपने आँचल मे ले रखा है। कई खोंचेवाले, ठेलेवाले, इंजनों की तरह शन्ट करते रहते हैं। यह थकी हारी जनता, गाड़ीवान, मजदूर, सब सड़क की तरह टूटे-फूटे, भूखे-नंगे गुजर रहे हैं, गुजरे जाते हैं, इधर से उधर, उधर से इधर। इन सब के दिल और दिमाग़ में भी शायद चिउँटियाँ रेंग रही हैं, हँसते भी हैं तो एक मरियल-सी हँसी, खोखली-सी। एक बेकाबू मशीन की तरह मेरा दिल धक-धक करने लगता है। मुझ पर एक यरक़ानी सी अवस्था छा जाती है। अपना दु ख मुझे सभी का दुःख महसूस होता है।

ये बेइनसाफियाँ ! दिन रात की बेइनसाफ़ियाँ ! बाज़ आया साहित्य से, साहित्यिक सेवा से। पारिश्रमिक के लिए सौ-सौ बहाने ढूँढ़े जाते हैं। कोई भी तो पूरी मजदूरी नहीं देता, और फिर समय पर नहीं देता। जाने कब तक ज़लील होना होगा। घर में पत्नी से उलझने लगता हूँ। और वह आगे बछिया सी छोकड़ी को डाँटना शुरू कर देती है।

आज यह सड़क बहुत उदास है। किसी के भी पैर आराम से उठते दिखाई नहीं देते। बोलना चाहें भी तो ये क्या बोल सकते हैं? धिक्कार है यों हार स्वीकार कर लेने पर, जिसके प्रभाव

से ये लोग चुपचाप चले जाते है। ये धुँधली-धुँधली-सी आँखे, ये थके-थके-से पैर, अजब उलझनों में गिरफ्तार हैं ये लोग। बार बार वे झिझकते हैं, काँपते हैं, लड़खड़ाते हैं। संसार भर का बोझ बस इन्हीं के कमज़ोर कन्धों पर आन पड़ा है। कोई इनकी चीथड़ा-चीथड़ा किस्मत में कुछ पेबन्द लगा भी दे तो आखिर किसान फर्क पड़ सकता है?

अरे तोहे डस जाय काला...चीं-चीं, रीं-रीं, क़तार की क़तार छकड़े चले जाते हैं। गाड़ीवानों के मुँह में तो ज़हर भरा है। एक सुन्दर नागौरी यों दिखाई देता है जैसे कोई स्त्री रिक्शा खींच रही हो। मैं इस गाड़ीवान से कहना चाहता हूँ 'बेटा, फिर गाली दी तो ज़बान गुद्दी से खींच लूँगा।' पर मेरा कुछ बस नहीं चलता। कोड़ा ऊपर उठता है, हवा में लहराता है और नागौरी पर बरस पड़ता है। दिल पर एक चोट-सी लगती है। गाड़ीवान अपना बेहूदा बेतुका गीत शुरू कर देता है। धुरी चीख़ती है। यह 'चर-चर' किधर का उचित ताल है? गीत में भी तो गाड़ीवान का जी पूरी तरह नहीं लगता। अहमक—और नहीं तो। वहशी के होंठों पर एक मुसकराहट-सी दौड़ जाती है। अपवित्र आदमी की मुसकराहट भला निर्मल कैसे हो सकती है?

बैल अब भी बैल हैं। अनगिनत सदियों का लम्बा सफर तै करने के बाद भी बैलों की हालत मे कोई फर्क नहीं पड़ा। हल के बैल, रहट के बैल, ख़रास और कोल्हू के बैल, छकड़े के बैल—क्या कभी बैल की गरदन से जुआ उतर भी सकता है? मैं आग बगूला हो जाता हूँ। अपने होंठ काटने लगता हूँ। बैलों के चेहरों पर वही पुरानी धीरता और बेचारगी देखकर मेरे जिस्म का सारा लहू सिर की तरफ दौड़ने लगता है। शायद मैं पागल हो जाऊँगा। सोचता हूँ कि बेचारे बैलों के लिए कोई शराबख़ाना

भी नहीं है, जहाँ वे थोड़ी-सी पी सकें, अपने ग़म भूल सकें।

छकड़े दूर निकल गये। कोई यहाँ खड़ा नहीं होना चाहता। मैं तोल-तोल कर कदम उठाता हूँ, जैसे पलकें आँखों से छू रही हों। ऊपर से मैं शान्त हूँ पर यह केवल मैं स्वयं ही जानता हूँ कि एक ज्वालामुखी पर्वत हूँ। जाने कब फट पड़ूँ।

हाँफते हुए बैल कुछ बोल नहीं सकते। आदमी की गालियाँ वे समझते नहीं। थके-माँदे, रोज़गार के हाथों सताये हुए बैलों को भी शायद अपना दुःख–सभी का दुःख दिखाई देता होगा।

× × ×

जब सूर्य निकलता है तो इस अर्द्ध-नग्न सड़क के मैले-कुचैले जिस्म पर सोने का पानी फिर जाता है। इसके पैबन्द आतशकी दाग़ मालूम होते हैं। पर पास से देखने से इसकी रगों में नया खून दौड़ता नज़र आता है, जैसे इसकी घनी ढेर सदियों की तकलीफें ख़तम हुआ चाहती हों।

नीले अँग्रेज़ी सूट पर नामधारियों की-सी पगड़ी बाँधे एक सरदार साहब आ रहे हैं। पीछे-पीछे एक कुली चला आता है। जाने क्या लोहा भरा है बिस्तर में। बेचारा दोहरा हुआ जाता है। यह खिड़की न हो तो सड़क का यह दृश्य यहाँ बैठे-बिठाये कैसे देख सकता हूँ ?

'हैलो, काला पानी ?'

'हैलो हैलो !'

'कब चले थे काले पानी से ?'

'पिछले महीने की पन्द्रहवीं को ? कलकत्ते में बहुत दिन लग गये।'

मेरे रोकते-रोकते इकबालसिंह जेब से चवन्नी निकाल कर कुली की खुरदरी हथेली पर रख देता है। अण्डमन द्वीप में

इकबालसिंह सरकारी क्लर्क है। स्कूल में तो वह निरा मरियल-सा बछड़ा मालूम होता था। पर अब उसका जिस्म भर गया है।

कुली कहता है—'ई तो खोटी चवन्नी भई'।

'खोटी ? बको मत।'

'ई मोर किछु काम को नाहीं, सरदार जी।'

'चवन्नी है चवन्नी। जाने किधर मर गये थे ताँगेवाले ? क्या नाम है तेरा ?'

'तरसू है मोर नाम। पर ई तो साफ खोटी दीखे है, सरदार।'

'तेरे बाप का नाम? क़ौम...साकिन...थाना ? सच-सच बताना।'

तरसू अब इन सवालों का क्या जवाब दे ? इक़बालसिंह चिल्ला कर कहता है, 'गो अवे यू डैम।'

'आदमी नहीं, हैवान है सिरे से,' यह कहते हुए इक़बालसिंह मेरी तरफ देखकर मुसकराता है और गुस्लखाने को चल देता है। शायद खोटी चवन्नी को चलाने की तरकीबें सोचता हुआ तरसू बाहर निकल जाता है। मेरा मन उसके साथ-साथ क़दम उठाता है...भगवान जाने कौन मतलब भयो ई अंग्रेज़ी का ? ई जिन्दगी मा कौन मजा आवे है ?...तरसू की ज़बान सूख जाती है। चेहरे का भय ख़तम हो जाता है। बिना विचारे ही अब यह गाली उसकी ज़बान पर आ जाया करेगी।

'चने चटपटे,' दो क़दम पर एक खोंचेवाला आवाज़ देता है।

तरसू कहता है, 'इधरयो दियो।'

'कित्ते के ?'

'पैसे के। सुबह से घूमत है जलपान किये बिना।'

खोंचेवाला पत्ते पर चने डालकर तरसू के हाथ पर रख देता

है और बड़े फखर से थाल में चमचा फेरता है। जैसे कहता हो कि अच्छी बिकरी हो रही है और अभी बहुत देर भी तो नहीं हुई घर से निकले।

'चटनी नाहीं ?'

'काये नहीं ?'

तरसू को चटनी भी मिल जाती है। बुसी हुई चीज़ होगीं। खोंचेवाला तरसू की आँखों में झाँकता है, जैसे कह रहा हो— खूब माई के लाल हो, बेटा। पैसे का पूरा-पूरा हक लेना आता है तुम्हें।

फटे-पुराने थैलों जैसे बादलों की तरफ़ देखता हुआ तरसू सोचता है, सैकड़ों सिक्के रोज़ जेबें बदला करते हैं। वह खोंचे-वाले को चवन्नी देकर खड़ा हो जाता है।

'ई तो खोटी भई।'

'खोटी ?'

'दीखे नाहीं ?'

'गो डैम ..इत्ता अन्याय !'

चवन्नी वापस लेकर तरसू अधेला देता है।

'इत्ता अब। बाकी दूसरे समय। भगवान की कसम।'

खोंचेवाला अधेला लेकर सोचता है कि बच्चू ने भगवान का आसरा न लिया होता तो पूरा पैसा लेकर छोड़ता।

× × ×

सड़क पर दूर से एक कुत्ता दौड़ा आता है। पास आकर वह किसी का जूठा पत्ता चाटने लगा है। यह कैसा जलपान है ? जाने किस फूहड़ कुतिया ने जना होगा इस दुमकटे कुत्ते को ? एक कुतिया तो पाँच-पाँच सात-सात पिल्लों को, बल्कि दस बारह तक को भी, एक साथ जन्म दे बैठती है और वह भी पाँच-छः महीनों के अरसे के बाद ही—एक स्त्री की तरह नहीं कि एक ही

बच्चे की माँ बनने के लिए नौ मास दरकार हैं। आगे पीछे, किसी न किसी तरह इस कुत्ते का जीवन सरकता रहता है। इसे अपनी माँ की फटी-फटी बेसुरी भौं-भौं की याद कभी न आती होगी। इसे तो सदा भूख सताया करती है।

मैं इकबालसिंह को बतलाता हूँ कि मालिक-मकान की पत्नी सदा किरायेदारों से झगड़ती रहती है; तीन किरायेदार बसा रखे है अच्छे-अच्छे कमरों में और .खुद मियाँ-बीवी एक तंग से हिस्से में गुज़र किये जाते हैं।

'तंग कमरों में रहने वालों का तंग दिल होना तो कुछ अजीब नहीं। भई, वहाँ अण्डमन में तो ज़िन्दगी बहुत मज़े से गुज़रती है। बल्कि वहाँ तो कैदी तक आज़ाद हैं, खूब कमाते हैं, खूब खाते हैं और खुले मकानों में रहते हैं। पर तुम्हारे मालिक-मकान की बीवी किस बात पर झगड़ती है ?'

'कहती है पम्प का हैंडल धीरे घुमाओ, बाबू ढिबरियाँ घिसा दोगे, नष्ट कर दोगे इस तरह तो...फूहड़ स्त्री है। पति की गालियों से अपने दिमाग़ की ढिबरियों ही को बचाकर रखा करे ज़रा।'

'भई, इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आदमी अपना मकान बनवा ले और अगर किराये के मकान में रहने पर मजबूर हो तो किसी पैरों मे चप्पल चुटिया-सी नङ्गी औरत के मकान में कभी न रहे।'

'कालेपानी मे तो ऐसी औरते न होती होंगी।'

'हाँ हाँ हाँ, कालेपानी मे ऐसी औरतें नहीं होतीं।'

सड़क पर रामू धोबी का छोकरा रोये जाता है। माँ दो तमाचे जड़ देती है, 'दूध दूध, सारा दिन एक ही रट लगाये जाता है। बापू तो मर गये! अब माँ कब तलक बनी रह सकता है दुधैल गाय?...'

'सावनी ने चेतू को जन्म दिया था, इकबाल, कि रामू मर

गया। अब वह बिधवा है।'

'जिन्दगी की दुःखमय सड़क पर वह कब तक अकेली चल सकेगी?'

'बहुत दिन तो नहीं चल सकती।'

'किसी अमीर दुलहिन के कपड़े धोते हुए एक दिन हाथ बढ़ा कर वह रामू की याद का पाकीज़ा चेहरा नोच डालेगी! कोई छैल छबीला धोबी उसकी आँखों में खुभ जायगा।'

'कल का खुभा आज खुभ जाय। रामू कौन-सा शरीफ था?'

'सच? बहुत बदमाश था रामू?'

'और नहीं तो? और इस पर भी सावनी को हमेशा अपनी दबैल समझता रहा। अब मौत के बाद भी वह उसकी धौंस सहती रहे? यह जिन्दगी तो सदा नहीं मिलती—यह जवानी!'

'प्रसव-पीड़ा का ख्याल शायद उसे संयम के लिए आमादा कर दे।'

'पर नशे मे सब डर काफूर हो जाते है। पहली बार रजोधर्म रुकने पर ही उसे अपने जिस्म के अन्दर किसी नये चेतू का अनुभव होने लगेगा...'

चेतू बराबर रोये जाता है। मै पुकार कर कहता हूँ, 'अरी ले-दे, सावनी, चेतू को दो घूँट दूध।'

सावनी करीब आकर कहती है, 'बापू कौन कमाई छोड़ गयो। जीवत में मोर लहू पीवत रहे। अब उसका लल्लू मोर प्रान खाये जात है।'

'अरी दो कपड़े और धो लीजियो, सावनी, चेतू तो बच्चा है।'

सावनी के दुःख-दर्द उसकी इस्तिरी के कोयलों की तरह हैं, नज़र से ओझल रहने पर भी सुलगते रहते हैं। जेब से एक मसला हुआ पैसा निकाल कर मैं चेतू के हाथ पर रख देता हूँ।

वह खुश होकर भाग जाता है ; सावनी घबराती है, चुपचाप परे को घूम जाती है। मैं उसकी आँखों में एक चमक-सी देख लेता हूँ, जैसे किसी ने टूटी फूटी सड़क में कहीं एक पैबन्द लगा दिया हो।

'बड़ा हो कर चेतू एक बैल ही तो निकलेगा, इकबाल !'

'बैल या एक दुमकटा, आवारा कुत्ता ?'

'कितनी बड़ी व्यंग्योक्ति है !'

'हाँ, व्यंग्योक्ति।'

'वह दिन दूर है, इकबाल, जब हमारी मातायें अपनी कोख मे नये इन्सान की सुखी और सब बराबर नसल की दाग़बेल डालेंगी।'

'मेरी समझ से तो बाहर है तुम्हारी यह फिलास्फी।'

कचौरी का आख़री टुकड़ा मैं कुत्ते की तरफ फेंक देता हूँ, 'बस, बेटा, अब कुछ नहीं मिलेगा।'

कुत्ता चला जाता है। इकबालसिंह कहता है, 'खैर अच्छा है, समझदार है। इसने तो मुझे काले पानी के कुत्तों की याद दिला दी।'

'बहुत अच्छे होते हैं काले पानी के कुत्ते ?'

'बहुत अच्छे होते हैं, आँख का इशारा तक समझ लेते हैं।'

परे सावनी की खिड़की से उसकी आँखें नज़र आ जाती हैं—सुपने देखती दो दीपशिखाएँ, जिन्हें उकसाते हुए इकबालसिंह इस दरीचे से उठने का नाम नहीं लेता...और यह डरी-डरी-सी सड़क, सहमी-सहमी-सी, ऊबी-ऊबी-सी, अपनी आत्मा में झाँकने लगती है ; घनी ढेर सदियों की गर्द झाड़ कर, अनगिनत बन्धन झटक कर सुख की साँस लेना चाहती है।

× × ×

परसों शाम ही को इकबालसिंह आगरे को चल दिया था। ताजमहल देख कर आज उसको लौट आना है। जितना रुपया वह जाने-आने पर खर्च कर आयेगा उतना सावनी पूरे महीने की धुलाई से भी नहीं कमा सकती।

...दूर क्षितिज पर एक लाल पगड़ी वाला ज़ाहिर होता है। फिर वह क़रीव आ जाता है। ट्विल की खाकी कमीज़। पगड़ी तह पर तह, कपड़े की नहीं, सिमिन्ट की बनी हुई, या किसी संगतराश की बढ़िया रचना। ट्विल की खाकी कमीज़ की जेबें ताश के बादशाह की मूछों की तरह तराशी हुई हैं; हाथ गरम करने के लिए निकर की जेब में डालता है और जिस्म के साथ भींच-भींचकर उनकी ठंड दूर करता है। एक हाथ में डण्डा है। खफा होकर कहता है—

'अरे गोकुल, आज तू फिर खड़ा है सड़क के दाईं तरफ!'

इतना भी गया-गुज़रा क्या होगा गोकुल। एक चवन्नी तो दे ही मरेगा। अगले रोज़ उसे यों ही छोड़ दिया था। रोज़ तो नरमी नहीं बरती जा सकती। माँ के खसम ने नई कमीज़ पहन रखी है और चौधरी बना बैठा है।

'जी सरकार!' गोकुल जवाब देता है।

'सरकार का साला! क्या नाम है तेरे बाप का?'

'मोरे बाप का नाम...सन्तरीजी, आप मोर माई बाप...'

और गोकुल कहाँ से दे चवन्नी? चवन्नी हो भी उसके पास। मुश्किल से कमीज़ के दाम चुका पाया। घर वाली के लिए सुर्ख कपड़ा खरीदा। नया लॅहगा डालेगी रुकमन की तरह। रुकमन की रीस करे है। रुकमन तो दुलहिन है...अपनी खुरदरी गरदन पर गोकुल नाखून फेरता है, सोच में डूब जाता है।

सिपाही का एक हाथ लम्बा डण्डा गोकुल की कमीज़ पर पड़ता है—

'हट यहाँ से, हरामी।'

गोकुल कितना गया गुज़रा हो, पर बेइज्ज़ती नहीं सह सकता। वह बिफरता है और सिपाही को अपनी चवन्नी भूल जाती है। सिपाही के डण्डे की सारी विद्युत-शक्ति देखते ही देखते गोकुल के कोड़े मे चली जाती है और वह उसे अपने बैलों पर बरसाता है। बैलों का चालान असम्भव है, नहीं तो शायद गोकुल इनका चालान कर देता। कैसे ऐंठे जाते हैं जम के मामू, जैसे सत्तू खाकर झट से पानी पी लिया हो...

'...धत् तोरी, मरें तोरे रखवारे।'

'सुना भई गाड़ीवान अपना सुख दु:ख।,

'हमार सुख दु:ख का पूछत हो, बाबूजी! रोज़ कुँआ खोदत हैं, रोज़ पानी पीयत हैं।'

'सच है। ग़रीबी बड़ी लानत है। और इन बैलों के पैर तो मन-मन भर के हो रहे हैं।'

'इनका भगवान ही सुख दीहे, हम का देबे?'

'कौन भगवान?'

'सब का भगवान उहै बैलन का भगवान।'

'यह तुम्हारा भगवान भी कोई गाड़ीवान होगा।'

...धत् तोरी महतारी मर जाय...अँधियारे माँ। बूड़ जाय तोर आतमा बीच मँझधार मा...कोऊ न होए सहाई तोरे बिपत माँ...गाली पर गाली नित-नित की धत्कार। ऊपर से कोड़े पर कोड़ा। ये सदा के बेगारी। कोई इनकी विचार-शक्ति जगा दे, कल्पना उकसा दे।

× × ×

बहुत दूर से यह सड़क बल खाती आती है, दूर देहात से। चौकड़ी भूले हुए बूढ़े हिरन की तरह कुछ किसान आ रहे हैं। किधर को जा रहे हैं ये लोग? शायद कचहरी को। मेरी आँखों

में गाँव का एक भयानक दृश्य फिर जाता है। एक ज़मींदार के लठ्ठबाज़ पयादे एक गरीब किसान को घसीटते हुए लिये जाते हैं। पीछे-पीछे महरिया चली आती है—एक भूखी, मरियल, विपत्ति-ग्रस्त गाय! बकाया लगान, बेदखली—ये दो तीर है जो ज़मींदार चलायेगा, चलाकर रहेगा...कहानियों वाले किसी खूँखार दैत्य की तरह ज़मींदार की आँखें लाल हो गई हैं। किसान काँपता है, रोता है और उसकी महरिया अपने पति का अपमान नहीं सह सकती...

'दुःख ही दुःख देखा जिन्दगी माँ। सुख कबहूँ नाही देखा।'

सचमुच दुःख ही देखा होगा—किसानों की बातें तो भूखी, विपत्ति-ग्रस्त धरती की बाते हैं।

'ज़मींदार चाहें तो ठाड़ी फसल कटवाय ले—'

'चाहे तो अपन लठैत भेज कै खलियान उठायले—'

'पर ज़मींदार का किछू दोस नाहीं, हमार भाग ही नीके नाहीं हैं।'

अपने ऊपर चलनेवालोंकी ही तरह यह सड़क प्रतिवादकी भाषा खो बैठी है। इस दबी हुई, पिसी हुई अर्द्ध-नग्न सड़क की छाती में कोई पोल-सा तो न पैदा हो जाता होगा जो मैं अपने अन्दर पैदा होता अनुभव करता हूँ।

× × ×

छकड़े आ रहे है, जा रहे हैं। दूर सड़क के चेहरे पर एक धूल-सी उभरती दिखाई देती है। ऊपर बादलों मे एक आकृति पुलिस के सिपाही जैसी है। एक और बादल ने बैल का रूप धार रखा है। और वह पुलिस का सिपाही अब कोई किसान नज़र आता है। दूर से बहुत से बादल भागे आते हैं। पर यह बैल तो केवल रींग ही सकता है। और मैले से आकाश के नीचे यह

सड़क जाने किस ग़म में सहमी हुई-सी, किस याद में खोई हुई सी, लेटी हुई है।

इक़बालसिंह बहुत खुश नज़र आता है। ताजमहल की प्रशंसा करता वह थकता नहीं। सोचता होगा कि सावनी तो विधवा है और यदि रामू ज़िन्दा भी होता तो अपनी धोबन के लिए किस जमुना के किनारे शाहजहाँ का-सा संगमरमर का स्मारक बनवा सकता था?

'क्या सोच रहे हो, मियाँ लेखक?'

'यही कि क्या काले पानी में भी कोई संगमरमर का स्मारक मौजूद है—कालेपानी में जो अपने आप में एक लम्बा चौड़ा जेलखाना है, जहाँ प्रेम नहीं किया जाता, सजा भुगती जाती है।'

'अरे भई तुम्हे नहीं मालूम...तुम कैसे जान सकते हो?'

'तो क्या काले पानी में बैलों पर कोड़े नहीं बरसते?'

'हाँ हाँ हाँ, वहाँ बैलों पर कोड़े नहीं बरसते।'

'तुम्हारा भाव है वहाँ कोड़े होते ही नहीं?'

'हाँ हाँ हाँ, मेरा भाव है वहाँ कोड़े होते ही नहीं।'

'बैल बहुत समझदार हैं वहाँ?'

'हाँ हाँ हाँ। पर अब छोड़ो इस बात को। ज़रा उधर देखो ना। कोई जलूस आ रहा है शायद।'

मज़दूरों का जलूस समीप आ जाता है। मेरा मन बलवान हो उठता है। नये युग का स्वागत करने के लिए मैं सब से आगे निकल जाना चाहता हूँ। मज़दूरों का कूचगीत वायुमण्डल में गूँज उठता है—

सारा संसार हमारा है
सारा संसार हमारा है
मज़लूमों ने मुलकों मुलकों
अब झण्डा लाल उठाया है

जो भूखा था जो नंगा था
अब गुस्सा उसको आया है
रोके तो कोई हमको ज़रा
सारा संसार हमारा है...

इकबालसिंह कहता है, 'यह सड़क शायद कभी सो नहीं सकती, न दिन के प्रकाश में, न रात के अँधियारे मे। यह कैसी सड़क है?'

'उस जबड़े के समान इकबाल जिसके आधे दाँत बुढ़ापे के कारण सड़ गये हों और बदल गये हों और बाकी आधे काले पड़ गये हों, जैसा कि गोर्की ने अपने बाबा के घर के सामने से गुज़रने वाली सड़क की बाबत लिखा था। और दैत्य सरीखी लारियाँ भी अब इस सड़क को लताड़ती रहती हैं।'

'और भई तुम भी अजब फिलास्फर हो। सड़क तो हमेशा से एक साझे की चीज़ चली आती है, इस पर से आदमी गुज़रें चाहे बैल, छकड़े गुज़रें चाहे नये युग की लारियाँ।'

नये युग की धँड़कनों का एक हलका-सा अनुभव इकबालसिंह को भी हो चला है। पर छुट्टी पूरी होते ही वह कालेपानी को भाग जायगा, जहाँ उसे अपने अफसर के कोड़े सहने होंगे, यहाँ तक कि उसकी रगों में बहने वाला लहू कालेपानी के तट पर टकराने वाले पानियों ही की तरह काला पड़ना शुरू हो जायगा। उस समय वह शायद मज़दूरों की प्रतिवादी आवाज़ की महत्ता पहचान सके—जो भूखा था जो नङ्गा था, अब गुस्सा उसको आया है...

'कालेपानी में तो भूखे और नंगे न होते होंगे, इकबाल?'

'हाँ हाँ, हाँ। कालेपानी में ऐसे लोग नहीं हो सकते।'

'यानी तुम्हारा भाव है वहाँ किसी को गुस्सा नहीं आता न यों जलूस निकलता है।'

'हाँ हाँ हाँ। वहाँ किसी को गुस्सा नहीं आ सकता और न यों कोई जलूस ही निकाल सकता है।'

'यानी तुम्हारा भाव है वहाँ पूरी आजादी है, किसी प्रतिवाद की गुंजायश ही नहीं ?'

'हाँ हाँ हाँ। पर छोड़ो इस बात को। मैं कहता हूँ कि छकड़ों का यह पुराना डिजायन मुझे तो सिरे से नापसन्द है।'

'यानी यहाँ भी नये तर्ज के छकड़े होने चाहिएं जैसे काले-पानी में होते होंगे ?

'अरे भई अब जाने भी दो।'

घरों से परे, साँवले खेतों को चीर कर काले पानियों को पीछे छोड़ते हुए, मेरी निगाहें अण्डमन द्वीप की तलाश मे भटकने लगी हैं, जहाँ इक़बालसिंह की चहेती दुनिया बसती है, जहाँ लोग लड़खड़ाते न होंगे, नियमाधीन फौजियों की तरह तन कर चलते होंगे मजे से।

× × ×

जाहिल, गधा, बेसींग का बैल...सड़क पर छकड़ा देखकर किसी दैत्य सरीखी लारी का ड्राइवर बङ्कार उठता है। गाड़ीवान की आँखों में प्रतिवाद भड़कता है। लारी बहुत आगे निकल चुकी होती है। फिर शायद गाड़ीवान यह सोचता है कि लारी डाइवर भी एक मजदूर है। मूर्ख ! मजदूर होकर मजदूर पर झपटता है।

फोड़ियाँ निकलें तोर देह पर...और कोड़ा ऊपर उठता है, हवा में लहराता है, बरस पड़ता है...अरे तोहे ठण्डी मार मारे भगवान...अरे भगवान तोहे आनन्द राखे मोर पुतवा। रात बढ़त चली आवत है। घियो मैदे का बचन देत हूँ, शिव के नन्दी !...ये गालियाँ, यह प्यार और यह पुरानी, टूटी-फूटी सड़क, जो एक भेड़िये की तरह रोजगार के बन्धन देखती है, सब

की बातें सुनती है, या शायद यह सड़क सिरे से अन्धी है, बहरी है।

टन टन टन टन ..गिरजे के घड़ियाल ने नया घण्टा शुरू होने की आवाज़ सुना दी। गिरजे के करीब एक फकीर ने अपने हाथ फैला रखे हैं। कभी-कभार तरस खाकर गिरजे में जाने वाले लोगों में से कोई इस ग़लाज़त के कीड़े की तरफ एक दो पैसे फेंक देता है।

'घनी ढेर सदियों की भूख भींचे हुए जाने कब से खड़ा है यहाँ यह भयानक आदमी, इकबाल।'

'बातें फिर करना। पैसा हो तो निकालो।'

'पर एक पैसे से क्या होगा, इकबाल? सदियों की भूख है। यों न मिटेगी।'

इक़बालसिंह मेरी तरफ घूर कर देखता है और मैं आकाश की तरफ निगाह उठाकर कहता हूँ, 'ऐसे पीले से चाँद को देखकर ही किसी ने कहा था, इकबाल, कि यह तो एक बड़ी-सी रोटी है—सीले ईंधन के धुएं की करतूत से अपने हाल पर शर्मिन्दा। और बादलों के आड़े-तिरछे टुकड़े सदियों के भूखे आदमी की तरह जबड़े खोले लपके चले आते हैं इस रोटी को निगल जाने को।'

इकबालसिंह कुछ जवाब नहीं देता। आगे बढ़कर मेरा आलिंगन कर लेता है। मालूम होता है कि वह बरसों से इसी सड़क पर रहता आया है, इसी पुरानी टूटी-फूटी सडक पर जहाँ ये लोग बराबर चलते रहते हैं, जाने कब तक चलते रहेंगे—ये आदमी, ये बैल।

राँगा माटी

शिवपुर जाने वाले साथियों की ओर वैरागी बाबा मुड़-मुड़ कर देखता रहा। उसने सोचा, आगे चल कर विष्णुपुर वाले भी बिछुड़ जाँयगे और फिर कहीं राँगामाटी वाले इस काफ़ले को अन्तिम प्रणाम करे, अपनी जन्मभूमि को कोई कैसे भूल सकता है? और जब बिछुड़ने वालों के चेहरे पूनम की चाँदनी में खो गये तो वह तेज़-तेज़ कदम बढ़ा कर वैरागिन माता के पास जा पहुँचा। हाँ, वे वैरागी ही तो थे, क्योंकि बेटे और बहू की मृत्यु के पश्चात् उनके पास ले-देकर एक नवासा ही तो रह गया था!

कुछ काफले वाले तो हिम्मत खो बैठे थे और चाहते थे कि काफले का साथ छोड़ दें। पर कुछ ऐसे सख्त जान थे कि चलने की शक्ति न रखते हुए भी, दूसरों को अपने साथ घसीटने का यत्न किये जा रहे थे। सब हैरान थे कि वे आगे कैसे बढ़ रहे हैं जब कि हर पग आगे उठने की बजाय पीछे हटता महसूस हो रहा था।

बूढ़े सोच रहे थे कि कलकत्ते के रास्ते में तो काफला खूब भर गया था, क्योंकि हर दोराहे पर नये लोग आ शामिल होते और वहाँ से चलते वक्त बहुत कम लोग काफले में शामिल हुए। हमने चिल्ला चिल्लाकर हर साथी से कहा कि अब गाँव चलना चाहिए। जन्मभूमि बुला रही है। और नौजवान सोच रहे थे

कि कलकत्ता की सड़कों पर तो मौत पहले ही से हमारा इन्तजार कर रही थी। बहुतों की तो लाशे भी दिखाई न दीं। हमारे अच्छे भाग्य हैं कि हम बच कर आ गये। अब इन बची खुची लड़कियों ही मे से हमारे लिये दुलहने चुनी जांयगी। उनकी निगाहे बार-बार यह कहना चाहतीं कि सौंदर्य तो सब कलकत्ते मे छूट गया। और लड़कियाँ भी दिलो मे सौ-सौ ब्याह रचाती चली जा रही थीं। वे समझती थीं कि अब भला कौन दहेज माँगेगा।

वे बस आहिस्ता-आहिस्ता अपनी मंजिलें तै कर रहे थे। हर कदम के साथ हर व्यक्ति के चेहरे पर एक उज्ज्वल भविष्य झलक उठता। अब गाँव में धान ही धान हो जायगा, दूध ही दूध, और अपने अन्दर हजारों उपहार लिये अपना गाँव हमारा स्वागत करेगा।

किसी ने थकी हुई आवाज में कहा—'अब राँगा माटी कितनी दूर रह गया, दादा ?'

दादा ने चमक कर छोटे भाई की ओर देखा और बोला—'यह क्यों नहीं पूछता, गणेश, कि कलकत्ता कितना पीछे रह गया ? ही-ही-ही—अरे, कलकत्ता भी हमने देख लिया। वाह रे कलकत्ते !'

गणेश ने फैसला कर लिया था कि अब वह कभी कलकत्ता नहीं जायगा। और उस समय दादा की बजाय किसी और ने कलकत्ता का जिक्र छेड़ दिया होता तो वह उसे ऐसी डाँट पिलाता कि याद ही रखता।

दादा और गणेश ने अपने नये साथी की ओर घूरकर देखा और फिर हँसकर कहा–'ठाकुर मामा !—तुम पीछे कहाँ रह गये थे ?'

ठाकुर मामा न जाने क्या सोचकर हँस दिया और फिर

गुनगुनाने लगा—

वन्दे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् शस्यश्यामलाम् मलयजशीतलाम्
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदल शोभिनाम्
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्

दादा और गणेश आगे बढ़ गये थे। ठाकुर मामा ने जरा रुककर सारे काफिले पर निगाह दौड़ायी, जैसे वह 'आनन्द मठ' के भवानन्द की तलाश करना चाहता हो। उसने कई बार 'आनन्द मठ' पढ़ा था और वह हमेशा किसी भवानन्द की तलाश में रहता था। वह स्वयं भवानन्द के मुँह से सुनना चाहता था कि 'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् मां और जन्म-भूमि स्वर्ग से भी अनमोल है। और वह जो भवानन्द ने महेन्द्र से कहा था—हम किसी और मां को नहीं मानते। हम कहते हैं, जन्मभूमि ही मां है। हमारी न मां है, न बाप, न घर, न द्वार, कोई है तो यही अच्छे बल वाली, अच्छे फलों वाली, धान से हरी-भरी धरती जिसे पछुवाँ ठण्डा और सरसब्ज रखती है। इसकी यह रुपहली चाँदनी से भरपूर रातें। हे मां, यह तेरे फूलों और कुंजों की शोभा। हे हमारी हँसमुख, मीठे बोल बोलने वाली सुख देने वाली, वरदान देने वाली मां!...ठाकुर मामा को आश्चर्य कि इतने दिन मां का यह रूप उसके मन से कैसे ओझल रहा। कलकत्ता में तो सब परदेशी बसते हैं। उन्होंने ऊँचे-ऊँचे मकान बना रखे हैं। कलकत्ता भी कैसा शहर है। ऊँह, कलकत्ता 'मां' को नहीं पहचानता।

उधर से दो लड़कियाँ ठाकुर मामा के समीप चली आयीं वे आपस में उलझ रही थीं।

अब कभी काल नहीं पड़ेगा, आरसी !'

'ऊँह्—बहुत सयानी बन रही हो, पद्मा ! अरे, अभी तो पहला काल ही खत्म नहीं हुआ।'

तेज़-तेज़ कदम बढ़ाकर आरसी और पद्मा झट दादा और गणेश के समीप जा पहुँची। गणेश ने आरसी को देखा। वह उससे कुछ पूछना चाहता था। पर असल सवाल उसके मन में कहीं खो गया था। उसने यों ही पूछ लिया—'थक तो नहीं गई, आरसी ?'

उधर से दादा ने पद्मा से कहा—'अब तो कभी कलकत्ता नहीं जाओगी न, पद्मा ?'

आरसी और पद्मा ने मिलकर कहकहा लगाया जिसमें दादा और गणेश के सवाल हमेशा के लिए सो गये। गणेश सोच रहा था कि आरसी कमसिन है और गोरी भी। यदि मुझे मिल जाय तो बहुत अच्छा हो और दादा तो पद्मा से भी निभा सकते हैं। वह ऐसी साँवली तो नहीं जैसी इस समय चाँदनी में नज़र आ रही है।

आरसी और पद्मा आगे बढ़ गयीं। वह चाहती थीं कि सबसे पहले राँगा माटी जा पहुँचे। आरसी कह रही थी, भगवान ही ने मदद की कि मैं उस नरक से बच निकली। हाय मैं दस रुपये में बेच दी गई थी।

'पद्मा बोली, 'बिकने की बजाय यदि तू अपना गला घोंटकर मर जाती तो अच्छा होता।'

दादा और गणेश ने भी अपनी रफ्तार तेज़ कर दी थी और वे आरसी और पद्मा की बातें सुनने में कामयाब हो गये थे। जब गणेश ने यह सुना कि आरसी किसी वेसवा के यहाँ से भागकर आ रही है तो करीब था कि उसका वह किला गिर पड़े जो उसने आरसी की घुँघराली लटों को देखकर तामीर किया था; परन्तु

यह सोचकर कि नरक से किसी तरह भी भाग आना बडी बहा-दुरी का काम है, उसने अपने मन को समझा लिया।

उधर वैरागी बाबा और वैरागिन माता के आगे-आगे उनका जवान नवासा तेज़-तेज़ कदम बढ़ा रहा था। वैरागी बाबा बोला—'रॉगा माटी पहुँच कर मैं मलमलकर नहाऊँगा।'

वैरागिन माता कहने लगी—'क्या हम बेटे और बहू को खोने के लिए ही रॉगा माटी से कलकत्ता गये थे?'

'ओहो—अच्छा', वैरागी बाबा ने बाहे फैलाकर कहा—'अब गोपाल सब काम सँभाल लेगा। उसकी बहू आयेगी।'

पर गोपाल को ब्याह से शायद कोई सरोकार न था। वह चाहता था कि किसी कहानी के शाहज़ादे की तरह उड़नखटोले में बैठकर झट रांगा माटी पहुँच जांय।

पीछे से एक स्त्री अपनी लड़की को लिये हुए आगे बढ़ जाना चाहती थी। वैरागिन माता ने उन्हें पहचानते हुए कहा—'तुम तो हमसे भी पहले रॉगा माटी पहुँच जाना चाहती हो। अरी मंगलचण्डी, गौरी को दूर मत ब्याहना।'

मंगलचण्डी हँसकर बोली—'रॉगा माटी पहुँच कर सब काम तुम्हारी ही राय से किया जायगा, वैरागिन माता, कलकत्ता की और बात थी।'

वैरागिन माता न जाने क्या सोचकर झट कह उठी—'चाहो तो घर-जँवाई रख लेना। मंगलचण्डी!'

सामने से गोपाल ने पीछे मुड़कर गौरी की तरफ देखा। वह कहना चाहता था कि इस एकहरे बदन की मरियल-सी छोकरी के लिए मैं तो कभी घर-जँवाई होना पसन्द न करूँगा।

गौरी तेज-तेज़ कदम उठाकर पद्मा और आरसी के करीब चली गयी और गुनगुनाने लगी —

मानसी नदीर पारे पारे
ओ दीदी
सोनार बन्धु गान करे जाय !

—'मानसी नदी के उस पार किनारे-किनारे सुनहला बन्धु गाते-गाते चला जा रहा है।'

पद्मा ने उसे टहोका दिया—'मानसी नदी का गीत मत गाओ, गौरी !'

गौरी बिगड़ कर बोली—'क्यों, तुझे काटता है मेरा गीत ?'

पद्मा ने कहकहा लगा कर चोट की—'अरे वाह ! बड़ी सतवन्ती बनी फिरती है। नरक से निकल कर झट मानसी नदी का गीत याद आ गया।'

आरसी ने बीच-बचाव करना चाहा तो पद्मा उस पर भी डायन की तरह आँखे निकाल कर झपट पड़ी—'तुम भी गौरी की बहन हो, आरसी। मुझे तो तुम्हारे ख्याल ही से शरम आती है। तुम्हारे जैसी लड़कियों के लिए तो मानसी नदी हमेशा के लिए सूख जानी चाहिए !'

गौरी और आरसी झेपकर और भी करीब आ गयीं और पद्मा परे हट गयी।

गौरी बोली—'राँगा माटी पहुँच कर मैं हर रोज मानसी नदी का गीत गाया करूँगी।'

आरसी ने उसके गले मे बाहे डालते हुए कहा—'घबराओ नहीं, दीदी ! हमे सुनहला बन्धु जरूर पहचान लेगा।'

ठाकुर मामा और वैरागी बाबा बाते करते-करते सबसे आगे निकल जाना चाहते थे। एक ही पलाँग मे वह आरसी और गौरी के पास से निकल गये।

वैरागी बाबा कह रहा था—'कुआँ की माटी कुआँ ही मे खपती है।'

'हाँ बाबा,' ठाकुर मामा ने पूनम के चाँद की ओर बाँह उठा कर कहा--'कलकत्ता में तो चाँद कभी इतना सुन्दर नज़र नहीं आता था। राँगा माटी मे तो चाँद बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। कलकत्ता में मरने से यही अच्छा है कि हम राँगा-माटी के रास्ते ही मे मर जायँ।'

'सच है, ठाकुर!'

'मैने एक ग्रन्थ मे पढ़ा था बाबा कि राँगा माटी तो एक तीर्थ है, जहाँ चण्डीदास और कवि विद्यापति गले मिले थे। ऐसी राँगा माटी मे हमारा जन्म हुआ। अब हम राँगा माटी ही में मरेंगे।'

'कलकत्ता मे तो हमारी लाशें सड़क के किनारे पड़ी सड़ती रहतीं, ठाकुर!'

गौरी और आरसी भी वैरागी बाबा और ठाकुर मामा की बातों से बँधी हुई आगे बढ़ रही थीं। वे ज़रा ख़ामोश हो गये तो आरसी का ध्यान पद्मा की ओर पलट गया। और वह गौरी के गले मे बाँह डालकर बोली—'सत क्या घमण्ड को कहते है! मैं नही मान सकती कि कलकत्ता ने उसे सतवन्ती छोड़ा होगा।'

'यदि वे लोग हमें पीछे से आकर पकड़ ले, दीदी, तो कहो हम क्या जवाब देंगी?'

'पद्मा का बस चले तो हमें फिर वहीं पहुँचवाकर दम ले।'

'ऊँह—दीदी, पद्मा की बात छोड़ो। वह उनके पंजे मे फँस जाती तो वहीं रह जाती। पर हमे तो राँगा माटी की याद सता रही थी और हम भाग आयीं।'

आरसी और गौरी तेज़-तेज़ चलने लगी। उधर से गणेश ने उन्हें देखा। आरसी की आवाज़ उसके कान मे यों पहुँच रही

थी, जैसे बन्द मुट्ठी से आजाद होकर केवड़े के फूल की तेज खुशबू आ रही हो। वह चाहता था कि दादा आगे निकल जाँय और वह ज़रा आरसी के क़रीब हो जाय। पर दादा भी उसकी रग-रग पहचानता था।

दादा बोला—'वह लोग अभी तक रॉगा माटी ही में होंगे—साहूकार और ज़मींदार।'

'हाँ, दादा'—गणेश ने चोर निगाहों से आरसी की ओर देखकर कहा।

'अब हमें वापस आते देखकर वे क्या सोचेंगे?'

'मैं क्या जानूँ?'

'क्यों, वे ख़ुश न होंगे?'

'क्या कह सकता हूँ?'

'साहूकार फिर कर्ज देगा और सूद लेगा?'

'वही जाने।'

गणेश जवाब देते-देते तंग आ चुका था, पर दादा सवाल पर सवाल किये जा रहा था। वह चाहता था कि दादा से कहे, अब चुप भी करोगे या नहीं। पर पिताजी की अनुपस्थिति में बड़े भाई का सम्मान भी तो ज़रूरी था। और अब दादा बहुत गह-राई में चला गया था।

'साहूकार और जमींदार मर क्यों नहीं जाते?'

'हम जो मरने के लिए है।'

'इन्साफ़ का खून इसी तरह होता रहेगा? और कानून क्या यों ही रहेंगे।'

'यह तो क़ानून बनाने वाले और इन्साफ़ करने वाले ही जानें--मैं क्या जानूँ?'

उधर वैरागिन माता मंगलचण्डी से कह रही थी—'गोपाल के ब्याह पर साहूकार से क़र्ज़ लेना होगा और वह इन्कार तो

नहीं कर देगा ?'

पास से वैरागी बाबा ने बिगड़कर कहा—'इन्कार तो जब करे कि हम बेईमान हों, चोर हों, उठाईगीरे हों ।'

मंगलचण्डी ने सर्द आह भर कर वैरागी बाबा की ओर देखा और फिर वैरागिन माता की बाँह छूकर बोली—'हम तो भले आदमी हैं—किसान । भगवान न रूठ जायँ । जमींदार और साहूकार को भुलाया भी जा सकता है ।'

ठाकुर मामा खामोशी से बातें सुन रहा था । जाने क्या सोचकर वह चाँद की ओर देखने लगा । और फिर वैरागी बाबा की तरफ देखकर बोला—'अब तो चाँदनी में सिलवटें पड़ने लगीं । बाबा, हम राँगा माटी के समीप पहुँच रहे हैं ।'

'कल रात भी तुमने, यही बात कही थी, ठाकुर !' बाबा ने दूर नारियल के वृक्षों की ओर एक लम्बी निगाह डालकर कहा—यह सब कुदरत का खेल है । बहुत दिन इसी तरह बीत गये । दिन को आराम, रात को सफर । यह जीवन भी क्या जीवन है ।'

'कलकत्ता मे तो भीख माँगने पर भी न मिलती थी, बाबा ! अब यहाँ लोग स्वयं कुछ न कुछ दे देते हैं । काल की भट्टी में जीवन सोने की भाँति कुन्दन बनकर निकलेगा, यह कौन जानता था ?'

'कुन्दन ! हा हा हा—अब क्या राँगा माटी में चाँद और सूर्य हमारा कहा मानेंगे ?'

ठाकुर मामा ने हँसकर बात टाल दी । वैरागी बाबा ने यही सोच लिया कि हाँ अब राँगा माटी में चाँद और सूर्य साहूकार और जमींदार की बजाय लोगों का हुक्म मानेंगे । उसने खुश होकर इधर-उधर देखना शुरू कर दिया ।

काफिला एक दोराहे पर पहुँच चुका था । कुछ लोग अपने गाँव की तरफ मुड़ गये । वैरागी बाबा को अब इतनी फुरसत

नहीं थी कि रुक कर उनकी तरफ देखता रहे। ठाकुर मामा नयी-नयी बातें सुनाये जा रहा था। प्राचीन काल में रॉंगा माटी की धरती पर दो राजाओं में घोर युद्ध हुआ था। इतना खून गिरा, इतना खून गिरा कि रॉंगा माटी की धरती अब तक लाल है। वहॉं हमेशा सत्य फला-फूला है। हमेशा सत्य ही की जय हुई है। रॉंगा माटी के साहूकार और ज़मींदार अब हमारे सत्य के सामने हार मानने पर मजबूर हो जायँगे।

ठाकुर मामा ने वैरागी बाबा को तेज़-तेज़ पग उठाने की राय देते हुए कहा—'जैसे अच्छे भले आम में कीड़े पड़ जायँ, बस कुछ इसी तरह देश में काल पड़ गया।'

'अब रॉंगा माटी में तो हम हमेशा के लिए काल का रास्ता बन्द कर देंगे,' बाबा ने थकी हुई आवाज में नया जोर लाते हुए कहा—'अब रॉंगा माटी पर ज़मींदार और साहूकार का हुक्म नहीं चल सकता। वह राजा जो यहॉं दूसरे राजा से हार गया था, वह तो बहुत बड़ा राजा था न—ज़मींदार और साहूकार क्या उससे भी बड़े हैं? हमारी और उनकी लड़ाई शुरू होने वाली है।'

थकी हुई घोड़ी की तरह कनौतियॉं ताने वैरागिन माता ठाकुर मामा और वैरागी बाबा की बातें सुन रही थी। वह कहना चाहती थी कि इस बक-बक को बन्द करो। ऐसी ही ताकत थी तो समय पर जोर दिखाया होता। उस समय तो कहीं से चावल का एक दाना भी न ला सके, दुबैल बन गये। अब यों ही शेखियॉं बघार रहे हो।

उधर गणेश अपने भाई से बिछुड़ कर आरसी और गौरी के साथ मिल गया था। गौरी कह रही थी—'गणेश पहले तो बहुत शरमीला था।'

आरसी ने कहकहा लगा कर गणेश का मजाक उड़ाया—

'मैंने तो गणेश को कभी शरमीला नहीं समझा, गौरी ! और अब तो कलकत्ता ने उसे और भी होशियार बना दिया होगा ।'

गणेश के जी मे तो आया कि साफ साफ कह दे कि तुम्हे भी तो कलकत्ता ने बहुत-कुछ सिख दिया होगा। पर राँगा माटी की प्रथाये उसे उनके और अपने बीच मे दो हाथ का फासला रखने पर मजबूर कर रही थीं। हाँ, अब प्रथाएँ नये सिरे से जिन्दा होने लगी थी।

उधर मंगलचण्डी और पद्मा अब साथ-साथ चल रही थीं। मंगलचण्डी की कहानी ने पद्मा को झॅझोड़ कर रख दिया था। वह सोच रही थी कि सचमुच वह शाहजादी, जिसे आदमखोर दैत्य ने कैद कर रखा था और जो चिरकाल एक शाहजादे की प्रतीक्षा करने के बाद स्वयं ही हिम्मत करके सात द्वीपों और सात सागरों को पार करती अपने देश मे आ गयी थी, आरसी और गोरी से बहादुर कैसे हो सकती है। पर अभी तक उसका स्वाभिमान उसे आज्ञा न देता था कि वह बढ़ कर उनके साथ जा मिले। उसने दूर से देखा कि उनके साथ-साथ अब गणेश और गोपाल चले जा रहे हैं। उसे ख्याल आया कि गणेश और गोपाल ही वे शाहजादे है जिन्होंने आरसी और गौरी की कुछ मदद नही की थी और अब वे शर्मिन्दगी के मारे कुछ बोल नहीं सकते। जाने क्या सोच कर वह मंगलचण्डी से बिछड़ गयी और उनके समीप होकर चलने लगी।

गणेश गौरी की तरफ था और गोपाल आरसी की तरफ। गौरी और आरसी क़दम-कदम पर कहकहे लगा रही थीं, जैसे वे यह जताना चाहती हों कि अब तो नया युग है। अब लड़कियाँ लड़कों को चुना करेंगी। गणेश के मन मे वह गीत गूँज रहा था जो उसने कलकत्ता में सुना था--एक नदी के दो किनारे मिलने से मजबूर और गोपाल सोच रहा था कि गौरी की माता घर-

ऊँचाई रखना चाहती है। भला कोई बताये कि मेरे बिना वैरागी बाबा और वैरागिन माता कैसे जियेंगे। जिनका बेटा और बहू दोनों चल बसे उनका क्या रह गया ? अब तो मेरे मा-बाप यही वैरागी बाबा और वैरागिन माता हैं। हाँ, एक नदी के दो किनारे मिलने से मजबूर—मैं लाख सोचूँ, गौरी से मेरा व्याह होना असंभव है।

काफिला नारियल के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के बीच से गुजर रहा था। जैसे कोई फौज दरिया को पार कर रही हो। वृक्षों से छनकर चाँदनी की सिलवटें और भी गहरी हो गयी थीं और इन सिलवटों ही की तरह अपरिचित और परिचित आवाज़ें आपस में घुटी जा रही थीं। कुछ लोग यों जबान चला रहे हैं जैसे आलू छीलते हैं और कुछ यों जैसे कैंची से कपड़ा काटते हैं। मरियल-सी आवाज़ों में भी ताज़गी आगयी थी।

ठाकुर मामा कह रहा था—'हमारे भाग्य अच्छे हैं कि हम लौट कर राँगा माटी जा रहे हैं।'

'हाँ, ठाकुर ! राँगा माटी हमें बुला रही है।'

'राँगा माटी का नाम बड़े-बड़े शास्त्रों और इतिहासों में आया है बाबा !'

'ज़रूर आया होगा, ठाकुर।'

'कहते हैं यहाँ भगवान बुद्ध भी आये थे, बाबा !'

'क्यों कलकत्ता में तो भगवान बुद्ध कभी नहीं आये थे ना, ठाकुर ?'

'कवि जयदेव ने अपने गीतों में रांगा माटी की सुन्दरता का बखान किया है, बाबा !'

'वाह री राँगा माटी !'

'यह भी लिखा है बाबा, कि मलमल पहले-पहल ढाके में नहीं, राँगा माटी में तैयार होने लगा था और द्रौपदी का चीर

जिसे दुशासन खींचना चाहता था, इसी रॉगा माटी की मलमल से तैयार किया गया था। और लिखा है कि यहाँ इतना बारीक मलमल तैयार किया जाता था कि कोई बीस-बीस तहें जोड़ कर भी पहने तो अङ्ग-अङ्ग नजर आये। अब वह कारीगर जाने कहाँ चले गये?'

'हम उन्हें फिर बुला लायेंगे ठाकुर?'

'और बाबा, बासमती चावल की जन्म-भूमि भी असल में रॉगा माटी ही है।'

'अब लाख काल पड़ जाय, बासमती की जन्म-भूमि रॉगा-माटी छोड़ कर हम कहीं नहीं जायेंगे, ठाकुर!'

चाँद एक तरफ लुढ़क कर फीका पड़ गया था। पर अभी काफी रात बाकी थी। और बैरागी बाबा ने सोचा कि आज सूर्य रॉगा माटी की धरती पर ही निकलेगा। वह कितनी शुभ घड़ी होगी, जब वह वहाँ खड़े होकर खेतों को प्रणाम करेंगे। उस समय उन्हें याद भी न रहेगा कि वे कलकत्ता में दर-दर भीख माँगते थे और दुत्कारे जाते थे।

किसी ने चिल्लाकर कहा—'वह रहा रॉगा माटी को जाने वाला रास्ता।'

ठाकुर मामा चिल्लाया—'अब हम जल्द पहुँच जायेंगे।'

बैरागी बाबा कह रहा था—'काफिला तो और आगे जायगा। हम काफिले से छुट्टी ले लेंगे।'

और दौराहे पर पहुँच कर बैरागी बाबा बहुत देर तक काफिले की ओर देखता रहा। जैसे कह रहा हो—तुम्हारे गाँव भी अब दूर नहीं, काफिले वालो! जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाओ। ठाकुर मामा ने उसका कन्धा झँझोड़ा—'चलो बाबा! नहीं तो हम सब से पीछे गाँव पहुँचेंगे।'

हर कोई भागने लगा था और यही चाहता था कि एक ही

छलॉग में घर के सामने जा पहुँचे । और सूर्य अभी निकला भी न था कि वे रॉगा माटी जा पहुँचे । खेतों को प्रणाम करते हुए वे गॉव की ओर चले जा रहे थे ।

झोपड़ियो की दुर्दशा उन्हे फिर से तड़पाने लगी । हर कोई अपनी खस्ताहाल झोंपड़ी के भीतर झॉकते हुए झिझकता था । और जिन झोंपड़ियों के मालिक कलकत्ता ही में रह गये थे, उनके भूत शायद इन जिन्दा बच कर आने वालों से पहले ही आ गये थे ।

फिर उनकी निगाहे साहूकार के घर की तरफ़ उठ गयीं । पर सबने मिल कर फैसला किया कि पहले जमींदार के द्वार पर जाना चाहिए । वे पूरब की तरफ चल पड़े, जिधर क्षितिज पर सूर्य एक सुनहली रोटी की भॉति उदय हो रहा था । उन्हे वह दिन याद आ गया जब वे रॉगा माटी को अन्तिम प्रणाम कहकर कलकत्ता की तरफ चल पड़े थे । उन्होंने कहा था कि मर जायॅगे, पर इस धरती का मुँह नहीं देखेंगे । जन्मभूमि की याद उन्हे फिर खींच लायी । वे हैरान थे कि उन्होंने अपना फैसला कैसे रद्द कर दिया । साहूकार का कानून अब भी सूद का कानून होगा और जमींदार लगान के बगैर बात नही करेगा । पर जीये या मरे, कलकत्ता से रॉगा माटी ही बेहतर है, अपनी जन्म-भूमि तो है ।

जमींदार के द्वार पर पहुँच कर उन्होने देखा कि साहूकार वहॉ मौजूद है । सबने एक स्वर में कहा—'नमस्कार महाराज !' कुछ क्षणों के लिए साहूकार ठिठक कर रह गया । उसे विश्वास नही होता था कि ये आवाजे जिन्दा मनुष्यों की है । जब उसे होश आया तो उसने मुँह फुलाकर कहा—'वैरागी बाबा, तुम—और ठाकुर मामा ! मंगलचण्डी ! कहॉ रहे इतने दिन ?'

वैरागी बाबा ने आगे बढ़ कर कहा—'जहॉ अन्न जल फिराता रहा, वहॉ फिरते रहे, महाराज ! भाग्य मे आपके दर्शन

'लिखे थे सो बचकर आ गये।'

'बाक़ी कहाँ है?' साहूकार ने आश्चर्य से पूछा।

'बहुत तो मर गये। कुछ वहीं रह गए।'

'कोई बात नहीं। तुम आ गए तो वे भी आ जायँगे।'

'हाँ, महाराज!' बैरागी बाबा ने नम्रता से कहा।

'ज़मींदार बाबू तो तुम्हें बहुत दिनों से याद कर रहे थे।'

'इन्हीं का आसरा है हमें भी महाराज!'

इस बीच ज़मींदार बाहर निकल आया और सबने 'धर्मी राजा बाबू की जय' का सिंहनाद किया।

आरसी गोपाल की तरफ कनखियों से देखते हुए सोच रही थी कि साहूकार मालदार आदमी है और ब्याह के लिए ज्यादा कर्ज की जरूरत भी तो नहीं!

गौरी ने पद्मा की ओर एक व्यंग्य-भरी निगाह फेंकी, जैसे कह रही हो कि मैं सतवन्ती नहीं तो न सही, पर गणेश अब तुम्हारा होने से तो रहा।

साहूकार बोला—'राँगा माटी में कमी नहीं। तुम लोग हल चलाओ, फसलें उगाओ—रुपया हम लगायेंगे।'

बैरागी बाबा, ठाकुर मामा और गोपाल के मुर्दा चेहरों पर रौनक-सी आ गयी—'हमें आप ही का आसरा है महाराज!' वे एक-स्वर होकर कह उठे।

उस समय अवसर देख कर ज़मींदार ने हाथ के इशारे से सबको चुप कराया और टूटी-फूटी, कंगाली की मारी झोंपड़ियों की ओर इशारा करते हुए कहा—'देखो, वे लोग भी तो काम कर रहे हैं पगलो! मैंने तो जब भी तुमसे कहा था कि राँगा माटी छोड़ कर मत जाओ...'

अमन का एक दिन

दीदी ने रेडियो को धीमा करते हुए झुंझला कर बालकोनी से नीचे आशुतोष रोड पर निगाह डाली। वह कहना चाहती थी कि कुछ दिनों के लिए इन ठुमरियों का गाया जाना कानूनन बन्द कर दिया जाय। हमने नीर बहाये सजनवा तेरे बिना, हम पछताये . . . .बहुत हो लिए ये राग। कोई जिये चाहे मरे। पर ये ठुमरियाँ बन्द नहीं हो सकतीं। कितनी फिजूल है यह सब गायकी। आग-बगूला होकर उसने पीछे की ओर देखा और हाथ बढ़ाकर रेडियो बन्द कर दिया। वह चाहती थी कि रेडियो वालों को जली-कटी सुना डाले। वह पूछना चाहती थी कि आजकल जब कि लोग एक-दूसरे के खून से कलकत्ते के गली-कूचों को रंग रहे है, गाने का यह प्रोग्राम क्यों जारी रखा गया है। मझली बहन को रेडियो का बन्द कर दिया जाना अनुचित प्रतीत हुआ। वह दीदी से पूछना चाहती थी कि ये अन्याय कब तक जारी रखे जायेंगे। सागवान की कुरसी के बाजुओं पर हाथ फेरते हुए वह खुद ही झेंप कर चुप बैठी रही। यद्यपि जंग कभी की खत्म हो चुकी थी, पर अभी तक सब काम दीदी से पूछ कर किये जाते थे। माँ भी हर काम मे दीदी का इशारा चाहती थीं। जरा-सा रेडियो चलने से कितनी बिजली खर्च हो जाती है। दीदी भी कितनी कंजूस होती जा रही

है। बाप रे! अब इस घर में गिनती के गाने सुनने को मिला करेंगे।

निक्की यानी सबसे छोटी बहन सब की चहीती थी। वह उस समय दर्पण के सामने बैठी बाल संवार रही थी और साथ-साथ ठुमरी के बोल गुनगुनाती जाती थी। पर हैं, यह रेडियो कैसे बन्द हो गया? उसके मन को झटका-सा लगा और ठुमरी के बोल देर तक उस के कंठ में अटके रह गये। रेडियो की सूई घुमा कर उसने यह देखना चाहा कि आखिर बात क्या है। पर जब उसने दीदी को बालकोनी में खड़े देखा तो वह सहम कर अपनी जगह पर बैठी रही। उस समय उसे छुटपन से घृणा प्रतीत हुई, आखिर इसका क्या मतलब कि रेडियो भी दीदी से पूछ कर चलाया जाय।

मां सामने की गली में चली गयी थी। वह घर पर होती तो मंझोली और निक्की मिलकर दीदी का मुक़ाबला करने का यत्न करतीं यद्यपि इसका नतीजा कुछ भी न निकलता। क्योंकि पहले भी इससे मिलती-जुलती घटनायें हो चुकी थीं।

ऊपर से भाई साहब की आवाज आई—निक्की, भागकर आओ—निक्की!

पर निक्की अपनी जगह से न हिली। यह भाई साहब अलग गुलामी कराते हैं। दीदी पर उनका भी बस नहीं चलता। जब देखो छत पर बैठकर कबूतर उड़ाया करते हैं। हालांकि मां लाख समझा चुकी है कि बेटा यह काम तुमने कहाँ से सीख लिया, तुम्हारे बाप दादा ने तो कभी दूसरों के कबूतर उड़ते देखने में भी दिलचस्पी न ली थी।

भाई साहब की आवाज़ बराबर सुनाई दे रही थी। दीदी ने झुंझला कर मॅझली से कहा—'आज मैं माँ से कहकर आखिरी फ़ैसला किया चाहती हूँ, शहर में लोग एक-दूसरे की जान के

ग्राहक हो रहे हैं और यहाँ छत पर बैठकर कबूतर उड़ाये जा रहे हैं।'

मँझली बोली—'भाई साहब तो हम दोनों से बड़े हैं।'

'बड़े हैं तो क्या हुआ ?' दीदी झट कह उठी—'मैं माँ को समझाऊँगी और माँ भाई साहब को समझायेंगी।'

इतने में निक्की भी दर्पण के सामने से उठकर बालकोनी में अपनी बहनों के करीब चली आई और वह भी दूर तक अशुतोष रोड का दृश्य निहारने लगी। कभी इस सड़क पर भी गरमा-गरमी रहती थी। पर अब तो मालूम होता था कि नीचे की दुकानें सदा बन्द रहेंगी।

धूप बहुत तेज़ न थी। मालूम होता था कि धूप पर भी मौत का साया पड़ चुका है। सब के दिल कुछ इतने बोझल हो गये थे कि चेहरों पर मुसकराहटों का थिरकना कठिन हो गया था।

एक बार फिर भाई साहब की आवाज़ सुनाई दी, अब के उन्होंने मंझली को बुलाया था। निक्की ने कुछ-कुछ मुसकरा कर दीदी की ओर देखा। जैसे कह रही हो कि मझली भी ख़ामोश रही तो भाई साहब दीदी को आवाज़ देंगे।

माँ को अब तक तो आ जाना चाहिए था। तीनों बहनों की निगाहें एक साथ सामने गली की ओर उठ गईं। वे चाहती थीं कि दूर से माँ की साढ़ी नज़र आ जाय।

दीदी बोली—'मैंने माँ से लाख कहा कि मैली साढ़ी पहनकर बाहर मत जाओ, पर माँ ने एक न सुनी और चली गई।'

मंझली किसी कदर गुमसुम-सी नज़र आ रही थी। निक्की ने उसका कन्धा झंझोड़ कर कहा—'दीदी को माँ की मैली साढ़ी की फिकर है। मैं तो सोच रही थी कि माँ को जाना ही नहीं चाहिए था।'

मझली कुछ न बोली। दीदी ने जैसे उसकी ओर से उत्तर

देते हुए कहा—'ख़ैर, माँ का जाना तो ज़रूरी था। क्योंकि रुके हुए काम कब तक रुके रह सकते है ?'

मंझली बराबर मौन रही। दीदी और निकी भी कुछ क्षणों के लिए मौन हो गईं। यों प्रतीत होता था कि उन्हे अभी तक कोई बड़ा खतरा महसूस हो रहा है। अभी शहर की भयानक घटनाओं की याद कायम थी। कानून फिर से जोर पकड़ रहा था। पर अनगिनत घावों पर फाहे रख सकना तो क़ानून के बस का रोग नहीं था। कितने घर जला डाले गये थे और कितने निर्दोष लोग मौत के घाट उतार दिये गए थे। एक पड़ौसी ने दूसरे पड़ौसी के बच्चों पर जुल्म ढाया। ऐसी-ऐसी खबरें भी सुनने में आई थी कि जिन्दा बच्चों को माँ-बाप की आँखो के सामने कीलों से दरवाजों के किवाड़ों पर गाड़ दिया गया। राह चलते लोगों के सिर अगले ही पल गेंद की तरह सड़क पर लुढ़कते नज़र आने लगे थे। इतना जुल्म तो वहशी हमलावरों ने भी न किया होगा। इतिहास गवाह था। ताजा घावों का इतिहास अभी लिखा जा रहा था। ये वे घाव थे, जो एक ही देश के रहने वालों ने, एक ही धरती का अन्न खाने वालों ने आपसदारी को भुलाते हुए एक-दूसरे के सीने पर लगाये थे। महान् मनुष्यता लहूलुहान हुई पड़ी थी।

दीदी बोली—'यदि देश को जीवित रहना है तो देश-वासियों को मिलकर रहना होगा। सरगम में सात स्वर होते हैं और स्वरों की एकस्वरता के बिना कोई राग सम्पूर्ण नहीं हो सकता। देश के अलग-अलग प्रान्तों और संस्कृतियों को किसी एक केन्द्र के गिर्द घूमते हुए अपने जीवन का प्रमाण देना होगा। अब पिछले दंगों की पड़ताल से क्या हासिल होगा ? घावों को सुई की नोक से छेड़ कर खून निकालना

लने से फायदा ? सब बेकार की बातें हैं। क्यों न समस्त बल फिसादों को बन्द कराने मे खर्च कियां जाय ?"

मंझली ने सिर खुजाते हुए कहा—"मैं तो चाहती हूँ कि नानी के चली जाऊँ।"

निक्की भी चुप न रह सकी। बोली—"डर गयी, पगली ? जो होना होगा वह तो होकर रहेगा। अब अमन के दिन दूर नहीं।"

बालकोनी मे खड़े-खड़े तीनों बहनों ने चौंक कर सड़क की ओर देखा। उन्हे प्रति क्षण एक नये खतरे की आशंका थी। यद्यपि आत्मवंचना का यह हाल था कि वे अमन के हक में सोच रही थीं।

दीदी बोली—"सच पूछो तो जंग कभी खत्म नहीं होती। यह खाना-जंगी भी तो एक प्रकार की जंग है। जहालत और अज्ञान की जंग।"

निक्की ने व्यंग्य के अन्दाज में कहा—"और कल को तुम भी कहने लगोगी कि अब किसको कोई दीदी कहे और किस को मॅझली।"

दीदी के चेहरे की बनावट ऐसी तो न थी कि यह कहा जा सके कि मूर्तिकार ने उसे फ़ुरसत के क्षणों मे निर्मित है। जंग के दिनों में वह बहुत मोटी हो गयी थी और उसके चेहरे के नक्श उसके सांवले रंग पर भारी मालूम होते थे। यदि कोई उससे मंझली के सम्बन्ध में पूछता तो वह अपनी कुरूपता को भुलाते हुए यही उत्तर देती कि उसका चेहरा सूखे प्याज की तरह है—बेरौनक और निरर्थक। और निक्की का यह हाल था कि जब वह आँखे उठा कर दीदी की ओर देखने लगती तो दीदी को यों लगता कि पहाड़ी के पीछे आकाश पर रौशनी फैल गयी है।

क्योंकि कद के लिहाज़ से दीदी और मंझली दोनों से ऊँची उठ गयी थी।

अभी तक तीनों बहनें विवाह की राह देख रही थीं। जंग के दिनों में तो विवाह की बात यह कह कर टाल दी जाती कि बहुत ख़र्च आयगा। ज़रा अच्छे दिन आ जांय। पर यह कौन कह सकता था कि वे अच्छे दिन कब आयेंगे। दीदी यों सब पर हुकूमत करती थी। पर यह बात नहीं कि उसे अभाव का अनुभव नहीं होता था। कभी-कभी उसे शहनाइयों की आवाज़ पास आती महसूस होती। पर, फिर यह आवाज़ दूर हटने लगती और सरकते-सरकते ख़ामोशी की गहराइयों में खो जाती। वह सोचती कि कोई इतना मजबूर भी न हो। उस समय उसकी चितवन सिमट जाती और उसकी नजरें नीची हो जातीं। जैसे उसे यह ख्याल आ गया हो कि कोई उसे देख रहा है—"कोई" जिसे ठुमरियों में "सजनवा" कह कर याद किया जाता है। फिर उसकी चेतना उभर कर "सजनवा" के समीप चली जाती। पर फिर जैसे वातावरण मे कोई आवाज़ गूँज उठती—इक ज़रा सबर''पर वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु से पूछना चाहती थी कि अमन के अच्छे दिन कब आयंगे। यह प्रश्न वह मंझली और निक्की से भी पूछना चाहती थी। और फिर उसे ध्यान आता कि अब तो निक्की और मंझली भी ब्याही जानी चाहिये।

आशुतोष रोड ख़ामोश थी। दूर तक निगाह डालते हुए दीदी कह उठी—"कहीं कोई नज़र नहीं आता, मंझली!"

मंझली ख़ामोश खड़ी रही। निक्की यों ख़ामोश रही कि मंझली की जगह उसे कुछ कहने की क्या आवश्यकता है। अब के दीदी ने निक्की के समीप सरक कर कहा—"सब आवाज़ें न जाने कहाँ दफ़न हो गयीं।"

निक्की ने शरारत के तौर पर पास के गमले से लाल फूल

तोड़ कर दीदी की ओर बढ़ाया और दीदी की बात को सुना-अनसुना करते हुए बोली—"यह तुम्हारे जूड़े पर अच्छा लगेगा।"

दीदी ने मुँह बनाकर उसे घूरा। जैसे कह रही हो, तुम अभी नादान हो। अभी तुम्हारे ब्याह में देर है। और फिर वह मंझली की ओर घूम गयी और बोली—"मेरा ख्याल है कि शीघ्र ही अमन कायम होकर रहेगा और रुके हुए सब काम सम्पूर्ण किये जा सकेंगे।"

निक्की खिलखिलाकर हँस पड़ी—"वाह वाह।"

यह "वाह वाह" हथौड़े की चोट ही तो थी। दीदी और मंझली दोनों ने मिलकर निक्की पर त्योरी चढ़ाई। उत्तर में निक्की के ओठों पर मुसकराहट थिरक उठी।

"तुम तो पागल हो गयी हो, निक्की।" दोनों बहनें मिल कर चिल्लाईं।

"तुम्हारा विचार तुम्हें मुबारक", निक्की कह उठी "पर माँ ने मुझे कभी पागल नहीं समझा।"

निक्की ने हाथ बढ़ाकर रेडियो का बटन घुमा दिया और वह भी इस अंदाज़ से कि दोनों बहनों को पता ही न चला और वह प्रतीक्षा करने लगी देखें अब कौन गा रहा होगा। रेडियो पुराना था और इसे गरम होते देर लगती थी।

'जा मैं तोसे नाहीं बोलूँ ···' ठुमरी के बोल गूँज उठे।

दीदी को यों महसूस हुआ कि देश का एक वर्ग दूसरे वर्ग से कह रहा है—जा मैं तोसे नाहीं बोलूँ। भला यह भी कोई बात है, उसने सोचा, यह तो आपसदारी के विरुद्ध है। कोई अपने पड़ोसी से क्यों कर बोलना बन्द कर सकता है? पर झट उसकी चितवन पर क्रोध की लहर दिखाई दी। सचमुच वह इस समय न ठुमरियाँ सुनना चाहती थी न दादरे, न भजन, न

ग़ज़लें, न हलके-फुलके गानों के रिकार्ड। वह कड़क कर बोली—"बन्द कर दो रेडियो, मझली!"

मंझली को ठुमरी में रस आने लगा था। इस समय वह निक्की के मुकाबले पर दीदी की प्रत्येक बात को तरजीह देने का फैसला कर चुकी थी। उसने झट रेडियो बन्द कर दिया।

निक्की को बहुत गुस्सा आया। यह सोचकर वह झुंझलाई कि रेडियो पुराना है। शुरू करना चाहो तो गरम होते कितनी देर लग जाती है। बन्द करो तो फौरन बन्द हो जाता है। वह दीदी से कहना चाहती थी कि माँ को आने दो। आज मैं अपनी सब शिकायतें कह डालूँगी। पर अगले ही पल वह गुस्सा थूक कर यह सोचने लगी कि अमन भी जैसे पुराने रेडियो के गाने की तरह है। शहर के सहार की भयानक घटनायें उसके दिल और दिमाग़ के एक-एक कोने में उभरने लगीं। कितने लोग बेघर हो गये। कितने लोग मर गये, और जो जीवित बच गये वे भी तो नये सिरे से जीवन शुरू कर रहे हैं और दंगे-फिसाद है कि बन्द होते नज़र ही नहीं आते। आज यहाँ, कल वहाँ, बार-बार आग भड़क उठती है।

दीदी न जाने क्या सोच कर कह उठी—"मैं बहुत भूलने का यत्न करती हूँ। पर मरने वालों की चीखें मेरी आत्मा में बराबर गूँज रही हैं। मैं चाहती हूँ ये दिन जल्दी ख़त्म हो जायँ—ये लहूलुहाने दिन!"

मंझली बोली—"कोई और बात करो, दीदी!"

निक्की भी ख़ामोश न रह सकी, बोली—"कहो तो ऊपर से भाई साहब को बुला लाऊँ।"

"भाई साहब को कबूतरों से छुट्टी मिले जब न," दीदी ने झुंझला कर कहा, "आज माँ से कहूँगी कि कल से हमारे घर में एक भी कबूतर न रहने पाये। रुके हुए काम कब तक रुके रह

सकते हैं आखिर ?"

तीनों बहनें बालकोनी के जंगले पर झुक कर सड़क की ओर देखने लगीं। फिर उनकी निगाहें सामने गली की ओर घूम गईं। अभी तक माँ की सूरत कहीं नज़र न आती थी। उनकी हड्डी-हड्डी दुख रही थी। जैसे वे खूनियों के हाथों बुरी तरह पिट कर बड़ी कठिनाई से बच पाई हों।

दीदी बोली—"लाखों में एक है हमारी माँ। पर अब तक तो उसे आ जाना चाहिए था। मालूम होता है आज वह कोई फ़ैसला करके ही आयेगी, मंझली।"

"ये फैसले जल्द थोड़े ही हो जाते हैं," मंझली कह उठी, "मुझे मालूम है जयश्री की माँ को जयश्री के लिए लड़का तै करते कितनी देर लगी थी।"

निक्की हैरान थी कि इतने बड़े सहार के बाद भी दीदी और मझली कैसे विवाह के स्वप्न देख सकती हैं। अजब मसखरापन है। लड़के बराबर दहेज माँगते हैं और विवाह से पहले लडकी देखने की शर्त रखते हैं। खैर, देखना तो इतना बुरा नहीं। लड़की भी यों लडके को देख लेती है। पर लड़का सौ-सौ दोष निकालता है। चेहरे की काट अच्छी नहीं। कद ठिगना है। आँखें ज़रा और बडी होनी चाहिये थीं। ऐसे-ऐसे सौ-सौ क़तले-आम हो जायँ, ये नामाकूल बातें, इसी तरह कायम रहेंगी। उसके दिल और दिमाग चरखे की तरह घूम रहे थे और उसके विचार मानो सूत के तार थे जो टूट-टूट जाते थे।

पास के मकान से मछली के तले जाने की बू आ रही थी। दीदी को यह बू बहुत अरुचिकर प्रतीत हुई। उसे यों लगा जैसे मछली की भांति मानव जीवन तला जा रहा हो।

मंझली बोली—"मेरा बस चले तो यहाँ से मकान बदल लूं।"

निक्की कह उठी—"बहुत कुछ सहना होता है।"

दीदी ने निक्की की ओर कृतज्ञतापूर्वक दृष्टि से देखा। जैसे कह रही हो कि सच है। बहुत कुछ सहना होता है। और आजकल तो और भी अधिक जब कि जीवन रींग रहा है—एक थका-हारा, उदास जीवन।

मंझली बोली—"यद्यपि अब अमन कायम होकर रहेगा। पर इस अमन का भी क्या एतबार, दीदी!"

दीदी ने उसकी बात का कुछ उत्तर न दिया। वह बराबर निक्की की ओर नज़रें गाड़े खड़ी थी। वह कहना चाहती थी कि संगीत से हमे बराबर-बराबर लगाव है। तुम चाहो तो रेडियो सुन सकती हो।

निक्की को बालकोनी के सुस्त वातावरण में फिर से जीवन के आसार पैदा होते महसूस हुए और वह बोली—"अब तो भाई साहब को बुलाना चाहिए।"

संझली ने बढ़ावा दिया—'अच्छा हो यदि तुम ऊपर से भाई साहब को बुला लाओ, निक्की।"

निक्की झट कह उठी—"भाई साहब को तो कबूतर उड़ाते समय और सब बातों की सुधबुध भूल जाती है।"

दीदी बोली—"हमारी सत्ता या असत्ता का भाई साहब की दृष्टि मे कुछ महत्व नहीं।"

मंझली पलट कर बोली—"जीवन के खोखलेपन को भुलाने के लिए या यह कहिए कि जीवित रहने के समर्थन में कबूतर उड़ाना भी तो एक दलील हो सकती है।"

इसी बीच निक्की छत पर पहुंच कर भाई साहब को नीचे चलने के लिये मजबूर करने लगी। भाई साहब ने आँखों मे बनावटी गुस्सा जमा करते हुए कहा—"नीचे कैसे चलूँ? देखती नही हो मेरे कबूतर फैले हुए हैं।"

"दीदी तुम्हे बुला रही हैं," निक्की ने जोर देकर कहा, "दुकान बढ़ाओ और नीचे चलो।"

कबूतर सचमुच फैले हुए थे। "कबूतर!"--निक्की के ओंठ हिले। वह कहना चाहती थी कि इन्सानों से तो ये कबूतर ही अच्छे हैं। ये कभी कतले-आम नहीं मचाते।

दीदी और मंझली भी दौड़ती हुई छत पर चली आईं। भाई साहब बोले—'आओ, आओ--जरा रुको। मै अभी नीचे चलता हूँ।"

तीनों बहनें मुसकरा रही थीं, विशाल आकाश पर कबूतर कितने छोटे नजर आते थे। कबूतरों के साथ-साथ उनके मन भी उड़ने लगे।

दीदी के अर्ध-चेतन मन से कुछ ऐसी आवाज आई जिसका यह मतलब था कि कबूतरों के ब्याह नहीं किये जाते, न दहेज देने का सवाल उठता है। वह खड़ी सोचती रही और उसने बेदिली से जीने की ओर देखा। वह चाहती थी कि नीचे आकर सोफे पर गिर जाय और फिर कई घण्टे तक उठने का नाम न ले। माँ आये न आये। यह भी क्या मजाक है। माँ को घर की कुछ चिन्ता नहीं। भाई साहब को कबूतरों से फुरसत नहीं। मंझली और निक्की भी अकेली क्या कर सकती हैं? सब बोझ तो असल मे मेरे कन्धों पर है।

भाई साहब बोले--"निक्की, तुमने वह कहावत तो सुनी होगी?"

"कौनसी कहावत, भाई साहब?"

"वही—कबूतर का ईमान हंडिया मे।"

दी ने झुंझला कर भाई साहब की ओर देखा। जैसे वह पूछना चाहती हो कि यह किधर की कविता है। फिर उसे याद आया कि एक बार भाई साहब ने बताया था कि सर्वोत्तम

क़बूतर वे हैं जो दो-दो दिन बाद उतरते हैं। गोला कबूतर वे हैं जो झुण्ड में उड़ते है और भूखे उड़ते हैं। वे 'आयो' और 'जायो' को खूब समझते हैं। पर वे उसी समय तक आज्ञा मानते हैं जब तक उनके पेट में अन्न नहीं पहुंचता। जाड़े में उन्हे कितना अन्न मिलना चाहिये, गर्मियों मे कितना, इसका भी हिसाब है। बाजरा देख कर कई बार विरोधी दल के कबूतर भी उतर आते हैं। हाँ, हाँ, जो भी बदनीयत हो जांय।

मंझली बोली—"यह दूध मे उबला हुआ बाजरा कबूतरों को क्यों खिलाते हैं, भाई साहब ?"

दीदी भी कह उठी—"हाँ हाँ, भाई साहब, इसका उत्तर दो।"

"कई बार तो बता चुका हूँ," भाई साहब ने चबा-चबा कर कहना शुरू किया, "इससे फैल कर उड़ने वाले कबूतरों को सिमट कर उड़ने की आदत पड़ जाती है।"

निक्की की आँखों मे व्यंग्यपूर्ण मुसकान लहराई। बोली—"तब तो इन्सान के बेटों को भी दूध में उबला हुआ बाजरा खिलाना चाहिये, ताकि वे जीवन की सड़क पर एक-साथ चलना सीख जायँ।"

"पुरवा और पछवा करना—इसका मतलब तुममें से किसी को मालूम हो तो हाथ खड़ा करो।" भाई साहब ने स्कूल के अध्यापक के अन्दाज़ मे पूछ लिया।

"पुरवा और पछवा करने का मतलब है···पुरवा और पछवा के विरुद्ध उड़ना।"

निक्की झट कह उठी—"इस तरह उड़ने वाले कबूतर अच्छे समझे जाते है। पर भाई साहब, इन्सान तो कबूतरों के मुकाबले पर बहुत समझदार हैं। पर पुरवा और पछवा के विरुद्ध उड़ने की बजाय एक-दूसरे के विरुद्ध विष घोलने की कला ही जानते है।"

कभी कबूतर नीचे उतर आते और कभी भाई साहब का इशारा पाते ही फुर से उड़ जाते। भाई साहब कबूतरों के सम्बन्ध मे अपना ज्ञान और अनुभव आज अपनी बहनों के सामने उँडेल देना चाहते थे। बोले—"जिनकी आपस मे सुलह होती है एक-दूसरे का पकड़ा हुआ कबूतर वापस कर देते हैं। सुलह की उलट 'सैटकी' कहलाती है। इस अवस्था मे दुश्मनी इस हद तक भी बढ़ सकती है कि विरोधी दल को सताने के लिए उसके कबूतरों के पंख काट डाले जायँ ताकि वे सदा के लिए उड़ने के अयोग्य हो जायँ, या उनको पका कर खा जाते है।"

निक्की बोली—"तो यह कहो कि कत्ल और खूँरेजी का सबक खूनी कातिलों ने इन कबूतरबाजों से सीखा है।"

दीदी और मंझली खिलखिला कर हँस पड़ी। पर भाई साहब को आज न किसी व्यंग्य से वास्ता था न कहकहों से। वे बराबर कहे जाते थे—"जिसकी टुकड़ी परगीरी से यानी सिमट कर और पट से यानी छत के करीब-करीब उड़े वे कबूतर सर्वोत्तम और कबूतरों का शौकीन उस्ताद या खिलाड़ी कहलाते हैं।

"वाह वाह" निक्की ने शरारत के तौर पर दाद दी।

"ऊँची छत का होना जरूरी है," भाई साहब कहे जा रहे थे, "नीची छत वाला सौ कबूतर लायगा और बीस बचेंगे। पर ऊँची छत वाला सौ कबूतर पकड़ सकता है। जभी कहते हैं, कबूतरबाजी छत की।"

"और आप यह भी तो कहा करते है, भाई साहब, कि कबूतरबाजी घर की," निक्की ने बढ़ावा दिया।

"हाँ, हाँ, किराये के मकान मे कबूतरबाजी लानत है," भाई साहब कहते चले गये, "किरायेदार लाख मकान बदल

डाले, उसके कबूतर भाग कर पहले मकान का रुख अख्तियार करेंगे।"

निक्की हँस-हँस कर कबूतरों को आवाज़ दे रही थी—आयो, आयो—पर कबूतर इतने शीघ्र उससे कैसे हिल सकते थे। दीदी और मंझली को उसकी यह हरकत अरुचिकर लगी। पर भाई साहब के सामने वे उस पर बिगड़ न सकती थीं।

भाई साहब ने कबूतरों की ओर एक उचटती नज़र फेंकते हुए कहा—"कबूतर में छटा ख्वास मौजूद है। मेरा मतलब है इन्सान की तरह देखने, सूँघने, सुनने, छूने और चखने के अलावा वह अपना रास्ता खुद मालूम कर सकने की शक्ति भी रखता है।"

दीदी बोली—"रहने भी दीजिये, भाई साहब। यह छटा ख्वास तो हमारी निक्की में भी मौजूद है।"

मंझली ने दीदी की दाद देते हुए फरमाइशी कहकहा लगाया। पर निक्की ने दीदी का बोल सुना-अनसुना कर दिया। भाई साहब ने अपनी बात फिर शुरू कर दी। "कचपरे कबूतर वे हैं जिनका कोई पंख एक बार उखड़ जाय और यह अमल दो-तीन बार जारी रखा जाय तो काले की बजाय सफेद पंख निकलता है। इस तरह उस्ताद लोग काले कबूतर के पंख नोच-नोच कर सफेद पंखों के नमूने बनाया करते हैं। अजब नक्श बन जाते है और उड़ते समय भले प्रतीत होते हैं। इससे कबूतर का मूल्य भी बढ़ जाता है।"

निक्की बोली—"लगे हाथ यह बात भी बतला दीजिये, भाई साहब, कि आप यह क्यों कहा करते हैं कि हमारे महमान जाड़े में बहार दिखायँगे।"

भाई साहब खाँस कर कह उठे—'गरमियों में हर साल कबूतर पंख झाड़ने शुरू कर देता है और जाड़ा आने तक उसके

नये पंख आ चुकते हैं। जभी गरमियों मे कबूतर को उड़ाया नहीं जाता, बल्कि उसे आराम से रखते हैं, नहीं तो उसे बहुत तकलीफ हो। उस्ताद लोग तो अपने कबूतरों को गरमी और बरसात मे बिठा कर खिलाते हैं।"

निक्की बोली—"मैंने तो सुना है, भाई साहब, कि शहर में अमीर लोग गुण्डों को पाल रखते हैं और उन्हें बिठाकर खिलाते हैं।"

मंझली एक कहकहा लगाकर चुप हो गई, और दीदी न जाने क्या सोच कर कह उठी—"भाई साहब तो कल को यह भी कह सकते हैं कि कबूतरों की सस्कृति मानव संस्कृति से कहीं अधिक पुरातन है।"

भाई साहब झेपने की बजाय फिर कह उठे—"जाड़े में ठण्ढी हवा चलने को महावट कहते हैं। महावट में कबूतर को नशा आता है। कबूतरों का शौकीन हमेशा यही प्रार्थना करता है कि महावट चले। और सुनो। पेट के हिसाब से बड़पेटा और छुटपेटा, कबूतरों की दो किस्मे मशहूर हैं। कोई कबूतर बुड्ढा होता है कोई जवान। पर मजा तो जब है कि सब कबूतर एक उम्र के हों। वे जवान हों तो रंग जम जाय। कबूतर की जवानी तीन चार मास की उम्र मे शुरू होती है। पॉच मास का कबूतर पूरा जवान होता है। जोड़ा लगाने के क़ाबिल—"

यह कहते-कहते भाई साहब रुक गये और तीनों बहने झेप-सी गईं। दीदी कहना चाहती थी कि भाई साहब बन्द भी करो अपना कबूतर पुराण हम और कुछ नहीं सुन सकतीं। पर भाई साहब कब रुकने वाले थे। बोले—"आठ साल तक कबूतर जवान कहलाता है। फिर उसका उतारा शुरू हो जाता है। यों तो पच्चीस तीस साल तक वह अण्डे उतरवा सकता है। पर उड़ान के मतलब का नहीं रहता। इस हुनर के बड़े-बड़े उस्ताद

पड़े हैं। हम खुद डालडा खाते हैं, पर कबूतरों को पाँच रुपये सेर का असली घी खिलाते हैं। केसर भी खिलाते हैं। तिलियर या बकरे की सिरी की यख़नी भी खिलाते हैं।"

कबूतर बहुत दूर चले गये थे। उन्हें वापस बुलाने की फ़िक्र में भाई साहब उठकर परे चले गये। दीदी सोचने लगी कि चलो यह भी अच्छा हुआ। नहीं तो भाई साहब का कबूतर पुराण कब बन्द हो सकता था। भाई साहब तो यह भी भूल जाते हैं कि एक बार सुनी हुई बातें बार-बार सुनने से दिल उचाट हो जाता है। अब भला कौन नहीं जानता कि गरमियों में कबूतर को हर रोज़ एक तोला और जाड़े में डेढ़ तोला बाजरा खिलाते हैं, या यह कि कबूतरी एक साथ दो अण्डे देती है जिनमें से गरमियों में सोलह दिन बाद और जाड़े में इक्कीस रोज़ बाद बच्चे निकलते हैं, या यह कि उड़ने वाले कबूतरों को दिन में एक बार दाना खिलाते हैं, सुबह को उड़ाने वाले सुबह के समय और शाम को उड़ाने वाले शाम के समय। अब शायद भाई साहब इसके बारे में जबान चलाने लगें।

भाई साहब को फिर अपनी ओर आते देखकर तीनों बहनें खिलखिलाकर हँस पड़ीं। शायद वे यह कहना चाहती थीं कि अब इतनी दूर गये हुए महमानों को बुलाने की विद्या तो तुम्हें किसी उस्ताद ने सिखाई न होगी। भाई साहब आराम से अपनी जगह बैठ गये और बोले—"दड़बे में बिल्ली घुस जाय तो वह उतने ही कबूतर खायेगी जितने से उसका पेट भर जाय।"

"और साँप भी तो कबूतरों के अण्डे निगल जाता है," निक्की ने मानो भाई साहब की अगवाई करते हुए कहा।

"दरबे में नेवला घुस जाय तो कबूतर सहम कर ही मर जाते हैं," भाई साहब ने निक्की की शरारत को नज़र-अंदाज़

करते हुए कहा, "एक नेवला दो-दो सौ कबूतरों की जान का लागू बन जाता है।"

दीदी कह उठी—"मालूम होता है इस शहर के रहने वाले सब कबूतर है। कहीं से कोई नेवला दरबे मे घुस आया है।"

मंझली बोली—"लोग कहते हैं सभ्यता ने इन्सान पर कितना असर डाला है, मैं कहती हूं इन्सान ने सभ्यता पर कितना असर डाला है। इन्सान ने सभ्यता के चेहरे पर सियाही मल दी है।"

निक्की ने बात का रुख फिर से भाई साहब की ओर मोड़ते हुए कहा—"नेवला कहीं बाहर से नहीं आया। यहाँ तो कबूतर ही एक दूसरे की जान के दुश्मन हो रहे हैं।"

भाई साहब को हँसी आ गई। बोले—"कबूतर तो बड़ा मासूम पंछी है, निक्की। वह अपने पड़ोसी पर कभी चोंच तक नहीं चलाता।"

दीदी ने बात का रुख मंझली की ओर मोड़ते हुए कहा—"जीवन दो हिस्सों मे वंटता नजर आता है।"

मझली ने इन्कार मे सर हिलाते हुए कहा—"जीवन कैसे बंट सकता है, दीदी? जीवन तो एक है।"

क़तले-आम बन्द हुए कई सप्ताह गुजर चुके थे। शहर मे फिर से अमन कायम हो रहा था। अब तो केवल इक्के-दुक्के लोगों पर हमलो की खबरे आती थीं। तीनों बहनों का ख्याल था कि ये भी बन्द हो जायगे। पर न जाने क्यों वे उस क़तले-आम को भुला नही सकती थीं। हर समय, हर क्षण एक भय उनके मन में सूई की तरह चुभता रहता था।

दीदी ने डरी हुई कबूतरी की तरह सिर झुकाते हुए कहा—"जरूर कहीं से कोई नेवला घुस आया है। कबूतर सहम-सहम जाते हैं।"

भाई साहब बोले—"नेवले की बात छोड़ो, दीदी ! दिल्ली से सुनील का पत्र आया है।"

"क्या लिखता है सुनील ?" तीनों बहनें मिलकर कह उठीं।

"और क्या लिखेगा सुनील ?" भाई साहब ने किसी क़दर उदासी ज़ाहिर करते हुए कहा—"हर जगह यही आग लगी हुई है।"

"क्यों ?" तीनों बहनों ने रोगी की सेवा से तंग आए हुए इन्सान की तरह झुंझला कर कहा।

"रग-रग और रेशे-रेशे के अन्दर एक जनून छा गया है, दीदी," भाई साहब चबा-चबाकर कह रहे थे, खैर, अब तो सुनील लिखता है कि वहाँ अमन है।"

मंझली बोली—"बम्बई से तो रोज़ छुरा घोंपने की खबरें आती हैं। चलो दिल्ली ही अच्छी निकली कि वहाँ अमन क़ायम हो गया।"

निक्की बोली—"दिल्ली तो अहमदाबाद से अच्छी रही। अहमदाबाद में तो अब तक बदअमनी है।"

मंझली कह उठी—"दिल्ली में लाख अमन कायम हो जाय, वहाँ बदअमनी का डर ज़रूर रहेगा।"

निक्की ने अपनी ही बात छेड़ दी—"क्यों न सुनील को यहाँ बुला लिया जाय ? ज़रा दीदी का दिल भी बहल जायगा। अब तो सुनील से दीदी का ब्याह होगा। और हमें रसगुल्ले मिलेंगे।"

"हाँ हाँ, रसगुल्ले !" मंझली ने भी दाद दी।

निक्की बोली—"माँ आज ज़रूर सुनील के घर से ब्याह की बात तै कर के ही आयेंगी।

भाई साहब ने बात का रुख़ पलटते हुए कहा—"सुनील लिखता है कि जिस दिन पहली रात पास के इलाक़े से शोर

उठा तो यों प्रतीत हुआ कि ये मौत की आवाज़ें कभी नहीं थमेंगी। ये अजीब आवाज़े थीं। यही अन्दाजा लगाया जा सकता था कि लोग खुल्लम-खुल्ला एक दूसरे पर पिल पड़े हैं। मालूम होता था कि जाड़े की यह लम्बी रात और भी लम्बी होती चली जायगी। जिस मुहल्ले में सुनील रहता है, वहाँ के रहने वाले सब बाहर निकल आये। वे वहाँ से भागकर कहीं न कहीं शरणार्थी होने की चिंता मे थे और सुनील हैरान था कि अपना सामान कैसे उठाये। तुम तो जानती हो उसने पिछले पांच वर्षों में अनगिनत चित्र बना डाले है और वह एक भी चित्र बेचने का कायल नहीं और ये चित्र.. ”

निक्की ने बात काटकर कहा—“सुनील यहाँ आयगा तो इस बार उसे दीदी का चित्र भी बनाना पड़ेगा।”

“सुनो भी,” भाई साहब ने कड़क कर कहा, “सुनील लिखता है कि उस रात उसके सामने यह प्रश्न था कि इन चित्रों का क्या बनेगा। यह सोच कर वह सहम गया कि अब ये चित्र जला डाले जायगे। नीचे से उसके पड़ोसी पुकार रहे थे। एक तूफान था जिसे कोई रोक न सकता था। उस समय सुनील के दिमाग में यह प्रश्न गूँज उठा कि वह किसके लिए कला की पूजा करता रहा है। इन्सान को तो आज इस कला की ज़रूरत न थी। सुनील लिखता है कि वह रात उसे कभी नहीं भूलने की जब कि उसे बेपनाह बेचारगी का अनुभव हुआ था। वह इस सोच में डूब गया था कि क्या अपराधी के मन की तरह काली रात के अंधकार में जीवन का टिमटिमाता हुआ दीपक हमेशा के लिए बुझ जायगा? क्या इस अधकार में शताब्दियों की चित्रकला घुट-घुट कर आखिरी दम तोड़ देगी? उसकी अनुभव-शक्ति दब कर बेकार होने लगी। भयानक शोर और भी समीप आ रहा था जिसकी एक-एक आवाज़

जमे हुए अंधकार को पिघलाने की बजाय उस पर एक नये जमूद की अवस्था उत्पन्न कर रही थी। मानो बर्फ की शिलाओं की तरह जीवन गतिहीन हो जायगा? पर बर्फ की शिलायें भी तो हमेशा अपनी जगह पर कायम नहीं रहतीं। उसे ऐवालांश का ध्यान आया। इस ऐवालांश के नीचे शताब्दियों की चित्रकला दब जायगी। फिर कोई रिलीफ पार्टी आयगी और इस चित्र-कला के नमूनों को बड़ी मेहनत से बाहर निकालेगी और लोग कहेंगे चित्रकला ज़िन्दा है। चित्रकला कैसे मर सकती है? पर वे इस चित्रकार को भूल जायँगे जो आज रात मौत को अपने समीप आते महसूस कर रहा है। ये सुनील के शब्द हैं, दीदी! जब तुम उसका पत्र पढ़ोगी तो तुम्हारी आत्मा में कंपकंपी पैदा हो जायगी।"

निक्की कह उठी—"मैं तो नीचे चलती हूँ। ये बातें तो कभी खत्म ही न होंगी।"

निक्की ज़ीने की ओर भाग गयी। मंझली और दीदी न जाने क्या सोच कर वहीं बैठी रहीं। कबूतर न जाने किधर को निकल गये थे। वे हैरान थीं कि भाई साहब ने अपने महमानों को इतने लम्बे सफर का हुक्म कैसे दे दिया।

अचानक नीचे से शोर उठा। दोनों बहनें नीचे भाग-गयीं। उस समय उन्हें एक क्षण के लिए भी पीछे मुड़ कर देखने का ख्याल न आया।

निक्की घबड़ा कर चिल्ला रही थी—"दीदी!—मंझली! कुछ हो गया और माँ अब तक नहीं आईं।"

हायरी मां! मंझली ने चीख मारी।

"माँ"—एक चीख के साथ दीदी धड़ाम से सोफे पर गिर गयी।

नीचे सड़क पर हजूम जमा था। दो तीन बार तीनों बहिनों ने हौसला करके बालकोनी के समीप जाकर हजूम पर निगाह

डाली। बहुत से लोग भागे आ रहे थे। शोर बराबर उभर रहा था। किसी को मानवता पर विश्वास न था। जैसे मानव की समूची महानता खोई जा चुकी हो।

आशुतोष रोड के दूसरे सिरे पर दूसरा हजूम जमा था और वह आहिस्ता-आहिस्ता इधर को सरक रहा था। इधर के लोग उधर को सरक रहे थे। मालूम होता था कि दो पहाड़ आपस मे टकराने का पक्का इरादा कर चुके हैं।

भाई साहब भी हड़बड़ाते हुए नीचे उतर आये और घबरा कर बोले—"जाओ, बदनीयत कबूतरो, मेरी बला से। अब तुम कहीं भी उतर पड़ो। कोई तो तुम्हे बाजरा खिलायगा ही।"

तीनों बहने बालकोनी से नीचे का दृश्य देखने लगीं।

देखते ही देखते फौजी लारी आई जिस पर मशीनगने लगी हुई थीं। पहले आँसू लाने वाली गैस छोड़ी गई। पर हजूम की दहशत कम न हुई।

लोग लारी पर हमला करने की नीयत से उधर की ओर लपके। मालूम होता था कि आज हजूम और हकूमत मे बहुत बड़ी झड़प होने वाली है। दूसरी ओर का हजूम बड़ी तेज़ी से बढ़ा चला आता था।

दनादन गोलियाँ दाग़ी जाने की आवाजें आने लगीं।

हजूम फटने लगा।

निक्की की जबान न हिली। यद्यपि वह कहना चाहती थी कि माँ की ओर से मेरा माथा ठनक रहा है।

मंझली कहना चाहती थी कि आखिर रुके काम कब तक रुके पड़े रहेगे।

दीदी ने आह भर कर कहा—"जिन्हे उनके पड़ोसी क़त्ल न कर सके उन्हे गोलियों ने ठण्डा कर दिया।"

निक्की, संझली और दीदी खामोश थीं। क़तल के सौ दिन और अमन का एक दिन—दोनों में कुछ-कुछ बराबर तोल कायम हो रहा था।

लाल धरती

कोई रंग पीड़ित दृष्टि की तरह खामोश और फरियादी होता है। कोई रंग सुन्दरता की तरह कुछ कहता हुआ और प्रशंसा का इच्छुक दिखाई देता है। कोई रंग मचलता हुआ हमें किसी ज़िद्दी बच्चे की याद दिला जाता है, और किसी को देखकर मस्ती या ऊंघ-सी छा जाती है...लारी के ड्राइवर ने नदी पार करते हुए कहा—"अब हम आन्ध्र देश मे दाखिल हो रहे हैं, बाबूजी!"

मैंने चारों ओर फैली हुई लाल धरती की ओर देखते हुए कहा—"आन्ध्र देश की लाल धरती क्या कह रही है?"

आंखें बन्द कर मैंने अपने हृदय में झाँका। वहां हरा रंग लहलहा रहा था। अपने मस्तिष्क से इसका आशय समझने की मैंने तनिक भी आवश्यकता न समझी और आँखें खोल कर लाल रंग का अवलोकन आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मैंने अनुभव किया कि यह रंग बहुत बलवान है और मेरा अपना रंग इसके सम्मुख टिक न सकेगा।

ड्राइवर ने अर्थपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। ऐसा नज़र आता था कि उसने लाल धरती के भेद स्वयं उसके मुख से सुन लिये हैं और अब उसके लिए यह कठिन हो रहा है कि इन्हे छिपा कर रख सके।

लारी भागी जा रही थी। लाल धूल उड़-उड़ कर ड्राइवर के गालों पर अपना रंग चढ़ा चुकी थी। मैंने अपने गालों पर हाथ फेरा। यह धूल वहां भी आ जमी थी। मैंने सोचा कि मेरे चेहरे की मैलखोरी पर सुर्ख रंग चढ़ गया होगा और वह बहुत बुरा तो न लगता होगा।

"पहले यह सारा ज़िला बिहार-उड़ीसा मे था, बाबूजी ?"

"और अब ?"

"अब नक्शा बदल गया है, बाबूजी !"

"नक्शा बदल गया है ?"

"जी हां। जब से उड़ीसा अलग प्रान्त बन गया है, इस ज़िले के तैलुगू बोलने वाले हिस्से आन्ध्र देश को मिल गये हैं।"

"बहुत खूब।"

"पर हम खुश नहीं हैं,बाबूजी। सरकार ने अभी तक आन्ध्र देश को अलग प्रान्त बनाना स्वीकार नहीं किया।"

"पर कांग्रेस तो कभी की यह प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है कि भाषा की महत्ता को मान लिया जाय। प्रत्येक बड़ी भाषा का अपना प्रान्त हो ताकि प्रत्येक भाषा के साहित्य का पालन-पोषण किया जा सके, प्रत्येक संस्कृति अपने-अपने वातावरण मे स्वतन्त्र होकर फूले-फले।"

"जी हां। कांग्रेस ने तो यही कहा है कि आन्ध्र देश का अलग प्रान्त बना दिया जाय। पर सरकार नहीं मानती।"

"सरकार क्यों नहीं मानती ? मद्रास में तो अब कांग्रेस-मन्त्रिमंडल स्थापित हो चुका है और इसके प्रधान श्री राज-गोपालाचार्य बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हैं। वह यह कार्य अवश्य कर सकते हैं।"

"पर इसका हुक्म तो लन्दन से आना चाहिए, बाबूजी !"

"लन्दन से ?"

"जी हां···और अगर यह हुक्म न आया तो हम बड़ी से बड़ी कुरबानी देंगे। अपना लहू बहाने में भी संकोच न करेंगे।"

"लहू बहा दोगे अपना! पहले ही यह जमीन क्या कम लाल है?"

ड्राइवर ने फिर अर्थपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसकी आंखों में नया रंग झांक रहा था। वह नया आदमी मालूम होता था।

धरती लाल थी। कभी गहरा बादामी रंग जोर पकड़ लेता। फिर यह सिन्दूरी बन जाता. सिन्दूरी रंग गुलानारी में बदल जाता।

"लाल रंग मुझे झंझोड़ रहा था। मेरे लहू की गति तेज हो चुकी थी। कई बड़े-छोटे पुलों और नन्हीं-नन्हीं पुलियों को फांदते हुए लारी विजयनगरम् के समीप जा पहुँची। मन्दिरों के बड़े-बड़े कलश दिखाई देने लगे। इस भागा-दौड़ी में हमें विजया-नगरम् अपनी ओर भागता हुआ नजर आ रहा था। मानों हमारी लारी स्थिर थी।

नगर में प्रवेश करते ही सड़क त्रिवेणी की भांति तीन तरफ दौड़ी जाती थी। दो सड़कों के संगम पर भीमराव का मकान था। ड्राइवर उन्हें पहचानता था। उनके घर के सामने मुझे उतारते हुए उसने एक मित्र की आंखों से मेरी ओर देखा। "आन्ध्र देश की लाल जमीन क्या कह रही है?" मैंने कहा। वह मुसकराया। लारी आगे बढ़ गयी।

मैंने आवाज दी। भीमराव बाहर निकले। वह एक अधेड़ उम्र के आदमी थे। चेहरे पर शीतला माई का आटोग्राफ नजर आ रहा था। शीतला के बड़े-बड़े दाग। तोंद की ओर ध्यान गया तो मैं बड़ी मुश्किल से हंसी को रोक सका। हमारे स्कूल में ऐसा हेडमास्टर कभी रोब कायम न रख सकता।

परिचय-पत्र को पढ़ते ही वह मुझे भीतर ले गये। बोले—"आपने बहुत अच्छा किया कि इस सामान्य व्यक्ति के यहां चले आये। इस पत्र की भी कुछ आवश्यकता न थी ?"

"आन्ध्र देश की बहुत प्रशसा सुनी थी," मैंने मुसकरा कर कहा, "बहुत दिनो से इधर आना चाहता था।"

"आप शौक से रहिये।"

मुझे एक अलग कमरा मिल गया। फर्श पर लाल कालीन बिछा हुआ था। नंगे पांव चलने से सदैव यह अनुभव होता कि आन्ध्र देश की लाल ज़मीन मेरे पैरों से छू रही है। भीतर से कमरे का द्वार बन्द करके कभी-कभी मैं कालीन पर लेट जाता और ध्यान से अपने हृदय की धड़कनें सुनने लगता। अच्छा शुगल था। लाल रंग क्या कह रहा है ?—यह प्रश्न बार-बार ज़बान तक आता। पर ओंठ बन्द रहते।

भीमराव के मकान पर कांग्रेसी तिरंगा लहरा रहा था... हरा और श्वेत और लाल...इस झंडे का आशय मेरे मन में उजागर हो उठता। हृदय ही तो था, बीच-बीच में यह कहने लगता कि इस झण्डे का लाल रंग आन्ध्र देश का परिचायक है, और यह विचार आते ही मुझे एक अकथनीय आनन्द प्राप्त होता। जहां श्वेत रंग ख़त्म होकर लाल रंग शुरू होता था, वहीं मेरी नज़र जम जाती और उस लारी ड्राइवर के शब्द मेरे कानों में गूँज उठते—"अब हम आन्ध्र देश में दाखिल हो रहे हैं, बाबू जी !"

मेरे कमरे में अधिक फर्नीचर नहीं था। एक ओर शृंगार-मेज पड़ा था। दो कुर्सियां, एक तिपाई, और एक तरफ एक तख्त जिस पर मुझे सोना होता था। बिस्तर पर दिन के समय खादी की दूधिया सफेद चादर बिछा दी जाती थी। अब सोचता हूँ कि उस शृंगार-मेज़ का गोल दर्पण वहां न होता तो वे कुछ सप्ताह

इतने मनोरंजक न हो पाते। मेरे भावों का रंग पकी हुई ईंटों की तरह लाल हो चला था। यह रंग मेरे चेहरे पर भी थिरक उठता।

मेरे कमरे की दायीं खिड़की मैदान की तरफ खुलती थी। वहां हरी घास ऊँघती हुई नजर आती। पानी न मिलने पर यह घास पीली हो सकती थी—लाल नहीं।

दिन चढ़ता और पता ही न चलता कि कैसे बीत गया। विजयानगरम् मेरे लिए नया था। हर आँख में कोई न कोई शताब्दियों का संगृहीत रंग थिरक उठता। इस से पहले कहीं भूत और वर्तमान को यों आलिंगन करते नहीं देखा था। रात्रि का अन्त होता तो प्रभात सूर्य का तमतमाता हुआ तिलक लगाये उपस्थित हो जाता। उसे देखकर मुझे कृष्णावेणी के माथे के 'बोट्टु' की याद आने लगती।

पीछे से आकर कृष्णावेणी मेरी आंखे बन्द कर लेती। फिर खिलखिला कर हंस पड़ती। और ज्यों ही पीछे हटती, मेरी आंखें उसके माथे की ओर लपकतीं। कुमकुम का लाल 'बोट्टु' पन्द्रह केंडल की बजाय पचास केंडल का कुमकुमा बनकर उसके माथे को प्रकाशित करता दिखाई देता। यत्न करने पर भी मैं कभी उसे उस दशा में न देख सका जब कि स्नान के पश्चात् यह 'बोट्टु' धुल कर उतर चुका हो। फिर मैंने यह यत्न छोड़ दिया। बस ठीक है। यह कुमकुमा सदैव प्रकाशित रहे। दिन हो चाहे रात। कुमकुम का लाल 'बोट्टु'!

अन्नपूर्णा और कृष्णावेणी दोनों बहनें थीं। वेणी पूर्णा से दो वर्ष छोटी थी। दोनों घर पर पढ़ती थीं। बड़ी बहन संगीत की आरम्भिक मंज़िलों को तै करके इसकी गहराइयों में पहुँच चुकी थी। छोटी बहन केवल बहन की वीणा देख छोड़ती थी, उसका गान सुन लेती थी, और यदि इन स्वरों ने उसकी प्रतिभा

का कोई सोया हुआ रंग जगा दिया तो उसने थोड़ी बहुत तुक-बन्दी कर ली। नही तो किसकी वीणा, कौन अन्नपूर्णा, वह अपनी पुस्तकों मे उलझी रहती !

भीमराव अपनी पुत्रियों की प्रशंसा मेरे सामने भी ले बैठते। दोनों के लाल बोट्टु मेरे मन में तैरने लगते और मुझे अनुभव होता कि मेरे मुंह में पान की पीक और भी लाल हो गयी है। मेरे भाव छालिया के नन्हें बारीक रेजे वन जाते जो पान चबाते समय फुस से दांतों की दरजों मे से गुजर जाते हैं।

"ये तो अपने आदमी हैं, पुत्रियो !" भीमराव कहते, "इनसे खूब बातें करो—इनकी कहानियां सुनो। देश-देश का पानी पी रखा है इन्होंने—हां, देश-देश का !" अपनी यह प्रशंसा सुन कर मेरे हर मसाम के कान लग जाते, मन में एक अजीब सा तनाव पैदा होता, और एक गुदगुदी-सी होने लगती। यह आन्ध्र देश की लाल ज़मीन की निष्कपटता थी—एक प्रगतिशील निष्कपटता।

"यह कृष्णावेणी तो निरी गिलहरी है, राव महोदय !" एक दिन मैंने दोनों बहनों की उपस्थिति मे कहा, "और यह अच्छा ही है।"

"खूब ! खूब ! इधर से उधर; उधर से इधर। निचली तो बैठ ही नहीं सकती, गिलहरी ही तो है।"

कृष्णावेणी हंसी नहीं। आखिर इसमें गिलहरी की क्या बात है ? कदाचित् हमारे सम्मानित अतिथि के देश में कन्याएं गिलहरियां नहीं होतीं। वे लज्जा से सिमटी रहती होंगी। पर देश-देश में, धरती-धरती मे अन्तर होता है न !"

भीमराव बोले—"यह आन्ध्र देश है।"

अन्नपूर्णा ने उनकी बात काटते हुए कहा—"और यहां की कन्याएं स्वतन्त्र कविताएं बन गयी हैं।"

कृष्णावेणी की आंखों मे एक बिजली-सी चमक गई।

बोली—'जी हां, स्वतन्त्र कविताएं।"

और मैंने अनुभव किया कि कम से कम कृष्णावेणी अवश्य एक स्वतन्त्र कविता है। उसे न छन्द चाहिए, न तुकान्त।

अन्नपूर्णा ने कृष्णावेणी की बॉहों पर बाहे डाल दीं और बोली—'वेणी, चलो आज विश्वेश्वरी के यहाँ चले कल तो आई थी इधर। आज उसने शक्ल ही नहीं दिखाई।"

कृष्णावेणी ने अपना छोटा-सा सुन्दर सिर हिला दिया और पंखे की डण्डी को कालीन पर फेरते हुए बोली—"अन्नपूर्णा, मैं बाहर नहीं जा सकती।"

"क्यों नहीं जा सकती बाहर ?" अन्नपूर्णा ने हैरान होकर पूछा।

वेणी ने कोई उत्तर न दिया। उसने अन्नपूर्णा के गले में बाहे डाल दीं। बोली—"दीदी!—" और इसके पश्चात् उसके कान में कुछ कह गयी। अन्नपूर्णा उछल पडी। बोली—"सच ?"

वेणी ने हॉ में सिर हिला दिया। मैं कुछ न समझ सका। मेरा हृदय घायल पक्षी की तरह फड़फड़ाया। वेणी उठ कर खड़ी हो गई और स्नानागार की ओर चल दी। अन्नपूर्णा ने ताली बजाई और घड़ी की तरफ देखा। उस समय सवेरे के दस बजे थे। वह भी अपनी खड़ाऊं पर घूम गई और सामने रसोई के द्वार पर जा खड़ी हुई, जहाँ अम्मा बैठी जमीकन्द काट रही थी।

अन्नपूर्णा ने कहा—अम्मा!

अम्मा ने सिर हिला दिया। अन्नपूर्णा उसके समीप पहुँच कर झुक गई और उसके कान मे कुछ कह दिया। अम्मा का मुंह खुले का खुला रह गया। उसके गालों पर एक तमतमाती हुई लाली उभरी। फिर एक मुसकान नाचती हुई उसके चौड़े-चकले चेहरे पर चौगान खेलने लगी। अम्मा ने चाकू और

जमीकन्द एक तरफ रख दिया और उठ कर खड़ी हो गई। बोली—

'पन्तलू गारू ! (पण्डित जी)'

मेरे लिए यह सब एक पहेली से बढ़ कर था। मेरा ख्याल था कि भीमराव इससे कोरे हैं। वे उठ कर अपनी पत्नी के पास चले गये। मुझे यों अनुभव हुआ कि मैं रेलगाड़ी में बैठा हूं जो दनदनाती हुई एक सुरंग में से गुजर रही है—घोर अंधियारा छा गया...कोई स्त्रियों की बात होगी, यह सोचते ही सुरंग खत्म हो गई।

कृष्णावेणी ने पहले कभी वह हरे रंग की हलकी घघरी न पहनी थी। घघरी का रंग गहरा हरा था और अंगिया का फीका हरा। उसकी आँखों की झीलों से भी हरे रंग का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। यह रंग क्या कह रहा है ? यह प्रश्न मुझे उससे अवश्य करना चाहिए था। उसके रक्त में किस ने स्वर्ण पिघला कर डाल दिया था ? यह स्वर्ण ही था जो उसके गालों पर दमक रहा था। यह स्वर्ण क्या कह रहा था ? माँग क्या थी, पूरी-पूरी पगडण्डी थी। क्या मजाल कोई लट फिसल जाय, कोई बाल सरक जाय। कंघी-चोटी की कला यौवन के साथ-साथ कमाल को पहुँचती है। नाक की सीध रख कर सिर के बीचोबीच माँग काढ़ना अन्नपूर्णा को सिरे से ना-पसन्द था। पर नहीं, कृष्णा-वेणी की सीधी मांग अन्नपूर्णा की टेढ़ी माँग से कहीं सुन्दर लगती थी। उस समय दोनों बहनें मेरे समीप बैठी होतीं तो मैं अपना मत छोटी बहन के ही पक्ष में देता।

कोई एक घण्टे बाद पूरे ग्यारह बजे भीतर से वीणा के स्वर सुनाई दिये। मालूम होता था कि मुहल्ले भर की वीणा बजाने वाली सखियाँ स्वर में स्वर मिला कर कोई राग साध रही हैं, ऐसी भी क्या खुशी थी ?

बहुत-सी सखियाँ और कन्याएं जिनका ठहाका और हंसी-मजाक हवा को चीरे डालता था, आखिर किस उत्सव पर बुलाई गई थीं ? मुझसे न रहा गया। बायीं खिड़की का परदा जरा सरका कर मैंने आंगन की ओर नजर डाली तो क्या देखता हूँ कि कृष्णावेणी सामने वाले कमरे में पीली धोती पहने बैठी है और आरती उतारी जा रही है। थाल में कुमकुम नजर आ रहा था। पर इसमें कोई चौमुखा दिया नहीं जलाया गया था। कृष्णावेणी ने आँखें झुका रखी थीं। इतनी भी क्या लाज थी ? यह क्या कोई देवी बनने का उपाय था ?

कृष्णावेणी की माँ को बधाइयाँ मिल रही थीं। अन्नपूर्णा की वीणा सबसे अधिक चमक रही था। रंग-रंग की साड़ियाँ मेरे मन में खलत-मलत हो रही थीं। अभी एक बच्ची रोने लगी। उसे एक केला मिल गया। उधर एक लड़की अपने भाई के मुँह में गुड़ और तिलों का लड्डू डालने लगी कि एक बालक उचक कर उसे छीन ले गया। कुछ परवाह नहीं। लड्डुओं की क्या कमी है ? भाई खुश रहे, जीता रहे . . . मेरी प्रकृति के किसी रहस्यमय कोने में कोई तानसेन जाग उठा जिसे अन्नपूर्णा ने अपने गीत की लहरों पर उठा लिया। यह कैसा गीत था ? कदाचित् यह दूध और मधु का गीत था। दूध दुहते समय जो आवाज पैदा होती है, कुछ ऐसी ही आवाज अन्नपूर्णा की वीणा पर पैदा हुई थी।

"अब तुम गाओ, विश्वेश्वरी !"

"तुम से अच्छा तो नहीं गा सकूंगी, अन्नपूर्णा ! अच्छा, कौन गीत गाऊं ?"

"वही जो तुमने उस दिन गाया था, जब वेणी की तरह मैंने पीली धोती पहनी थी और इसी तरह आँगन में—सौभाग्यशाली आंगन में स्त्रियाँ और कन्याएं इकट्ठी हुई थीं—वही मधु-

मक्खियों का गीत।"

विश्वेश्वरी ने गीत आरम्भ किया। आन्ध्र-देश की मधु-मक्खियां क्या कह रही हैं? यह प्रश्न मेरे मन की चारदीवारी ही में बन्द रहा। वीणा के स्वर आगे बढ़ते गये। यह कोई साधारण गीत न था। शताब्दियों के स्त्री-स्वभाव की अपेक्षाकृत श्रेष्ठता का जटिल भाव था। अभी तो दोपहर थी। पर प्रत्येक स्त्री और कन्या के माथे पर एक-एक चाँद नज़र आ रहा था—कुमकुम के सुर्ख़ बोट्टु।

कृष्णावेणी की आँखे ऊपर न उठीं। क्या यह वही कन्या थी जो अब तक कभी अपनी चौकड़ी न भूली थी? उसकी बालियां स्थिर थीं। बालियों के नगीने चुप थे। पहले तो कभी लज्जा और सुकुमारता जुड़वां बहनों के रूप मे नज़र न आई थीं। पर वह कोई कबूतरी तो न थी जिसे पहली बार अण्डे सेने का अवसर मिला हो।

ठहाका और हंसी-मज़ाक ख़ामोशी में बदलते गये। गीत भी काफी हो चुके थे। वीणा के तार थक गये थे। कृष्णावेणी की मां और बहन ने कुमकुम की थालियां उठा कर हर किसी के माथे पर फिर से बोट्टु लगा दिये। बल्कि यह कहना चाहिए कि पहले लगे हुए बोट्टु ही अधिक चमका दिये। ऐसा दिन तो बहुत शुभ था। हर किसी को पान-भेंट किया गया। नारियल और केले बांटे गये और यों सबको विदा दी गई। शताब्दियों से यों ही होता आया था। कुमकुम के लाल बोट्टु अनगिनत पीढ़ियों से कायम रहे थे। उनका रंग कभी फीका नहीं पड़ने दिया जायगा।

दूसरे दिन यह महफिल साँझ के समीप जमी। फिर तीसरे दिन भी साँझ ही को, चौथे दिन साँझ की बजाय सवेरे ही यह रौनक शुरू हो गई। इस बीच मुझे पता चल गया था कि

कृष्णावेणी रजस्वला हो गई है। मुझे आश्चर्य जरूर हुआ, क्योंकि इससे पहले हिन्दुस्तान मे कोई ऐसी प्रथा मेरे देखने मे नहीं आई थी।

भीमराव की बातों मे मीनाकारी का रंग पैदा हो गया था। बोले—"झूठी शर्म में आन्ध्र देश कोई विश्वास नहीं रखता। सच कहता हूँ मुझे तो हैरानी है यह सुन कर कि आपके यहाँ ऐसी कोई प्रथा नहीं मनाई जाती।"

"जी हाँ। हैरानी तो होनी ही चाहिए," मैंने बढ़ावा दिया।

"कितना अन्तर है धरती-धरती का।"

"यह तो प्रत्यक्ष है।"

"रजस्वला होने पर मानो कन्या की प्रकृति का आशीर्वाद मिलता है।"

"आपका दृष्टिकोण बिल्कुल ठीक है, राव महोदय! और ऐसे अवसर पर आनन्द मनाने से कभी नहीं चूकना चाहिये।"

"हमारे ये गीत आपको कैसे लगते हैं?"

"ये सब गीत, वीणा के ये स्वर आन्ध्र देश के शाश्वत बोल मालूम होते है।"

"आन्ध्र देश के शाश्वत बोल! हमारी यह प्रथा बहुत पुरातन है।"

"अवश्य पुरातन होगी।"

"पहले दिन जब कन्या को अपने रजस्वला होने का पता चलता है, वह किसी न किसी तरह तुरन्त माँ तक यह समाचार पहुँचा देती है। तीन दिन तक उसे हलदी के पानी में रंगी हुई धोती पहन कर अलग कमरे में बैठना होता है। कोई उसे स्पर्श नहीं करेगा। उसकी आरती भी दूर ही से उतारी जायगी।"

"आरती मे हमारे यहां जलता हुआ दीपक—चौमुखा दीपक

न भी हो तो चिन्ता नहीं--आवश्यक समझा जाता है। पर आप के यहाँ--"

"अन्तर तो होता ही है धरती-धरती का। हमारे यहां बस कुमकुम ही आवश्यक मान लिया गया है आरती के लिए।'

"लाल कुंकुम ?"

"कुमकुम सदैव ही सुर्ख होता है।"

मैंने मुसकरा कर आँखे झुका लीं। भीमराव ने अपनी बात जारी रखी-"खाने से भी रजस्वला को काफी परहेज़ करना होता है। लाल मिर्च और गरम मसाले उसके लिये वर्जित हैं। बैठे-बिठाये उसे खिचड़ी, दूध और कुछ फल मिल जाते हैं। खाये और पूरा आराम करे। यह आवश्यक है।"

"तीन दिन के पश्चात् क्या होता है ?" मैंने पूछा।

"कन्या स्नान करके पवित्र हो जाती है। उसकी वह पीली धोती धोबिन को उपहारस्वरूप दे दी जाती है। अब वह माता-पिता की हैसियत के अनुसार नये वस्त्र पहन कर बैठती है और यह चौथी अर्थात् अन्तिम आरती के समय उसके माथे पर बोट्टु लगा दिया जाता है।"

"बोट्टु के लिए कुंकुम न हो तो आन्ध्र देश का काम ही न चल सके, राव महोदय।"

'कुमकुम ? यह तो आवश्यक है।"

"बल्कि यह कहिये कि आन्ध्र देश और कुमकुम पर्यायवची शब्द हैं।"

"बस अब आपने ठीक समझ ली है बात।"

"मेरी प्रवृत्ति आरम्भ से हरे रंग की ओर रही है, राव महोदय !"

"हरे रंग की ओर ? पर लाल रंग निराली भाषा में बोलता

है कुमकुम का सन्देश आन्ध्र देश शताब्दियों से सुनता आया है।"

"रंगों का अध्ययन मैंने भी कर रखा है. राव महोदय। हरे रंग का अपना स्थान है। प्रत्येक हरी वस्तु शान्ति की ओर संकेत करती है। प्रकृति को कदाचित् यही रंग सबसे अधिक पसन्द है। जब तक धरती बंजर नहीं हो जाती, इसकी कोख से इस रंग के कारनामे सदैव हमारा ध्यान आकर्षित करते रहेगे। कांग्रेस ने बहुत अच्छा किया कि अपने झण्डे पर इस रंग को स्थान देने की बात भुलाई नहीं। श्वेत रग मेरे विचार मे पवित्रता का रग है। हमारे झण्डे पर इसीलिए यह रंग भी मौजूद है। और लाल रंग? मै समझता हू यह लहू का रंग है। अच्छे और स्वस्थ रंग। सद्य' प्रस्तुत, बलशाली जीवन का रंग ... हरा, श्वेत, लाल। खूब रंग चुने है। कांग्रेस ने यह झण्डा बनाने का काम आन्ध्र देश को सौंप दिया होता तो सारे झण्डे पर कुमकुम ही कुमकुम फैल जाता।"

"पर स्मरण रहे कि सुर्ख र ग का आशय समझने में आन्ध्र देश ने खूब कदम बढ़ाया है . ..कांग्रेस के बायें हाथ ने ज़ोर पकडा है, वह भी प्रत्यक्ष है, पिछले दिनों जब श्री सुभाषचन्द्र बसु काग्रेस प्रधान के चुनाव मे दोबारा खड़े हुए तो आन्ध्र देश के मत बहुत भारी संख्या में उन्ही को मिले थे। यद्यपि उनके मुकाबले पर खडे होने वाले डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया आन्ध्र देश के अपने नेता है। पर आप जानते है इन बातों मे लिहाज़दारी तो ठीक नही होती। समाजवाद और देश की स्वतन्त्रता हमारे दो बड़े आदर्श हैं। और आन्ध्र देश को पृथक प्रान्त होने का सम्मान प्राप्त हो जाय, इसके लिए हम अपनी जाने लडाने के लिए तैयार हैं।"

"पन्तलु गारू! (पण्डित जी)" बाहर से किसी ने आवाज़ दी।

भीमराव बाहर चले गए। मैं खिड़की में से उनकी ओर देखने लगा। यों लगा जैसे किसी के अदृश्य हाथ मेरे माथे पर कुमकुम का बोट्टु लगा रहे हैं। मैं झट वहां से हट गया और कमरे को अन्दर से बन्द करके मैंने बायीं खिड़की का परदा हौले-हौले एक कोने से सरकाया। सामने नयनाभिराम मजलिस नजर आ रही थी। कृष्णावेणी ने हलकी नीली अंगिया के साथ गहरी नीली साढ़ी पहन रखी थी। बालियों के नगीने सरदई थे। ऐसा मालूम होता था कि मेरे मन के बचे-खुचे हरे रंग ने इन नगीनों मे पनाह पा ली है।

अन्नपूर्णा ने वीणा पर मल्हार शुरू किया। उसकी अंगुलियां बहुत ठुमक-ठुमक कर चल रही थीं। पर इस राग से भी कृष्णा-वेणी की ऑखे ऊपर न उठीं। अन्नपूर्णा आकाश की ओर देख रही थी और कृष्णावेणी धरती की ओर ऑखे झुकाये बैठी थी। किसने छू दिया था अपने अदृश्य विद्रोही हाथ से इस कन्या को ?

"बहुत हो चुकी यह लाज वेणी !" अन्नपूर्णा बोली, मैं भी हुई थी रजस्वला तेरी तरह। मैंने तो पहले ही दिन के बाद मुसकराना शुरू कर दिया था, ऊपर, दाये-बायें, सामने देखना शुरू कर दिया था।"

"मैं तो अभी नहीं सताती किसी को।"

कृष्णावेणी के चेहरे पर हौले-हौले वही शोखी आती गई। अम्मा ने आगे बढ़कर कुमकुम उठाया और उसके बोट्टु को चमका दिया।

कृष्णावेणी अब कोई छुईमुई न थी। हर चेहरे की तरफ़ उसकी आंखें उठ जाती थीं। काली झीलों मे न जाने कितनी लहरें थिरक रही थीं......कृष्णावेणी की सुकोमल बांहे, जिन्हें देखकर हंस-ग्रीवा का भान हो आता था, ऊपर

उठीं और उसने सबको नमस्कार किया।

सब स्त्रियां और कन्याएं मुसकराईं। सबके लाल बोट्टु ताज़े कुमकुम-से चमका दिये गये। जाने क्या कह रही थी काजल की रेखाएं प्रत्येक आंख में? ..पान बटे—हरे पान जो अपने सीनों मे लाल रङ्ग छिपाये पड़े थे। केले बटे। नारियल बटे। सब उठकर खड़ी हो गईं. क्या लेकर रङ्गीन थीं ये साड़ियां? क्या लेकर लाल थी यह धरती?—इसकी रेखाएं, इसकी गोलाइया, ओठ, गाल, आंखें, वक्षस्थल! कौन कलाकार इनकी रचना करता था?... ..यह तो बहुत आवश्यक था। अनगिनत शताब्दियों से, हरी, श्वेत और लाल—शताब्दियों से यही होता आया था।

सब स्त्रियां चली गईं। सब कन्याये भी अपने-अपने घरों को भाग गईं। अब केवल कृष्णावेणी और अन्नपूर्णा रह गईं। अम्मा रसोई में जा चुकी थी।

'अच्छा, पूर्णा, एक बात बताओगी?'

'पूछो-पूछो।'

'रजस्वला होकर भी मैं इतनी दुर्बल नहीं हुई। भला कैसे?'

'कैसे? यही होता आया है, बहन, आदिकाल से। मैं कौन दुर्बल हो गई थी? बल्कि रंग निखर जाता है इससे।'

फिर दोनों बहने उठकर अन्दर चली गईं। मैं अपने लाल कालीन पर लेट गया। मेरी आत्मा की गहराइयों से एक विचार उठा और बाहर से आने वाले हवा के झोंके से टकरा गया।

मेरे मन मे कांग्रेस का झण्डा लहरा रहा था। हरा, श्वेत और लाल—इस झण्डे की आयु बहुत अधिक तो न थी। पर ये रग तो पुराने थे। हिमालय के समवयस्क रंग, ब्रह्मपुत्र और गोदावरी के समवयस्क रंग। होगा इन रंगों का अपना-अपना

आशय। पर मैं तो उस आशय पर मुग्ध था जो स्वयं हिन्दुस्तान ने इन रंगों से सम्बद्ध कर दिया था...और मेरी आंखों मे वही लारी फिरने लगी जिस पर सवार होकर मैं भीमराव के मकान तक पहुंचा था।

दाये-वायें आमने-सामने, जहां तक मेरे मन की पहुँच थी, लाल धरती लेटी हुई थी। एक रजस्वला कन्या की तरह वह आराम कर रही थी। वह समय मुझे समीप आता दिखाई दिया जब उसकी कोख हरी होगी और कोई ऐसा आदमी पैदा होगा जो ऊँची आवाज़ में पुकार उठेगा—हलों की जय! अब इन खेतों मे गुलाम नहीं उगेंगे। यह लाल धरती है!

राजधानी को प्रणाम

नागफनी के पौधों के समीप एक कोठे के सामने शंकर बाबा अपनी कमजोर आँखों से सड़क की ओर देख रहा था या यह कहिये कि देखने का प्रयास कर रहा था। आज शहर की ओर से बहुतसी लारियाँ पहियों की दनदनाती आवाज़ को हवा मे उछालती हुई गुजर रही थीं। इतनी लारियों का क्या मतलब है? यह प्रश्न उसे परेशान कर रहा था। अचानक उसे किसी के पैरों की चाप सुनाई दी।

"कौन?—दीपचन्द?" शंकर बाबा ने तेजी से सिर घुमाते हुए पूछ लिया। वह तीन दिन से दीपचन्द का इन्तजार कर रहा था।

"पालागन, बाबा!" आने वाले ने मुख पर एक खिली हुई-सी मुसकान लाते हुए झुककर कहा। बाबा की नीम-अंधी आँखों मे अब इतनी शक्ति नहीं थी कि किसी के चेहरे की सही रूप-रेखा देख सके।

दीपचन्द की आवाज़ पहचान कर बाबा को बहुत खुशी हुई, क्योंकि तीन दिन से वह उसी के इन्तज़ार मे सड़क के समीप चला आता था। न जाने क्या सोचकर वह कह उठा—"मैं तो जानूं शहर गाँव की ओर बढ़ रहा है।"

दीपचन्द शंकर बाबा की हाँ में हाँ मिलाने को तैयार न था। वह तो अभी-अभी शहर से आ रहा था और ऐसी कोई बात उसने किसी के मुख से नहीं सुनी थी। वह बोला—"हम भी इन्सान है, ढोर तो नहीं कि कोई जिधर चाहे हाँक दे।"

शंकर बाबा को हंसी आ गई जिसमे घृणा की अधिक मिलावट थी। वह कहना चाहता था कि शहर वाले जो चाहें कर गुजरें। क्योंकि वे अन्दर ही अन्दर खोटे होते है। पर अपने मन पर काबू पाकर वह कह उठा—"तुम सच कहते हो, दीपचन्द! हम ढोर तो नहीं, हमारे भी भगवान हैं।"

सड़क से बराबर लारियाँ गुजर रही थीं और उनके पहियों के शोर मे कान के परदे फाड़ने वाली हार्न की आवाज़ गूँज उठती थी। वह कहना चाहता था कि दाल मे कुछ न कुछ काला अवश्य है। शहर से भगवान ही बचाये हमारे गाँव को, नहीं तो यह झूठा, दगाबाज, मक्कार शहर जो भी कर गुजरे थोड़ा है। गाँव को चाहिये कि अपनी जान तक लड़ा दे और अपनी धरती से गज बराबर ज़मीन भी न दे। सब धोखा है धोखा। यह बात तो भगवान को भी न भायेगी कि जिस धरती पर अन्न उग सकता है, वहाँ अन्न उगाने पर रोक लगा दी जाय। यह तो धरती का अपमान है। धरती यह अपमान नहीं सह सकती। सोच-सोच कर वह कह उठा—"यह सब धर्म की कमी के कारण हो रहा है, दीपचन्द!"

"धर्म बिना निर्वाण कहाँ?" दीपचन्द ने जैसे किसी गीत का प्रमाण देते हुए कहा। वह मन ही मन में झेंप-सा गया। अभी अगले ही दिन शहर मे न जाने कौन कह रहा था कि आज इन्सान निर्वाण या मुक्ति की खोज के स्थान पर स्वतंत्रता के लिए अपनी जान कुर्बान कर रहा है। उसके मस्तिष्क को झटका-सा लगा। उसके हृदय में यह विचार जंगली मधुमक्खी

की तरह भिनभिनाने लगा कि सचमुच धर्म के बिना स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। पर झट उसे याद आया कि अब तो युद्ध भी समाप्त हो चुका है, स्वतंत्रता को तो अब आ ही जाना चाहिये। बहुत प्रतीक्षा हो ली। उसने दूर सड़क की तरफ आँखें घुमाईं। जैसे अभी-अभी कोई मोटर लारी रुक जायगी और लारी से उतर कर स्वतंत्रता की देवी सब से पहले इसी कच्चे कोठे की ओर चल पड़ेगी। उस समय उसे नागफनी के पौधों पर बेहद झुंझलाहट हुई। स्वतंत्रता की देवी के स्वागत के लिए तो कोई नया ही उपाय होना चाहिए।

मिट्टी के चबूतरे पर बैठे-बैठे शकर बाबा बचपन की याद मे खो गया, जब अभी इधर से यह सड़क नहीं निकली थी। खेत से गांव काफी दूर था और उसका पिता खुली हवा में रहना अधिक पसन्द करता था। प्रति वर्ष इस कोठे की छत और दीवारों पर लिपाई-पुताई की जाती थी। उस समय उसे ऐसे ही दूसरे कोठों का ध्यान आया, जो उससे पहले तैयार किये गये थे और सड़क के बीच में आ जाने के कारण गिरा दिये गये थे। अब तो केवल तीन-चार कोठे ही थे, जो सड़क के किनारे या इससे थोड़ा हट कर खड़े थे। सड़क ने अनेक खेतों को दो दो हिस्सों मे बाँट दिया था। खैर यह तो पुरानी कहानी थी। नई कहानी तो इतनी ही थी कि अब सड़क के किनारे किसी को नया कोठा बनाने की आज्ञा नहीं। लगे हाथ यह हुक्म भी सुना दिया गया था कि कोई सड़क के किनारे अपने कोठे को लिपाई-पुताई न करे। इसका मतलब यही तो था कि ये कोठे गिरते चले जांय।

दीपचन्द न जाने क्या सोच कर कोठे में झाड़ू देने लगा। शायद उसके मन के किसी कोने में स्वतन्त्रता की देवी का चित्र उभर रहा था। बार-बार उसकी आँखें सड़क की ओर घूम

जातीं जैसे उसे विश्वास आ रहा हो कि स्वतन्त्रता की देवी ने जेब से पैसे देकर लारी का टिकट लिया होगा और उसे ठीक पड़ाव पर उतरने की बात नहीं भूलेगी। युद्ध तो कभी का समाप्त हो चुका, उसने सोचा। अब तो बहुत से फौजी भी बर्खास्त कर दिये गये। तोप बन्दूक संभालने के स्थान पर ये लोग फिर से हल चलायेंगे। ये धरती की विजय है। जिन लोगों की धड़ाधड़ गिरफ्तारियां की गई थीं वे सब लम्बी क़ैदें काट कर बाहर आ चुके है। हाँ, जिनके बेटे युद्ध में काम आये या स्वतंत्रता की लड़ाई में पुलिस की गोलियों का निशाना बन गये, वे माताएं अभी तक उदास बैठी है। वह शंकर बाबा से कहना चाहता था कि पतझड़ के बाद दोबारा वसन्त आता है। 'फागुन आयो रंग भर्‌यो'—वह गुनगुनाने लगा। वह चाहता था कि फागुन की प्रशंसा में बातों के पुल बांध दे। कैसी सुहानी ऋतु है। न सरदी न गरमी। हर साल यह ऋतु आती है। 'फागुन आयो रंग भर्‌यो'...'फागुन का रस तो गांव में है। शहर वाले फागुन को नहीं पहचानते। इसीलिए तो स्वतन्त्रता की देवी को शहर से पहले गॉव में आना चाहिए। उसे देखते ही उदास माताओं के मुख पर फिर से मुसकान नाच उठेगी।

शंकर बाबा चबूतरे से उठ कर कोठे के अन्दर चला आया। आँखें फैला-फैला कर वह छत की ओर देखने लगा। वह चाहता था कि दीपचन्द से कहे, जरा लगे हाथ छत के जाले भी उतार दो। कोठे के अन्दर धूल का बादल उमड़ आया था। वह बोल उठा—"हौले-हौले, दीपचन्द! बेटा, हौले-हौले हाथ चलाओ। धूल और फेफड़ों का बैर चला आता है।"

दीपचन्द से भी यह बात छिपी न थी। पर वह यह बात मानने के लिए तैयार न हुआ। बोला—"धूल से तो शहर वाले ही डरते हैं, बाबा! गॉव वाले तो धूल में जन्म लेते हैं, धूल में

ही एक दिन दम तोड़ देते है।"

कहने को तो दीपचन्द ने यह बात कह दी। पर वह झेंप-सा गया। जैसे उसे यह विचार आ गया हो कि यदि यह बात स्वतन्त्रता की देवी के कान मे पड़ जाय तो वह अपना संकल्प बदल सकती है, और क्रोध मे आकर गाँव वालों के स्वागत को ठुकराने का फैसला करले तो समझिये कि बना-बनाया खेल सदा के लिये बिगड गया। एक हाथ से गिरेबान का बटन बंद करते हुए उसने झाड़ू धीमा कर दिया। वह जानता था कि खुले हुए गिरेबान से तो नये युग को नमस्कार करना न करना एक समान होता है।

कोठे के एक कोने से लम्बा-सा बाँस उठा कर बाबा ने उसके सिरे पर अपना अगोछा बाँध दिया। वह हौले-हौले इस झाड़न को छत पर घुमाने लगा। जैसे माँ अपने नन्हे की पीठ पर थपकियाँ दे रही हो। वह चाहता था कि कहीं एक जाला भी न रह जाय। उसे अपनी कमजोर आँखों पर क्रोध आ रहा था। वह देखी अनदेखी जगह पर झाडन घुमाये जा रहा था। जैसे कोई किसी को गुस्सा थूकने पर राजी करते हुए यह दलील दे रहा हो कि मैंने कोई कसूर किया हो तो भी क्षमा कर दो, और न किया हो तो भी।

दीपचन्द झाड़ू दे चुका तो उसने बाबा के हाथ से झाड़न लेते हुए कहा—"मेरे होते तुम कष्ट करो, बाबा! यह तो मुझे शोभा नह देता।"

बहुत से जाले तो झाड़न से लिपट चुके थे। रहे सहे जाले भी झाड़न से लिपटते चले गये। झाड़न का जालों वाला सिरा नीचे लाया गया तो दीपचन्द के जी में आया कि बाबा से कहे, झाड़न क्या है, यह तो किसी मैली-सी भेड़ के शरीर की याद दिला रहा है जिसे सौ-सौ आँधियों की धूल ने मैला कर रखा

हो। उसकी कल्पना को झटका-सा लगा। स्वतन्त्रता की देवी तो साफ सुथरी चीज़ों को पसन्द करती होगी। वह चाहता था कि झाड़न को झट कहीं दूर फेंक दे।

धोती को कमर के गिर्द कस कर और कुदाल उठाकर वह चबूतरे से नीचे रखे हुए मिट्टी के ढेर पर खड़ा हो गया और बीच में एक गड्ढा-सा बनाने लगा ताकि जब इस पर पानी डाला जाय तो व्यर्थ बाहर न निकल जाय।

कोठे से सटा हुआ कुआँ था। डोल भर-भर कर वह मिट्टी परे फेंकने लगा। बाबा बोला—

"कहो तो मैं पानी निकालूं, दीपचन्द ?"

"तुम्हारा ही आसरा है, बाबा!" दीपचन्द ने कुएं में डोल फेंकते हुए कहा, कोठे की दीवारें खराब हो रही हैं। दीवारों की सेवा किये बिना तो ठीक नही होगा।"

"मिट्टी में मिलाने के लिये मैंने लीद तैयार कर रखी है। कल तुम न आये तो मैंने सोचा, खाली बैठना तो ठीक नहीं," बाबा ने बाहें फैला कर कहा।

हाथ से मल-मल कर बारीक की हुई लीद तसले में भर कर बाबा इसे मिट्टी पर फेकने लगा। दीपचन्द को यह देख कर खुशी हुई कि बाबा कोठे की मरम्मत मे दिलचस्पी ले रहा है। वह चाहता था कि स्पष्ट शब्दों में बाबा से कह दे कि कोठे की मरम्मत करने के अपराध में कोई उसे फाँसी पर भी लटका दे तो उसे तनिक दुःख न होगा। क्योंकि यह तो असम्भव था कि कोई गन्दे से कोठे के सामने बैठकर स्वतन्त्रता की देवी की प्रतीक्षा करे।

देखते ही देखते वह लँगोटी कस कर मिट्टी के ढेर पर चढ़ गया और ज़ोर-ज़ोर से पैर चला कर मिट्टी और लीद को एक-मेल करने लगा। यह कला उसे थाती में मिली थी—दलदल-सी

मिट्टी में पैर चलाने की कला। पैर चलाने से अजीब-सी आवाज़ निकलती थी जिस से उसके कान परिचित थे। वह ऐसे पैर चला रहा था जैसे कोई नर्तकी किसी अछूते ताल पर समां बाँध दे।

चबूतरे के साथ-साथ रखे हुए तीनों घड़ों की ओर बाबा ने ध्यान से देखा जिनमें चिकनी मिट्टी डाल दी गयी थी। बोला—"पहले दस-बीस डोल पानी इन घड़ों में डाल दो, दीपचन्द!"

दलदल से निकल कर दीपचन्द फिर कुएँ की मुँडेर से सट कर खड़ा हो गया। उस समय वह भौंहों की मेहरावों के नीचे, जहाँ फागुन का आनन्द थिरक रहा था, स्वतन्त्रता की समस्त कल्पना केन्द्रित करते हुए पानी निकाल-निकाल कर घड़ों में डालने लगा। चिकनी मिट्टी से सोंधी-सोंधी सी सुगंध उठी। दूसरी ओर मिट्टी और लीद की दलदल से दुर्गंध आ रही थी। इस दुर्गंध पर उसे क्रोध आ रहा था।

बाबा बोला—"जैसे दरजी फटे हुए कपड़े पर नए जोड़ लगा देता है, वैसे जहाँ-जहाँ दीवारें मरम्मत माँगती हैं लीद मिट्टी लगाने की प्रथा बहुत पुरानी है।"

"हाँ, बाबा!" दीपचन्द ने घड़े में आख़िरी डोल डालते हुए कहा।

दीवारों पर पानी छिड़कने के लिए ले दे कर एक तसला ही नजर आ रहा था। बाबा ने लेजुर संभाल कर कहा—"मैं पानी निकालता हूं। तुम पानी छिड़क दो, जहाँ-तहाँ मिट्टी की टाकी लगाओ।"

दीपचन्द दो तीन बार 'नहीं-नहीं' कह उठा। बाबा के हाथ से लेजुर थामते हुए उसने झुंझला कर डोल कुएँ में फेंक दिया। एक अहमकाना-सी ध्वनि सुनायी दी जिस से उसके कान के परदों पर चपत-सी लगी। दाएं हाथ से लेजुर थाम कर वह

बाएं हाथ से कनपटी सहलाने लगा। एक क्षण के लिए पिता के स्मरण ने उसके मस्तिष्क को घेर लिया।

पानी धरती से इतना दूर क्यों है? वह बाबा से पूछना चाहता था। झट उसकी आँखें बड़ी उत्सुकता से सड़क की ओर घूम गयीं। वह सोचने लगा कि उसका पिता, जैसा कि लोग कहते हैं, अवश्य जीवित होगा। आज से दस वर्ष पूर्व उसकी माँ इसी कोठे में मृत्यु की गोद में सो गयी थी। उस समय उसके पिता के हृदय पर कुछ ऐसी चोट लगी कि वह घर छोड़कर चला गया था। पाँच वर्ष तक तो जैसे कोई भीड़ में गुम हो जाय, किसी के मुख से उसके सम्बन्ध में कुछ भी सुनने को न मिला। फिर शहर से यह समाचार आने लगा कि राणा जी अर्थात् उसका पिता वहाँ रहता है। लोग यह भी कहते थे कि वह तो अब कवि बन गया है और ऐसे-ऐसे गीतों की रचना करता है कि सुनने वालों के सम्मुख नये युग का चित्र उभरने लगता है। यह सोचते हुए कि क्या ही अच्छा हो कि स्वतन्त्रता की देवी के आने से पहले ही उसका पिता यहाँ आ पहुचे, वह जल्दी-जल्दी डोल खींचने लगा।

तसले में पानी उंडेलते हुए उसे बड़ी तीव्रता से यह ख्याल आया कि बाबा से कहे, अब वह दिन दूर नहीं जब वह अपने बेटे राणाजी के सिर पर बड़े प्यार से हाथ फेर सकेगा।

"एक डोल भरकर रख लो," बाबा ने कांपती हुई आवाज़ से कहा। इस पर पतंग की डोर का गुमान हो सकता था जिस पर से समय के मसलते हुए हाथों ने रहे-सहे मावे के अन्तिम अवशेष उतारने शुरू कर दिये हों।

दीपचन्द के हृदय और मस्तिष्क पर एक चोट-सी लगी। क्योंकि वह डोल या पानी की बजाय राणा जी की याद में उलझ गया था। पर उसने स्वयं को एक डोल भर रखने पर

मजबूर पाया। अब के उसने लेजुर को ज़ोर से थाम कर एकदम डोल को कुएँ में फेंक दिया। जैसे वह इस दीवानी, चीख़ सरीखी आवाज़ से अपनी गुप्त वेदना को व्यक्त करना चाहता हो। डोल खींचते हुए उसे ख्याल आया कि क्यों न डोल को कुएँ में फेंककर शहर की ओर चल दे और इस बार राणा जी को ढूँढ़ने में सफल होकर रहे। यदि राणाजी मिल जायं तो वह अपने बेटे की प्रार्थना को ठुकरा नहीं सकेगा। वह सोचने लगा कि बाबा से ऐसी कौनसी भूल हो गयी थी कि राणा जी ने सदैव के लिए घर छोडने का सकल्प कर लिया। एक बार बाबा ने उसे बताया था कि उसने तो केवल इस विचार से कि नन्हा दीपचन्द पल जायगा, राणाजी का दूसरा व्याह रचाने का प्रबन्ध शुरू कर दिया था। पर राणाजी को यह बात एक आंख न भाई। वह अपने नन्हे को सौतेली माँ के हाथों मे नहीं सौंपना चाहता था।

भरा हुआ डोल कुएँ की मुंडेर पर छोड़कर दीपचन्द ने पानी वाला तसला उठा लिया। वह चाहता था कि पानी की एक भी बूंद धरती पर न गिरने पाये। वह कोठे की ओर जा रहा था। बाबा भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। आले से निकालकर एक कसोरा दीपचन्द के हाथ मे थमाते हुए बाबा बोला— "लो, बेटा, इस कसोरे से पानी छिड़को, पानी थोड़ा खर्च होगा।"

कसोरा लेते हुए दीपचन्द ने झुंझला कर बाबा की ओर देखा। वह कहना चाहता था कि तुम छोटी-छोटी बातों का तो इतना ध्यान रखते हो, पर बताओ कि राणा जी को तुमने कैसे भुला दिया। यदि वह लोगों का प्रमाण देकर कहता कि राणाजी शहर मे रहता है तो बाबा को विश्वास ही न होता और आज भी वह यही कहता कि लोगों ने उसे तग करने के

लिये ही इस प्रकार की झूठी बातें फैला रखी हैं। यदि राणा जी सचमुच गाँव से इतना समीप शहर में रहता होगा तो क्या कभी उसका जी अपने बुड्ढे पिता और जवान बेटे को देखने के लिये तड़प न उठता।

दीवार पर कसोरे से पानी छिड़कते हुए दीपचन्द कह उठा—"मैंने तो शहर मे राणाजी को नही देखा। पर जब लोग गांव से शहर जाते हैं और लौटकर सदा यही कहते हैं कि उन्होंने राणाजी को देखा है तो मेरा दिल उदास हो उठता है।"

"आकाश फाड़कर थिगली लगाने वाली स्त्री की तरह ये लोग झूट-मूठ कह छोड़ते है,"—बाबा ने छकड़े के बुड्ढे बैल के समान जो आगे बढ़ने की बजाय उल्टा पीछे की ओर हटना शुरू कर दे हज़ार बार कही हुई बात एक बार फिर दोहरा दी।

टूटी दीवारों पर कोठे के भीतर दीपचन्द ने जल्दी जल्दी पानी छिड़क दिया। तसला फिर से भरकर उसने जीने की मदद से ऊँची जगहों पर भी पानी छिड़क दिया। फिर इसी तसले में लीद-मिट्टी भरकर वह इन जगहों पर मिट्टी की नई टाकियाँ लगाने लगा।

बाबा बाहर मिट्टी के चबूतरे पर जा बैठा। उसकी पीठ शहर की ओर थी। जैसे वह यह समझता हो कि इस बुढ़ापे मे भी उसमें इतनी शक्ति मौजूद है कि बढ़ते हुए शहर को यहीं रोके रखे।

दीपचन्द चाहता था कि कोठे की पुरानी दीवारों पर नई मिट्टी की टाकियां लगाने से तुरन्त छुट्टी पा ले। उसे एक बार फिर राणाजी का स्मरण हो आया। आज वह यहां आ निकले तो अपने बेटे के काम पर खुश होकर वह अवश्य कोई नया गीत रच डालेगा। स्वतंत्रता का युग शुरू होने वाला है। इसकी सबसे अधिक खुशी तो किसी कवि को ही हो सकती है। वह

बाबा से कहना चाहता था कि क्यों न हम शहर जाकर राणाजी को ढूंढ़ लायें। क्या गांव मे रहकर नये गीत नहीं रचे जा सकते ? भगवान ने चाहा तो हमे राणाजी ज़रूर नज़र आ जायगा। हम गांव वाले घर में रहेंगे। आज वह बाबा को अपने दिल का भेद बताना चाहता था। यह बात उसने कभी खुलकर नहीं कही थी। आज तो वह यहां तक कह देना चाहता था कि ऐसे बाप भी हैं जो बेटे को भूल जाते हैं, जैसे बाबा राणाजी को भूल गया और राणाजी ने बाबा को भुला दिया। पर ऐसे बेटे भी हैं जो बाप की याद को सदा बनाये रखते हैं।

दोपर ढल गई थी। सड़क पर लारिया बराबर आ जा रही थीं। छकड़े भी गुज़र रहे थे। बाबा कह उठा—

"सुना है कि सरकार सड़क से छकड़ों का गुजरना बन्द करने वाली है।"

"यह कैसे हो सकता है ?" दीपचन्द ने बाहर की दीवार पर चिकनी मिट्टी का परोला फेरते हुए कहा।

बाबा की तसल्ली न हुई। एक सहमी-सी कॉपती आवाज़ में कहा—"शहर की नीयत अच्छी नहीं, दीपचन्द ! शहर की ठग विद्या को तुम से अधिक मै समझता हूं।"

दीपचन्द का जी उकता रहा था। उसके हाथ थक चुके थे। वह कहना चाहता था कि भले ही शहर में बैठी हुई सरकार हुक्म निकालकर सड़क पर छकड़ों का गुज़रना बन्द कर दे। पर वह ऐसा कोई हुक्म तो नहीं निकाल सकती कि गाव वाले चिकनी मिट्टी की सुगन्ध भी न सूंघ सकें। सरकार ने तो यह हुक्म दे रखा है कि कोई सड़क के किनारे अपने कोठे की मरम्मत न कराये। हमने सरकार का हुक्म तोड़ डाला, अब देखें उस अपराध में सरकार हमे कैसे फॉसी पर लटका सकती है।

दीपचन्द हाथ-मुंह धोने लगा। उसके पैर बोझल हो रहे

थे। उसने मुड़कर बाबा की ओर देखा। वह बाबा से कहना चाहता था कि भला बात-बात में शहर को क्यों कोसा जाय। शहर में भी इन्सान रहते हैं। शहर में राणाजी भी तो रहता है। यह अलग बात है कि हम अभी तक राणाजी का पता नहीं चला सके। पर राणाजी कब तक छिपा रह सकता है? हम राणाजी का पता चलाकर छोड़ेंगे।

कोठे के पीछे से बैलों के गले की घन्टियों की टन-टन प्रतिध्वनित हो उठी। दीपचन्द ने दौड़कर छकड़े वाले को आवाज़ दी—"अरे रुक जाइयो, भैया!"

छकड़ा रुक गया। यह नरोत्तम का छकड़ा था जिसे वह अपना 'उड़न पखेरू' समझता था। वह लपककर बाबा के पास आया। बोला—"उठो, बाबा! गांव चलेंगे।"

बाबा ने जैसे स्वप्न से चौंककर कहा—"पैदल? अरे दीपचन्द बेटा, मुझ से तो पैदल नहीं चला जाता।"

दीपचन्द के जी में तो आया कि बाबा का हाथ झटक कर अकेला छकड़े पर जा बैठे। पर वह कह उठा—"पैदल क्यों, बाबा! छकड़ा है। मैंने कहा नरोत्तम हमें भी साथ लेते जाओ।"

उस समय बाबा के मुख से नरोत्तम की प्रशंसा में कई अच्छे-अच्छे वाक्य निकल गये। वस्तुत वह नरोत्तम से कहीं अधिक गॉव के गुण गा रहा था। गॉव के मुकाबले पर शहर की बुराई करने का अवसर भी वह हाथ से नहीं गंवाना चाहता था। शहर मे तो कोई किसी को रास्ता तक नहीं बतलाता। गॉव की और बात है। गॉव मे तो लोग छकड़ा रोक कर पैदल चलने वालों को अपने साथ बैठा लेते है।

"पा लागन, बाबा!" बाबा को देखकर नरोत्तम कह उठा।

"जुग जुग जियो!" बाबा ने आशीर्वाद दिया। वस्तुत. वह गॉव को आशीर्वाद दे रहा था। शहर लाख यत्न करे कि गॉव

उजड़ जाय। गाँव को जीवित रहने का अधिकार है। गाँव जीवित रहेगा।

बाबा और दीपचन्द छकड़े पर बैठ गये। नरोत्तम बोला—"तुम कहो तो छकड़े को मोटर बना दूँ, बाबा!"

बाबा और नरोत्तम हँस पड़े। वे जानते थे कि छकड़ा मोटर नहीं बन सकता। कदाचित् नरोत्तम यह कहना चाहता था कि गाँव के कच्चे रास्ते पर तो मोटर की तबीयत भी बिगड़ जाती है और बिगडी हुई तबीयत वाली मोटर पर तो छकड़ा भी बाजी ले जा सकता है।

बैलों के गले की घण्टिया बज रही थीं। दीपचन्द को यह थका देने वाली टन-टन बहुत बुरी लगी, पर वह इतना साहस तो नहीं कर सकता था कि छकडा रोक कर पहले बैलों के गले से घंटिया उतार ले और फिर नरोत्तम से कहे कि अब तुम छकडा चला सकते हो।

नरोत्तम कह उठा—"मैं जानूं दीपचन्द तुमने कोठे की लिपाई-पुताई कर डाली, यह तुम्हारे कपड़ों पर चिकनी मिट्टी के निशान साफ बता रहे हैं।"

"हाँ, सरकार!" दीपचन्द ने उत्तर दिया। जैसे वह अपने अपराध की तलाफी कर रहा हो।

"सरकार भी कैसे-कैसे हुक्म निकालती है" नरोत्तम ने बैलों की पीठ पर जोर से कोड़ा चलाते हुए कहा, "तुमने सरकार का हुक्म तोडकर गाँव की लाज रख ली"।

"हाँ, सरकार!" दीपचन्द ने अपना लहजा कायम रखते हुए कहा जैसे वह सरकार के सन्मुख जवाबदेही का अभ्यास कर रहा है।

बाबा बोला—"मै सरकार से कहूंगा, अपने कोठे की लिपाई-पुताई मैंने की है। इसकी सजा मुझे दो।"

नरोत्तम को भी जोश आ गया। बोला—"तुम दोनों चुप रहना। मैं सरकार से कहूँगा कि कोठे की लिपाई-पुताई दरअसल मैंने की है।"

बाबा दीपचन्द का कंधा झंझोड़ कर कहना चाहता था कि जब तक गाँव मे ऐसे लोग जीवित हैं गाँव कभी नहीं मिट सकता, चाहे शहर लाख यत्न करे। नरोत्तम ने न जाने क्या सोचकर पूछ लिया, "तुम शहर गए थे दीपचन्द! कहो क्या खबर लाये? कहो तुमने राणाजी को भी कहीं देखा या नहीं। क्या किसी को उसके बारे मे बात करते भी नहीं सुना।"

"नहीं तो," दीपचन्द ने हारे हुए सिपाही के अंदाज में जवाब दिया।

"लोग तो कहते है राणाजी शहर मे रहता है और देश-प्रेम के गीत रचता है," नरोत्तम ने जोर देकर कहा। जैसे वह कहना चाहता हो कि तुम दूसरे लोगों के मुकाबले में इतने ही बुद्धू हो कि न तुमने राणांजी को देखा न उसके बारे में किसी को कुछ कहते सुना।

बाबा ने सर्द आह भर कर कहा—"कौन जाने राणाजी कहां हैं और किस हाल में है। लोग तो बाते बनाते हैं अगर राणाजी सचमुच शहर मे होता तो क्या कभी भूल कर भी गाँव में न आता।"

नरोत्तम ने हँसकर कहा—"राणाजी कवि हैं और कवि वहीं रहता है जहां लोग उसकी कविता सुनते हैं और उसकी कदर करते है।"

दीपचन्द कह उठा"—मैं राणाजी से मिलना चाहता हूँ। पहले बेटे के नाते, फिर कवि की कविता सुनने की खातिर।"

बाबा बोला—"जितनी खुशी एक बेटे को यह सुनकर हो सकती है कि उसका पिता एक कवि है, उससे भी ज्यादा खुशी

पिता को यह सुनकर होती है कि उसका बेटा कवि है।"

नरोत्तम बोला—"राणाजी का नाम आते ही सारे गाँव का सिर अभिमान से ऊँचा उठ जाता है। मैं कहता हूँ ऐसे बेटे घर-घर जन्म ले। धन्य है उस माँ की कोख जिसने राणाजी को जन्म दिया।"

बाबा कहना चाहता था कि काश आज राणाजी की मां जीवित होती और वह अपने कानों से अपने बेटे की प्रशंसा सुनती।

खेतों के बीचों-बीच जाने वाले रास्ते पर गर्द का बादल उमड़ रहा था। नरोत्तम बैलों को उड़ाए लिये जा रहा था। कभी डरा धमका कर, कभी पुचकार कर।

दीपचन्द बोला—"इतनी क्या किसी की बारात चढ़ने की जल्दी है, नरोत्तम ?"

बाबा कह उठा—"बैल और इन्सान की जाति मे बहुत बड़ा अन्तर तो नहीं है,बेटा। मैं तो जानूं नरोत्तम के बैल खुश होकर आप ही आप उड़े चले जा रहे है।"

नरोत्तम ने अपनी प्रशंसा सुनकर बैलों को पुचकारा। आज वह सचमुच छकड़े को मोटर बना देने पर तुला हुआ नजर आता था। संसार उन्नति करते-करते मोटर बल्कि हवाई जहाज तक पहुँच गया था, पर नरोत्तम को भी अपने छकड़े पर गर्व था। छकडे पर बैठ कर वह यह समझने लगता था कि यह गाँव भी किसी राजधानी से कम नहीं। वह तो मन ही मन यह कल्पना करने लग जाता था कि इस राजधानी का महाराजा वह स्वयं ही है। यह सोच कर कि भला यह कैसे हो सकता है,क्योंकि न तो उसके नाम का सिक्का चलता है और न लोग उसकी आज्ञा मानने के लिये मजबूर है, उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगता। उस समय वह ले देकर बैलों ही मे अपनी प्रजा का चित्र देखने

लगता। रास्ता सीधा हो या टेढ़ा, साफ और सीधा हो या ऊबड़-खाबड़-बैलों को तो अपने महाराजा की आज्ञा माननी ही पड़ती थी।

टन टन-टन-टन, बैलों के गले की घंटियां महाराजाधिराज की सवारी का दृश्य उपस्थित कर रही थीं। दूर से गांव के कोठ नज़र आ रहे थे।

समीप जाने पर मालूम हुआ कि गांव की सीमा पर बहुत से लोग एकत्रित हो रहे हैं मानों महाराजा ने अपने राज्य में विद्रोह के भय का अनुभव करते हुए पुकारा—"बढ़े चलो, बेटा!"

बाबा बोला—"शहर इस भाषा का मर्म नहीं पहचान सकता। शहर की भाषा और है, गांव की भाषा और।"

दीपचन्द ने जैसे बाबा की बात पर हाशिया चढ़ाते हुए कहा—"बाबा तुम्हारा यही मतलब है ना कि शहर के लोग गांव वालों की भांति पशुओं के साथ एकता का भाव अनुभव नहीं कर सकते।"

"हां बेटा"—बाबा ने जैसे दीपचन्द को शाबाश देते हुए कहा—"रूप में शहर बड़ा है, गुण में गांव।" गांव समीप आता गया और सबका ध्यान गांव की सीमा पर एकत्रित होने वाले लोगों पर केन्द्रित होता गया। बाबा बोला, "मेरा माथा ठनक रहा है।"

"तुम तो सदा यूँ ही डर जाते हो बाबा", दीपचन्द ने बनावटी साहस दिखाते हुए कहा।

"बुढ़ापे और भय का पुराना मेल है"—नरोत्तम ने बैलों की पीठ पर जोर से कोड़ा लगाते हुए कहा। "बाबा! हमारे होते तुम्हें कोई भय नहीं।"

गांव की सीमा पर रास्ते को बहुत बड़ी भीड़ ने रोक रखा था। छकड़ा एक किनारे छोड़कर दीपचन्द, बाबा और नरोत्तम भीड़ में घुस गए।

"हुई न वही बात"—बाबा ने संकट अनुभव करते हुए कहा, "जरूर गांव पर आफत आने वाली है।"

दीपचन्द और नरोत्तम ने बाबा की बात का कोई उत्तर न दिया। यद्यपि उन्हें पहली ही नजर में पता चल गया कि शहर से बड़ा हाकिम गांव को समझाने के लिये आया है।

बीच की कुर्सी पर बड़ा हाकिम बैठा था, उसके दायें हाथ इलाके का थानेदार और बाएं हाथ तहसीलदार नजर आ रहा था। तहसीलदार की साथ वाली कुरसी पर एक व्यक्ति बैठा था जिसके सिर पर लम्बे-लम्बे बाल झुके पड़ते थे। उसने लम्बा अंगरखा पहन रखा था और उसने हाथ मे बड़ी-बड़ी गांठों वाला पहाड़ी लकड़ी का डंडा थाम रखा था जिससे इतना तो स्पष्ट था कि वह कोई ग़ैर सरकारी व्यक्ति है और यूँ ही गॉव देखने की दृष्टि से बड़े हाकिम के साथ चला आया है।

थानेदार के मना करने पर भी लोगों का शोर बराबर उभर रहा था। गड़बड़ लाउड स्पीकर के खराब होने के कारण हो रही थी। यह प्रतीत होता था कि अब यह बैटरी से चलने वाला लाउड स्पीकर काम न देगा।

बाबा ने दाएं-बाएं दीपचन्द और नरोत्तम को टहोका देकर आखों ही आंखों में यह समझाने का यत्न किया कि यह भी अच्छा हुआ कि हम ठीक अवसर पर आ गए। हम कोई अनहोनी बात नहीं होने देगे। पर नरोत्तम और दीपचन्द तो इस बात पर हैरान हो रहे थे कि पास वाले गॉव के लोगों को कौन बुला कर लाया है। और इस खुली कचहरी की बात कब तय हुई थी।

दीपचन्द ने धीरे से कहा—"मैं जानूं पास के गांव के लोग हमारी सहायता करेंगे।"

नरोत्तम बोला—"वे हमारे पड़ोसी हैं, हमारी सहायता न

करनी होती तो आते क्यों ?"

बाबा कह उठा—"भगवान भली करेंगे। भगवान तो हाकिम से भी बड़े हैं।

पास वाले गांव के मुखिया ने खड़े होकर कुछ कहना चाहा पर किसी ने उसकी बांह खींच कर उसे बिठा दिया। जैसे वह यह समझाना चाहता हो कि पहले इस गांव वालों को जवाब दे लेने दो।

लोगों का शोर बढ़ रहा था। थानेदार ने दो-तीन बार चुप रहने का हुक्म दिया। यह प्रतीत होता था कि लोगों को चुप कराना सहज नहीं।

बाबा ने खड़े होकर कहा—"हमारा गांव बहुत पुराना है। यह तो महाभारत के समय से चला आता है।"

पास वाले गांव का मुखिया झट कह उठा—"और हमारा गांव रामायण के समय से चला आता है।"

थानेदार ने खड़े होकर कहा—"रामायण और महाभारत का समय तो कभी का बीत गया—हाकिम के फर्मान के बाद आप लोग अपनी बात कह सकते हैं।"

तहसीलदार ने खड़े होकर कहा—"जो न्याय रामायण और महाभारत के समय से चला आता है, उसके सम्बन्ध में आज आप हाकिम का फर्मान सुनेंगे।"

सायंकाल के साये लम्बे होते जा रहे थे पर लाउड स्पीकर ठीक न हुआ। अब और प्रतीक्षा व्यर्थ थी। शहर के बड़े हाकिम ने झुंझलाकर लाउड स्पीकर का प्रबन्ध करने वालों की ओर देखा, जैसे वह कहना चाहता हो कि तुम मुफ्त की तनख्वाह पाते हो।

थानेदार ने अवसर की नजाकत अनुभव करते हुए खड़े होकर लोगों से कहा—"हर कोई चुप हो जाय और कान खोलकर

हाकिम का फर्मान सुन ले।"

बड़े हाकिम ने जल्दी-जल्दी चेहरा घुमाते हुए दाएं-बाएं, पीछे और सामने एक लम्बी दृष्टि डालते हुए उठ कर कहना शुरू किया—

"भाइयो! यह तो तुम सब सुन ही चुके हो कि देश मे स्वतन्त्रता आ रही है और स्वतन्त्रता का स्वागत करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। स्वतन्त्रता बलिदान के बिना नहीं आती। बलिदान मे बड़ी शक्ति होती है।

"भाइयो! स्वतन्त्रता आने से पहले यह जरूरी है कि देश की राजधानी का रंग-रूप खिल जाय और इसका सम्मान भी बढ़ जाय। यह तो आपको मानना पड़ेगा कि बड़े देश की राजधानी भी बड़ी होनी चाहिए। क्या आप मेरी राय में राय मिलाने को तैयार हैं?"

बाबा ने दाए-बाएं नरोत्तम और दीपचन्द को टहोका दिया जैसे वह उनसे कहना चाहता हो कि हम इस राय मे कैसे राय मिला सकते है।

दीपचन्द ने धीरे से कहा—"पहले भी तो राजधानी बहुत से गांवों को निगल चुकी है।"

नरोत्तम बोला—"राजधानी न हुई कोई डायन हुई जिसकी भूख कभी नहीं मिटती।"

चारों ओर से फुसर-फुसर की आवाजें आने लगीं पर किसी मे इतना साहस न था कि खड़ा होकर ऊंची आवाज से गांव की राय प्रस्तुत करे।

बाबा के मुख पर एक रंग जा रहा था, एक आ रहा था। उसने दाएं-बाएं नरोत्तम और दीपचन्द की ओर देखा, उठ कर खड़ा हो गया। बोला—"हम अपना लहू दे सकते हैं लेकिन अपनी धरती नहीं दे सकते।"

थानेदार ने उठ कर कहा—"अभी बैठ जाओ चौधरी पहले हाकिम की बात पूरी तरह सुन लो।"

बड़े हाकिम ने थानेदार को मना करते हुए कहा—"चौधरी को अपनी राय देने दो। मैं चौधरी की बात मानता हूँ। किसान के लिए बहुत कठिन होता है कि वह अपनी धरती दे डाले। क्यों, चौधरी, यही बात है ना?"

बाबा के चेहरे पर खुशी दौड़ गयी। वह कहना चाहता था कि यदि गांव को अपनी जगह पर आबाद रहने दिया जाय तो हम राजधानी की बड़ी से बड़ी सेवा करने को तैयार हैं।

पर अगले ही क्षण बड़े हाकिम ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—

"भाइयो।

"मुझे अपना हाकिम मत समझो। मैंने सेवा करने के इरादे से यह ओहदा सम्भाला है। स्वतन्त्रता आ रही है, देश सदियों की नींद त्याग कर आंखें खोल रहा है। राजधानी की नस-नस मे नया लहू दौड़ रहा है। और आज राजधानी गांव की सहायता चाहती है!

"मेरे देश वासियो।

"आप मे कौन होगा जो देश के भले पर अपना भला कुर्बान करने पर तैयार नहीं होगा। आप लहू देने के लिए तैयार है पर राजधानी लहू नहीं मांगती। राजधानी को थोड़ी धरती चाहिए। आज एक बहुत बड़ा कृषि विद्यालय स्थापित करने के लिए राजधानी अपनी झोली गांव के सामने फैलाती है।"

एक बार फिर चारों तरफ खुसर-फुसर होने लगी। बाबा ने खड़े होकर कहा—"राजधानी का आदर सत्कार करना गांव का धर्म है पर क्या आप चाहते हैं कि गांव अपनी जगह से मिट जाय?"

बड़े हाकिम ने अपने लहजे में बड़े यत्न से सत्य का अंश प्रस्तुत करते हुए कहा—

"भाइयो !

"रामायण और महाभारत के समय से ऐसा ही होता आया है। सच पूछो तो मैं भी मजबूर हूँ। जैसे वृक्ष बड़ा होने पर अधिक भूमि घेरता है राजधानी भी उन्नति करते-करते अधिक जगह घेरती चली जाती है। मैं स्वयं किसान हूँ। मुझे स्वयं तुम्हारे भावों का अनुभव है। पर होनी को तो मैं भी नहीं रोक सकता। होनी तो होकर रहेगी। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप लोगों के रहने के लिए अवश्य कोई प्रबन्ध किया जायगा।"

पास वाले गांव के मुखिया ने खड़े होकर कुछ कहना चाहा पर तहसीलदार ने उसे चुप रहने का संकेत करते हुए कहा—

"अब मैं देश के महाकवि श्रीराणाजी से प्रार्थना करता हूं कि वे अब अपने भाषण से आप लोगों को तृप्त करेंगे और अंत मे अपना कोई नया गीत भी सुनायेंगे।"

राणाजी का नाम सुनते ही गांव वाले चकित रह गए। बाबा ने नरोत्तम और दीपचन्द को टहोका देकर कहा—

"भगवान ! तेरी महिमा अपरम्पार है, कैसे समय पर राणा-जी को हमारे पास भेजा।"

नरोत्तम बोला—"रामायण और महाभारत के समय का न्याय कैसे मिट सकता है ?"

दीपचन्द कह उठा, "सैंकड़ों राज आए और चले गए। पर हमारा गांव अपनी जगह खड़ा रहा। अब राणाजी की कृपा हो गई तो इसे कोई भय नहीं।"

लोगों का शोर उभर रहा था। सभा का रंग बदलने लगा। बाबा बोला—"राणाजी का धर्म तो यही है कि जन्मभूमि की

सहायता करे, जिस धरती का अन्न खाया है उसकी लाज रखे।"

एक क्षण के लिये बड़ा हाकिम भी डर गया कि कहीं राणाजी कोई उल्टी बात न कह डालें। मालूम होता था कि एक पोटली की तरह गाँव राणाजी के हाथ में आ चुका है और अब यह इसके अधिकार में है कि यह किसके अधिकार में थमाए। तहसीलदार भी सहम गया क्योंकि उसे मालूम था कि राणाजी इसी गाँव का रहने वाला है और यह संभव है कि अंतिम क्षण आने पर राणाजी को यह विचार आ जाय कि उसने तो गांव ही का नमक खाया है और न्याय का पलड़ा गांव ही के पक्ष में भारी दिखलाना चाहिए।

धीरे-धीरे शोर कुछ कम हुआ और राणाजी ने खड़े होकर कहना शुरू किया—

"मैं कवि हूँ। मेरा काम है नये-नये गीतों की रचना करना, स्वतंत्रता आ रही है, आप तैयार हो जाइये। देश का सम्मान, देश का धन, देश का बुद्धि बल सब गांव के हाथ में है। मुझे विश्वास है कि स्वतंत्रता की देवी को स्वतंत्र वायुमण्डल ही पसन्द आ सकता है..."

चारों तरफ से शोर फिर उमड़ा और कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी। बाबा ने दीपचन्द और नरोत्तम को टहोका दिया। वह कहना चाहता था कि राणाजी ने गांव की लाज रखली।

शोर धीरे-धीरे दबने लगा। राणाजी ने कहना शुरू किया—

"एक कवि अपनी बात गीतों ही मे कह सकता है। मैं आप लोगों के सम्मुख अपना एक नया गीत रखता हूँ..."

मालूम होता था कि कवि इस सभा का रंग बदल कर रख देगा। लोगों के चेहरों पर आशा की झलकियां थिरकने लगीं।

राणाजी ने गान शुरू किया—

आवाज दे रही दिल्ली रे

दिल्ली का नक्शा बदल गया .

गीत के बोल वातावरण में घुलते गये। अस्त होते हुए सूर्य की किरणें बुझते हुए दीपक की तरह अन्तिम संभाले के रूप में कुछ-कुछ तेज नजर आने लगीं।

गाँव वालों ने देखा कि उनका कवि भी बिक चुका है और बाजी उनके हाथ से निकली जा रही है। उनके सिर झुक गये, झुकते चले गए।

जो लोग अगले गाँव से आए थे उन पर भी एक रंग आता था एक जाता था। वह यह सोच कर घबरा उठे कि अब एक दिन उनके गाँव की भी खैर नहीं—उनके सिर झुक गए, झुकते चले गए।

धरती राजधानी को प्रणाम करने पर मजबूर थी।

जन्म-भूमि

गाड़ी हरबंसपुरा के स्टेशन पर खड़ी थी। इसे यहाँ रुके पचास घंटे से ऊपर हो चुके थे। पानी का भाव पाँच रुपये ग्लास से एक दम पचास रुपये ग्लास तक चढ़ गया, और पचास रुपये ग्लास के हिसाब से पानी खरीदते समय लोगों को बड़ी नरमी से बात करनी पड़ती थी। वे डरते थे कि पानी का भाव और न चढ़ जाय। कुछ लोग अपने दिल को तसल्ली दे रहे थे कि जो इधर हिन्दुओं पर बीत रही है वही उधर मुसलमानों पर भी बीत रही होगी, उन्हें भी पानी इससे सस्ते भाव पर नहीं मिल रहा होगा, उन्हें भी नानी याद आ रही होगी।

प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े मिल्टरी वाले भी तंग आ चुके थे। ये लोग सवारियों को हिफ़ाजत से नये देश में ले जाने के लिये जिम्मेवार थे। पर उनके लिए पानी कहाँ से लाते? उनका अपना राशन भी कम था। फिर भी बचे-खुचे बिस्कुट और मूँगफली के दाने डिब्बोंमें बाँट कर उन्होंने हमदर्दी जताने मे कोई कसर नहीं उठा रखी थी। इस पर सवारियों में छीना-झपटी देख कर उन्हे आश्चर्य होता और वे बिना कुछ कहे सुने परे को घूम जाते।

जैसे सवारियों के मन में यमदूतों की कल्पना उभर रही हो, जैसे उनके जन्म-जन्म के पाप उनकी आँखों के सामने नाच रहे

हों। जैसे जन्मभूमि से प्रेम करना ही उनका सब से बड़ा दोष हो। इसीलिए तो वे जन्मभूमि छोड़ कर भाग निकले थे। कहकहे और हंसी ठठोल जन्मभूमि ने अपने पास रख लिये थे। गोरी स्त्रियों के चेहरों पर जैसे किसी ने काले-नीले धब्बे डाल दिये हों। अभी तक उन्हे अपने सिरों पर चमकती हुई छुरियाँ लटकती महसूस होती थीं। युवतियों के कानों मे गोलियों की सनसनाहट गूँज उठती और वे कॉप-कॉप जातीं। उनकी कल्पना में विवाह के गीत बलवाइयों के नारों और मारधाड़ के शोर मे हमेशा के लिए दब गये थे। पायल की झंकार घायल हो गई थी। उन के सीनों की लालिमा मटमैली होती चली गई। जीवन का संगीत मृत्यु की खाइयों में भटक कर रह गया। कहकहे सोग मे डूब गये और हंसी ठठोल पर मानो श्मशान की राख उड़ने लगी। पांच दिन की यात्रा मे सभी के चेहरों की रौनक खत्म हो गई थी।

यह सब क्यों हुआ, कैसे हुआ ? इस पर विचार करने की किसे फुरसत थी ? यह सब कैसे हुआ कि लोग अपनी ही जन्मभूमि में बेगाना हो गये ? हर चेहरे पर ख़ौफ था, हरास था। बहुतों को इतना इतमीनान ज़रूर था कि जान पर आ बनने के बाद वे भाग निकलने में सफल हो गये थे। एक ही धरती का अन्न खानेवाले लोग कैसे एक दूसरे के खून से हाथ रंगने लगे ? यह सब क्यों हुआ, कैसे हुआ ?

नये देश की कल्पना उन्हें इस गाड़ी मे ले आई थी। अब यह गाड़ी आगे क्यों नहीं बढ़ती ? सुनने मे तो यहाँ तक आया था कि स्टेशन पर बलवाइयों ने गाड़ी की पूरी की पूरी सवारियों के खून से हाथ रंग लिये थे। पर अब हालत काबू मे थी। यद्यपि कुछ लोग पचास रुपये ग्लास के हिसाब से पानी बेचने वालों को बदमाश बलवाइयों के शरीफ भाई मानने के लिए

तैयार न थे। नये देश में ये सब मुसीबतें तो न होंगी। वहां सब एक दूसरे पर भरोसा कर सकेंगे। पर जब प्यास के मारे ओंठ सूखने लगते और गले मे प्यास के मारे सांस अटकने लगता तो वे तड़प कर रह जाते।

इनमें ऐसे लोग भी थे जिनके घर जला दिये गये थे। वे बिलकुल खामोश थे। जैसे उनके दिल बुझ गये हों, दिमाग बुझ गये हों। कुछ ऐसे भी थे जिनकी हालत पर झट यह कहा जा सकता था कि न आषाढ़ मे हरे न सावन मे सूखे। जन्मभूमि मे उनके हाथ हमेशा खाली रहे। अब नये देश में भी कौन-से उनके हाथ भर जायँगे? वे बढ़-बढ़ कर बातें जरूर करने लगते। सौ से छूटते ही उनके बोल लाखों पर आकर रुकते। पर प्यास के मारे उनका भी बुरा हाल था।

खचाखच भरे हुए डिब्बे पर आलुओं की बोरी का गुमान होता था। एक अधेड़ आयु की स्त्री जो बहुत दिनों से बीमार थी, एक कोने में बैठी थी। उसके तीन बच्चे थे। एक लड़की सात वर्ष की थी, एक पाँच वर्ष की और तीसरा बच्चा अभी दूध पीता था। यह गोद का बच्चा ही उसे बुरी तरह परेशान कर रहा था। कभी-कभी तंग आकर वह उसका मुँह झटक देती। इस स्त्री का पति कई बार बच्चे को अपनी बाँहों मे थाम कर खड़ा हो जाता और अपनी पत्नी की आँखों मे झाँक कर यह कहना चाहता कि यह तीसरा बच्चा पैदा ही न हुआ होता तो बहुत अच्छा होता।

बच्चे को अपनी गोद में लेते हुए बीमार स्त्री का पति कह उठा—"तुम घबराओ मत। तुम ठीक हो जाओगी। बस अब थोड़ा-सा फासला और रहता है।"

बीमार स्त्री खामोश बैठी रही। शायद वह कहना चाहती थी कि यदि गाड़ी और रुकी रही तो बलवाई आ पहुँचेंगे और

ये गिनती के मिल्टरी वाले भला कैसे हमारी जान बचा सकेंगे। जैसे ये सब सवारियाँ लाशें हों और वे गिद्ध इनकी बू सूँघ सकते हों।

पास से किसी ने पूछ लिया—"बहिनजी को क्या कष्ट है ?"

बीमार स्त्री का पति कह उठा—"उस गाँव मे कोई डाक्टर न था जहां मैं पढ़ाता था।"

"तो आप स्कूल मास्टर हैं ?"

"यह कहिये कि स्कूल मास्टर था," बीमार स्त्री के पति ने एक लम्बी आह भरते हुए कहा—"अब भगवान् जाने नये देश में हम पर क्या बीतेगी।"

वह अपने मन को समझाता रहा। जरा गाड़ी चले तो सही। वे बहुत जल्द अपने राज्य में पहुँचनेवाले हैं। वहाँ डाक्टरों की कमी न होगी। कहीं न कहीं उसे स्कूल मास्टर की जगह मिल ही जायगी। उसकी आमदनी पहले से बढ़ जायगी। वह अपनी पत्नी से कहना चाहता था कि जो चीज जन्मभूमि मे आज तक नहीं मिल सकी अब नये देश और जनता के राज्य में उसकी कुछ कमी न होगी।

बड़ी लड़की कान्ता ने बीमार माँ के समीप सरक कर पूछा—"माँ गाड़ी कब चलेगी ?"

छोटी लड़की शान्ता खिड़की के बाहर झाँक रही थी।

कान्ता और शान्ता का भैया ललित पिता की बाँहों मे बराबर रोये जा रहा था।

स्कूल मास्टर को अपने स्कूल का ध्यान आ गया जहां वह पिछले दस वर्षों से हेडमास्टर था। टैकसला के समीप के इस गाँव को शुरू-शुरू मे यह स्वीकार न था कि वहां स्कूल ठहर सके। उसने बड़े प्रेम से लोगों को समझाया था कि यह गाँव टैकसला से दूर नहीं—टैकसला, जिसका प्राचीन नाम तक्षशिला

है और जहाँ एशिया का सबसे बड़ा विश्व-विद्यालय था और जहां दूर-दूर के देशों के विद्यार्थी शिक्षा पाने आया करते थे। यह विचार आते ही उसकी कल्पना को झटका-सा लगा, क्योंकि इस युग के लोगों ने एक दूसरे के खून से हाथ रंगने की कसमें खाईं और अत्याचार की ये घटनाये ढोलों और शहनाइओं के संगीत के साथ-साथ हुईं। शिक्षित लोग भी बलवाइयों के संग-संगाती बनते चले गये। शायद उन्हें भूल कर भी ख्याल न आया कि अभी तो प्राचीन तक्षशिला की खुदाई के बाद हाथ आनेवाले मूर्ति-कला के बहुमूल्य नमूने भी बराबर अपना सन्देश सुनाये जा रहे थे। यह कैसी जन्मभूमि थी? इस जन्म-भूमि पर किसे गर्व हो सकता था जहां कत्ले-आम के खेल खेलने के लिए ढोल और शहनाइयां बजाना जरूरी समझा गया। इतिहास पढ़ाते समय उसने अनेक बार विद्यार्थियों को बताया था कि यही वह उनकी जन्मभूमि है जहां कभी कनिष्क का राज्य था, जहां अहिंसा का मन्त्र फूँका गया था, जहाँ भिक्षुओं ने त्याग, शान्ति और निर्वाण के उपदेश दिये और अनेक बार गौतम बुद्ध के बताये हुए पथ की ओर उंगली उठाई, आज उसी धरती पर घर जलाये जा रहे थे और शायद ढलती बर्फों के शीतल जल से भरपूर नदियों के साथ-साथ आदमी के गरम-गरम खून की नदी बहाने का मनसूबा बाँधा जा रहा था। डिब्बे में बैठे हुए लोगों के कंधे झंझोड़-झंझोड़ कर वह कहना चाहता था कि गौतम बुद्ध को संसार में बार-बार आने की आवश्यकता नहीं। अब गौतम बुद्ध कभी जन्म नहीं लेगा, क्योंकि उसकी अहिंसा का सदा के लिए अन्त हो गया। अब लोग निर्वाण नहीं चाहते। अब तो उन्हें दूसरों की आबरू उतारने में आनन्द आता है। अब तो नग्न स्त्रियों और युवतियों के जलूस निकालने की बात किसी के टाले टल नहीं सकती। आज जन्मभूमि को

ग्रहण लग गया। आज जन्मभूमि के भाग्य फूट गये। आज जन्मभूमि अपनी सन्तान की लाशों से पटी पड़ी है। अब यह इन्सान के मांस और रक्त की सड़ायंध कभी ख़त्म नहीं होगी।

नन्हा ललित रो-रो कर सो गया था। कान्ता और शान्ता बराबर सहमी-सहमी निगाहों से कभी माँ की तरफ़ और कभी खिड़की के बाहर देखने लगती थीं। एक दो बार उनकी निगाह ललित की तरफ भी उठ गई। वे चाहती थीं कि थोड़ी देर और उनका पिता ललित को उठाये खड़ा रहे। क्योंकि उसकी जगह उन्हें आराम से टाँगे फैलाने का अवसर मिल गया था।

शान्ता ने कान्ता के बाल नोच डाले और कान्ता रोने लगी। पास से मां ने शान्ता के चपत दे मारी और इस पर शान्ता भी रोने लगी। उधर ललित भी जाग उठा और वह भी नीरस और बेसुरे अन्दाज़ से रोने-चीखने लगा।

स्कूल मास्टर के विचारों का क्रम टूट गया। प्राचीन तक्ष-शिला के विश्वविद्यालय और भिक्षुओं के उपदेश से हट कर वह यह कहने के लिए तैयार हो गया कि कौन कहता है कि इस देश में कभी गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। वह कान्ता और शान्ता से कहना चाहता था कि रोने से तो कुछ लाभ नहीं। नन्हा ललित तो बेसमझ है और इसलिए बार-बार रोने लगता है, तुम तो समझदार हो। तुम्हें तो बिल्कुल नहीं रोना चाहिए। क्योंकि यदि तुम इसी तरह रोती रहोगी तो बताओ तुम्हारे चेहरों पर कमल के फूल कैसे खिल सकते हैं। पास से किसी की आवाज़ आई—"यह सब फिरंगी की चाल है। जिन बस्तियों ने बड़े-बड़े हमलावरों के हमले बरदाश्त किये, अनगिनत सदियों से अपनी जगह पर कायम रहीं, आज वे भी लुट गईं।"

"ऐसे-ऐसे कत्ले-आम तो उन हमलावरों ने भी न किये होंगे। हमारे स्कूलों में झूठा और मनगढ़न्त इतिहास पढ़ाया जाता रहा

है," एक और मुसाफिर ने शह दी।

स्कूल मास्टर ने चौंक कर उस मुसाफिर की तरफ देखा। वह कहना चाहता था कि तुम सच कहते हो। मुझे मालूम न था। नहीं तो मैं कभी इस झूठे मनघढ़न्त इतिहास का समर्थन न करता। वह यह भी कहना चाहता था कि इसमें उसका कोई विशेष दोष नहीं। क्योंकि सभ्यता के चेहरे से सुन्दर खोल सांप की केंचुली की तरह अभी-अभी उतरा है, और अभी-अभी तो मालूम हुआ है कि मानव ने कुछ भी उन्नति नहीं की, बल्कि यह कहना होगा कि उसने पतन की तरफ ही बड़े वेग से पग बढ़ाये हैं।

"जिन्होंने बलवाइयों और हत्यारों का साथ दिया और मानवता की परम्परा का अपमान किया," स्कूल मास्टर ने साहस दिखाते हुए कहा, "जिन्होंने नग्न स्त्रियों और युवतियों के जलूस निकाले, जिन्होंने अपनी इन माताओं और बहिनों की आबरू पर हाथ डाला, जिन्होंने माताओं के दूध-भरे स्तन काट डाले और जिन्होंने बच्चों की लाशों को नेज़ों पर उछाल कर कहकहे लगाये, उनकी आत्माएं सदा अपवित्र रहेंगी। और फिर यह सब-कुछ यहां भी हुआ और वहां भी, जन्मभूमि में भी और नये देश मे भी!"

इसके उत्तर मे सामनेवाला मुसाफिर चुप बैठा रहा। उसकी खामोशी ही उसका उत्तर था। शायद वह कहना चाहता था कि इन बातों से क्या लाभ। ऊपर से उसने इतना ही कहा—"हमें यह कैसी आज़ादी मिली है?"

कान्ता और शान्ता के आँसू थम गये थे। ललित भी कुछ क्षणों के लिए खामोश हो गया। स्कूल मास्टर की निगाहें अपनी बीमार पत्नी की ओर उठ गईं जो खिड़की के बाहर देख रही थी। शायद वह पूछना चाहती थी कि जन्मभूमि छोड़ने पर हम

क्यों मजबूर हुए। या क्या यह गाड़ी यहाँ इसीलिए रुक गई है कि हमें फिर से अपने गाँव को लौट चलने का विचार आजाय।

स्कूल मास्टर के ओंठ बुरी तरह सूख रहे थे। उसका गला बुरी तरह खुश्क हो चुका था। उसे यह महसूस हो रहा था कि कोई उसकी आत्मा मे कांटे चुभो रहा है। एक हाथ सामनेवाले मुसाफिर के कन्धे पर रखते हुए वह बोला—

"सरदार जी, बताओ तो सही कि कल का इन्सान उस अन्न को भला कैसे अपना भोजन बनायेगा जिसका जन्म उस धरती की कोख से होगा जिसे अनगिनत मासूम बेगुनाहों की लाशों की खाद प्राप्त हुई ?"

सरदार जी का चेहरा तमतमा उठा। जैसे वह ऐसे विचित्र प्रश्न के लिए तैयार न हो। किसी कदर सँभल कर उसने भी प्रश्न कर डाला—"आप बताओ इसमे धरती का क्या दोष है ?"

"हाँ हाँ—इसमे धरती का क्या दोष है ?" स्कूल मास्टर कह उठा—"धरती को तो खाद चाहिए। फिर वह कहीं से भी क्यों न मिले।"

सरदार जी प्लेटफार्म की ओर देखने लगे। बोले—"यह गाड़ी भी अजीब ढीट है, चलती ही नही। बलवाई जाने कब आ जायँ।"

स्कूल मास्टर के मन में अनगिनत लाशों का दृश्य घूम गया जिनके बीचो-बीच बच्चे रेंग रहे हों। वह इन बच्चों के भविष्य पर विचार करने लगा। यह कैसी नई पौध है ? वह पूछना चाहता था। यह नई पौध भी कैसी सिद्ध होगी ? उसे उन अनगिनत युवतियों का ध्यान आया जिनकी इज्जत पर हाथ डाला गया था। पुरुष की दहशत के सिवा इन युवतियों की कल्पना में और क्या उभर सकता है ? उनके लिए निश्चय ही यह आज़ादी बरबादी बन कर आई। वे निश्चय ही इस आज़ादी

के नाम पर थूकने से भी नहीं कतरायेगी। उसे उन कन्याओं का ध्यान आया जो अब मातायें बननेवाली थीं। ये कैसी मातायें बनेंगी ? वह पूछना चाहता था। ये घृणा के बीज भला क्या फल लायेंगे ? उसने सोचा इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास न होगा। वह डिब्बे में एक-एक व्यक्ति का कन्धा झंजोड़ कर कहना चाहता था कि मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो। नहीं तो यदि यह गाड़ी पचास-पचपन घण्टों तक रुकने के पश्चात् आगे चलने के लिए तैयार भी होगी तो मैं जंजीर खींच कर गाड़ी को रोक लूँगा।

"क्या यह गाड़ी अब आगे नहीं जायगी, हे भगवान् ?" बीमार स्त्री ने अपने चेहरे से मक्खियां उड़ाते हुए पूछ लिया।

स्कूल मास्टर कह उठा—"निराश होने की क्या जरूरत है ? गाड़ी आखिर चलेगी ही।"

स्कूल मास्टर खिड़की से सिर निकाल कर बाहर की ओर देखने लगा। एक दो बार उसका हाथ जेब की तरफ बढ़ा, अन्दर गया और फिर बाहर आ गया। इतना महँगा पानी खरीदने का उसे साहस न हुआ। जाने क्या सोच कर उसने कहा—"गाड़ी अभी चल पड़े तो नये देश की सीमा में घुसते उसे देर न लगेगी। फिर पानी की कुछ कमी न होगी। ये कष्ट के क्षण बहुत शीघ्र बीत जायगे।"

कन्धे पर पड़ी हुई फटी पुरानी चादर को वह बार-बार संभालता था। इसे वह अपनी जन्मभूमि से बचा कर लाया था। बलवाइयों के अचानक गांव में आ जाने के कारण वह कुछ भी तो नहीं निकाल सका था। बड़ी कठिनाई से वह अपनी बीमार पत्नी और बच्चों के साथ भाग निकला था। अब इस चादर पर अंगुलियाँ घुमाते हुए उसे गाँव का जीवन याद आने लगा। एक-एक घटना मानो एक-एक तार थी और इन्हीं तारों

की सहायता से समय के जुलाहे ने जीवन की चादर बुन डाली थी। इस चादर पर अंगुलियां घुमाते हुए उसे मानो उस मिट्टी की सुगन्ध आने लगी जिसे वह वर्षों से सूँघता आया था। जैसे किसी ने उसे जन्मभूमि की कोख से जबरदस्ती उखाड़ कर इतनी दूर फेंक दिया हो। जाने अब गाड़ी कब चलेगी? अब यह जन्मभूमि नहीं रह गई। देश का बँटवारा हो गया। अच्छा चाहे बुरा। जो होना था सो हो गया। अब देश के बँटवारे को झुटलाना सहज नहीं। पर क्या जीवन का बँटवारा भी हो गया?"

अपनी बीमार पत्नी के समीप झुक कर वह उसे दिलासा देने लगा—"इतनी चिन्ता नहीं किया करते। नये देश में पहुँचने भर की देर है। एक अच्छे से डाक्टर से तुम्हारा इलाज करायेंगे। मैं फिर किसी स्कूल मे पढ़ाने लगूँगा। तुम्हारे लिए फिर से सोने की बालियाँ घड़ा दूँगा।" कोई और समय होता तो वह अपनी पत्नी से उलझ जाता कि भागते समय इतना भी न हुआ कि चुड़ैल अपनी सोने की बालियाँ ही उठा लाती। बल्कि वह उस कजलौटी तक के लिए झगड़ा खड़ा कर देता जिसे वह दर्पण के समीप छोड़ आई थी—कजलौटी जिसकी सहायता से वह इस अधेड़ आयु मे भी कभी-कभी अपनी आँखों मे बीते सपनों की याद ताजा कर लेती थी।

कान्ता ने झुक कर शान्ता की आँखों मे कुछ देखने का यत्न किया। जैसे वह पूछना चाहती हो कि बताओ पगली, हम कहाँ जा रहे हैं।

"मेरा झुनझुना?" शान्ता ने पूछ लिया।

"मेरी गुड़िया!" कान्ता कह उठी।

"यहाँ न झुनझुना है, न गुडिया!" स्कूल मास्टर ने अपनी आँसू-भरी आँखों से अपनी बच्चियों की ओर देखते हुए कहा,

"मेरी बेटियो! झुनझुने बहुतेरे, गुड़ियां बहुतेरी। नये देश में हर चीज़ मिलेगी।"

पर रह-रह कर उसका मन पीछे की तरफ मुड़ने लगता। यह कैसा आकर्षण है?—यह जन्म-भूमि का आकर्षण है! जैसे वह स्वयं ही उत्तर देने का यत्न करता। जन्म-भूमि पीछे रह गई। अब नया देश समीप है। गाड़ी चलने की देर है। उसने झुंझला कर इधर-उधर देखा। जैसे वह डिब्बे में बैठे हुए एक-एक व्यक्ति से पूछना चाहता हो कि बताओ गाड़ी कब चलेगी।

जन्म-भूमि हमेशा के लिए छूट रही है—उसने अपने कन्धों पर पड़ी हुई चादर को बाये हाथ की अंगुलियों से सहलाते हुए कहना चाहा। जैसे इस चादर के भी कान हों, और वह सब सुन सकती हो। खिड़की से सिर निकाल कर उसने पीछे की तरफ देखा और उसे यों लगा जैसे जन्म-भूमि अपनी बाहें फैला कर उसे बुला रही हो। जैसे वह कह रही हो कि मुझे यों छोड़ कर चले जाओगे। मेरा आशीर्वाद तो तुम्हारे लिए हमेशा था और हमेशा रहेगा।

स्कूल मास्टर की बीमार पत्नी ने नन्हें ललित से समझौता कर लिया था। इस दूध की एक-एक बूंद पर पचासों रुपये निछावर किये जा सकते थे। यह दूध पचास रुपये ग्लास के हिसाब से बिकनेवाले दूध से अवश्य महँगा था।

चादर पर दायें हाथ की अगुलियां फेरते हुए स्कूल मास्टर को जन्मभूमि की धरती का ध्यान आ गया, जो शताब्दियों से रुई की खेती के लिए विख्यात् थी। उसकी कल्पना मे कपास के दूर तक फैले हुए खेत उभरे। यह सब इसी कपास का जादू ही तो था कि जन्मभूमि रुई के अनगिनत ढेरों पर गर्व कर सकती थी। जन्मभूमि मे इसी रुई से कैसे-कैसे बारीक तार निकाले जाते थे। घर-घर चरखे चलते। सजीव चरखा कातनेवालियों

की रंगीली महफिलें—वे 'त्रिंजन'। वह बढ़-बढ़ कर सूत कातने की होड़। वे सूत की अंटियां तैयार करनेवाले हाथ। वे जुलाहे जो परम्परागत कथाओं मे मूर्ख समझे जाते थे, पर जिन की अंगुलियों को महीन से महीन कपड़ा बुनने की कला आती थी। जैसे जन्मभूमि पुकार-पुकार कर कह रही हो—तुम कद के लम्बे हो और शरीर के गठे हुए। तुम्हारे हाथ-पाँव मजबूत हैं। तुम्हारा सीना कितना चौड़ा है। तुम्हारे जबडे इतने सख्त हैं कि पत्थर तक चबा जाओ। यह सब मेरे कारण ही नो हैं। देखो तुम मुझे छोड़ कर मत जाओ स्कूलमास्टर ने झट खिड़की के बाहर देखना बन्द कर दिया और उसकी आंखें अपनी बीमार पत्नी के चेहरे पर जम गईं।

वह कहना चाहता था कि मुझे वे दिन अभी तक याद हैं, ललित की माँ, जब तुम्हारी आँखे काजल के बिना ही काली-काली और बड़ी-बड़ी नजर आया करती थीं। मुझे याद हैं वे दिन जब तुम्हारे शरीर मे हिरनी की-सी मस्ती थी। उन दिनों तुम्हारे चेहरे पर चाँद की चाँदनी थी, सितारों की चमक थी। मुसकान, हंसी, कहकहा - तुम्हारे चेहरे पर खुशी के तीनों रंग थिरक उठते थे। तुम पर जन्मभूमि कितनी दयालु थी। तुम्हारे सिर पर वे काले घुंघराले केश!-उन सावन के काले-काले मेघों को अपने कन्धों पर संभाले तुम मटक-मटक कर चला करती थीं—गाँव की गलियों में, गाँव के खेतों में! घुर-घुर धाँ-धाँ - जैसे मटकी मे गिरते समय ताजा दुहे जाने वाला दूध बोल उठे स्कूलमास्टर को यों लगा जैसे अभी कुछ बाकी हो। जैसे वह वर्षों के घूमते हुए भँवर मे चमकती हुई किरन के दिल की बात भाँप कर आज खुशी से यह कह सकता हो कि बीते सपने कल्पना के कला-भवन मे सदैव थिरकते रहेंगे। जैसे वह ताक में पड़ी सुराही से कह सकता हो—ओ सुराही, तेरी गरदन

टेढ़ी है, भला मैं वे दिन कैसे भूल सकता हूँ जब तुम नई-नई इस घर में आई थी।

वह चाहता था कि गाड़ी जल्द से जल्द नये देश की सीमा में प्रवेश कर ले। फिर उसके सब कष्ट मिट जायेंगे। पत्नी का इलाज भी हो सकेगा जन्मभूमि पीछे रह जाने के विचार से उसे कुछ उलझन-सी अवश्य महसूस हुई। पर उसने तुरन्त अपने मन को समझा लिया। वह यह यत्न करने लगा कि नये देश में जन्मभूमि की कल्पना कायम कर सके। आखिर एक गाँव को तो जन्मभूमि नहीं कहते—जन्मभूमि तो बहुत विशाल है, बहुत महान् है। उसकी महिमा का गान तो देवता भी पूरी तरह नहीं कर सकते। जिधर से गाड़ी यहां तक आई थी और जिधर गाड़ी को जाना था, दोनों तरफ एक-जैसी भूमि दूर तक चली गई थी। उसे ख्याल आया कि भूमि तो सब जगह एक-जैसी है। जन्मभूमि और नये देश की भूमि मे बहुत अधिक अन्तर तो नहीं हो सकता। वह चाहता था कि जन्मभूमि की वास्तविक कल्पना कायम करे। पौ फटने से पहले का दृश्य—दूर तक फैला हुआ क्षितिज—किनारे-किनारे पहाड़ियों की झालर—आकाश पर बगलों की पंक्ति खुली कैंची के रूप में उड़ती हुई—पूर्व की ओर ऊषा का उजाला—धरती ऐसी-जैसी किसी युवती की गरदन के नीचे ऊँची घाटियों के बीचों-बीच ताज़ा श्वेत मक्खन दूर तक फैला हुआ हो। वह चिल्ला कर कहना चाहता था कि जन्मभूमि का यह दृश्य नये देश मे भी ज़रूर नज़र आयगा। अपने कन्धों पर पड़ी हुई चादर को वह दायें हाथ की उंगलियों से सहलाने लगा। जैसे वह इस चादर के मुख से अपने विचारों का समर्थन कराना चाहता हो। लटकती डालियां, महकती कलियां, इन्द्रधनुष के रंग, आकाश गंगा की दूधिया सौन्दर्य, युवतियों के कहकहे, नव कुलवधुओं की लाज—जन्मभूमि का रूप इन्हीं

पर कायम था। अपने इसी ख़मीर पर, अपनी इसी तासीर पर जन्मभूमि मुस्कराती आई है और मुस्कराती रहेगी। वह कहना चाहता था कि नये देश में भी जन्मभूमि का रूप किसी से कम थोड़ी होगा, वहाँ भी गेहूँ के खेत दूर तक फैले हुए नज़र आयेंगे। जन्म-भूमि का यह दृश्य नये देश में भी उसके साथ-साथ जायगा, उसे विश्वास था। उसके बायें हाथ की अंगुलियाँ बराबर कन्धे पर पड़ी हुई फटी-पुरानी और मैली चादर से खेलती रहीं। जैसे ले-दे कर आज यही चादर जन्मभूमि की प्रतीक रह गई हो।

"फिरंगी ने देश का नक्शा बदल डाला," सरदारजी कह रहे थे, पास से कोई बोला, "यह उसकी पुरानी चाल थी।"

एक बुढ़िया कह उठी, "फिरंगी तो बहुत दिनों से इस देश में बस गया था। मैं न कहती थी कि हम बुरा कर रहे हैं जो फिरंगी को उसके बंगलों से निकालने की सोच रहे हैं? मैं न कहती थी फिरंगी का सराप लगेगा?"

पास से दूसरी बुढ़िया बोली, "यह सब फिरंगी का सराप ही तो है, बहिन जी।"

स्कूलमास्टर को पहली बुढ़िया पर बहुत क्रोध आया। उसकी आवाज़ में जन्म-भूमि के मिथ्या सन्देह बोल उठे हैं, उसने सोचा। दूसरी बुढ़िया उससे भी कहीं अधिक मूर्ख थी जो बिना सोचे हाँ में हाँ मिलाये जा रही थी।

परे कोने में एक कन्या चीथड़ों में लिपटी हुई बैठी थी। जैसे उसकी सहमी-सहमी निगाहें इस डिब्बे के प्रत्येक यात्री से पूछना चाहती हों—क्या ये मेरे घाव आख़िरी घाव हैं? उसके बाईं तरफ उसकी माँ बैठी थी, जो शायद फिरंगी से कहना चाहती थी कि मेरी गुलामी मुझे लौटा दो, क्योंकि गुलामी में मेरी बिटिया की आबरू तो नहीं लुटी थी।

डिब्बे में बैठे हुए जो लोग भीड़ के कारण बेहद भिंच हुए थे उनकी आंखों में भय की यह दशा थी कि वे प्रतिक्षण बड़े वेग से बुड्ढे हो रहे थे। सरदारजी बोले, "इतनी लूट तो बाहर से आनेवाले हमलावरों ने भी न की होगी।"

पास से किसी ने कहा—"इतना सोना लूट लिया गया कि सौ-सौ पीढ़ियों तक ख़त्म नहीं होगा।"

"लूट का सोना ज्यादा दिन नहीं ठहरता।" एक और यात्री कह उठा।

सरदारजी का चेहरा तमतमा उठा। बोले—"पुलिस के सिपाही भी तो सोना लूटनेवालों के साथ रहते थे। पर लूट का सोना पुलिस के सिपाहियों के पास भी कितने दिन ठहरेगा? आज भी दुनिया सत्गुरु नानकदेवजी महाराज की आज्ञा पर चले तो शान्ति हो सकती है।"

छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन—इतने घंटों से गाड़ी हरबंस-पुरा के स्टेशन पर रुकी खड़ी थी। अब तो प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े मिल्टरी वालों के तने हुए शरीर भी ढीले पड़ गये थे। किसी में इतनी हिम्मत न थी कि डिब्बे से नीचे जाकर देखे कि आखिर गाड़ी रुकने का कारण क्या है। डिब्बे से हर किसी का दम घुटा जा रहा था, और हर कोई चाहता था कि और नहीं तो इस डिब्बे से निकल कर किसी दूसरे डिब्बे में कोई अच्छी-सी जगह ढूँढ़ ले। पर यह डर भी तो था कि कहीं यह न हो कि न इधर के रहें न उधर के और गाड़ी चल पड़े।

बुढ़िया बोली—"फिरंगी का सराप ख़त्म होने पर ही गाड़ी चलेगी।"

दूसरी बुढ़िया कह उठी—"सच है, बहिन जी।"

स्कूल मास्टर ने उड़नेवाले पक्षी के समान बाहें हवा में उछालते हुए कहा—"फिरंगी को दोष देते रहने से तो न जन्म-

भूमि का भला होगा न नये देश का।"

पहली बुढ़िया ने रूखी हँसी हँसते हुए कहा, "फिरंगी चाहे तो गाड़ी अभी चल पड़े।"

कान्ता ने खिडकी से झाँक कर दूसरे डिब्बे की खिड़की मे किसी को पानी पीते देख लिया था। वह भी पानी के लिए मचलने लगी। उसकी बीमार माँ ने कराहती हुई आवाज़ मे कहा, "पानी का तो अकाल पड़ रहा है, बिटिया।"

अब शान्ता भी पानी की रट लगाने लगी। सरदारजी ने जेब में हाथ डाल कर कुछ नोट निकाले और पाँच-पाँच रुपये के पाँच नोट स्कूलमास्टर की तरफ बढ़ाते हुए कहा—"इससे आधा ग्लास पानी ले लिया जाय।"

स्कूलमास्टर ने झिझकते हाथों से नोट स्वीकार किये। आधे ग्लास पानी की कल्पना से उसकी आँखे चमक उठीं। खाली ग्लास उठा कर वह पानी की तलाश में नीचे प्लेटफार्म पर उतर गया। अब हिन्दू पानी और मुस्लिम पानी का भेद नहीं रह गया था। बड़ी कठिनाई से एक व्यक्ति के पास पानी नजर आया। बावन रुपये ग्लास के हिसाब से पच्चीस रुपये का पानी आधे ग्लास से कुछ कम ही आना चाहिए था। पानी बेचनेवाले ने पेशगी रुपये वसूल कर लिये और बड़ी मुश्किल से एक-तिहाई ग्लास पानी दिया।

डिब्बे मे आकर सरदारजी के ग्लास मे थोडा पानी उड़ेलते समय जल्दी मे कोई एक घूंट पानी फर्श पर गिर गया। झट से पानी का ग्लास कान्ता के मुँह पर थमाते हुए उसने कहा—"पी ले बेटा।" उधर से शान्ता ने हाथ बढ़ाए। स्कूलमास्टर ने कान्ता के मुँह से ग्लास हटा कर उसे शान्ता के मुँह पर थमा दिया। फिर बहुत जल्द कांपते हाथों से यह ग्लास उसने अपनी बीमार पत्नी के ओठों की तरफ बढ़ाया जिसने आँखों ही आँख

में अपने पति से कहा कि पहले आप भी अपने ओंठ गीले कर लेते। पर पति इसके लिये तैयार न था। कान्ता और शान्ता ने मिलकर जोर से ग्लास पर हाथ मारे। बीमार माँ के कमजोर हाथों से छूट कर ग्लास फर्श पर गिर पड़ा। स्कूलमास्टर ने झट लपक कर ग्लास उठा लिया। बड़ी मुश्किल से इसमें एक घूंट पानी बच पाया था। यह एक घूंट पानी उसने झट अपने गले में उड़ेल लिया।

सरदारजी कह रहे थे, "इतना कुछ होने पर भी इन्सान जिन्दा है और जिन्दा रहेगा।"

स्कूलमास्टर कह उठा, "इन्सानियत जन्मभूमि का सबसे बड़ा वरदान है। जैसे एक पौधे को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर लगाया जाता है, ऐसे ही हम नये देश में जन्मभूमि का पौधा लगायेंगे। हमें इसकी देख-भाल करनी पड़ेगी और इस पौधे को नई जमीन में जड़ पकड़ते कुछ समय अवश्य लगेगा।"

यह कहना कठिन था कि बीमार माँ के गले में कितने घूंट पानी गुज़रा होगा। पर इतना तो प्रत्यक्ष था कि पानी पीने के बाद उसकी अवस्था और भी डांवाडोल हो गई। अब उसमें इतनी शक्ति न थी कि बैठी रह सके। सरदारजी ने न जाने क्या सोच कर कहा—"दरिया भले ही सूख जायं पर दिलों के दरिया तो सदा बहते रहेंगे। दिल दरिया समुद्रों डूंघे—दिलों के दरिया तो समुद्र से भी गहरे हैं।"

स्कूलमास्टर कह उठा—"कभी ये दिलों के दरिया जन्मभूमि में बहते थे। अब ये दरिया नये देश में बहा करेंगे।"

बीमार स्त्री बुखार से कांपने लगी। सरदारजी बोले—"यह अच्छा होगा कि इसे थोड़ी देर के लिये नीचे प्लेटफार्म पर लिटा दिया जाय। बाहर की खुली हवा इसके लिये अच्छी रहेगी।"

स्कूलमास्टर ने एहसान-भरी निगाहों से सरदारजी की

तरफ देखा और उनकी मदद से अपनी बीमार पत्नी को डिब्बे से उतार कर प्लेटफार्म पर लिटा दिया। सरदारजी फिर अपनी जगह पर जा बैठे और स्कूलमास्टर अपनी पत्नी के चेहरे पर रूमाल से पंखा करने लगा। वह धीरे-धीरे उसे दिलासा देने लगा "तुम अच्छी हो जाओगी, हम बहुत जल्द नये देश मे पहुँचनेवाले हैं। वहां मै अच्छे-अच्छे डाक्टरों से तुम्हारा इलाज करवाऊँगा।"

बीमार स्त्री के चेहरे पर दबी-दबी-सी मुस्कान उभरी। पर उसके मुख से एक भी शब्द न निकला, मानो उसकी खुली-खुली आँखे कह रही हों—मै जन्मभूमि को नहीं छोड़ सकती। मैं नये देश में नहीं जाना चाहती। मैं इसी धरती की कोखसे जन्मी और इसी मे समा जाना चाहती हूँ।

उसका सांस जोर-जोर से चलने लगा। उसकी आंखे पथराने लगीं। स्कूलमास्टर घबरा कर बोला, "यह तुम्हे क्या हो रहा है ? गाड़ी अब और नहीं रुकेगी। नया देश समीप ही तो है। अब जन्म-भूमि का ख्याल छोड़ दो। हम आगे जायेंगे।"

खिडकी से कान्ता और शान्ता फटी-फटी आखों से देख रही थी, उनकी समझ मे कुछ नहीं आ रहा था। सरदारजी ने खिड़की से सिर बाहर निकाल कर पूछा—"अब बहनजी का क्या हाल है ?" स्कूलमास्टर बोला—"यह अब जन्म-भूमि मे ही रहेगी।" सरदार जी बोले—"कहो तो थोड़ा पानी खरीद ले।"

बीमार स्त्री ने बुझते दीपक की तरह सभाला लिया और उसके प्राण-पखेरू निकल गये।

लाश के समीप खड़े-खड़े स्कूलमास्टर ने बड़े ध्यान से देखा और कहा—"अब वह पानी नहीं पीयेगी।"

उधर इंजन ने सीटी दी और धीरे-धीरे प्लेटफार्म के साथ-साथ रेंगने लगी। उसने एक बार पत्नी की लाश की तरफ देखा

फिर उसकी निगाहे गाड़ी की तरफ उठ गईं। खिड़की से कान्ता और शान्ता उसकी तरफ देख रही थीं। लाश के साथ रह जाय या लपक कर डिब्बे में जा बैठे, यह प्रश्न बिजली के कौंध की तरह उसके हृदय और मस्तिष्क को चीरता चला गया।

उसने अपने कन्धे से झट वह फटी-पुरानी मैली चादर उतारी जिसे वह जन्मभूमि से बचा कर लाया था और जिसके धागे-धागे में अभी तक जन्म-भूमि सांस ले रही थी। इस चादर को उसने अपने सामने पड़ी हुई लाश पर फैला दिया और झट से गाड़ी की तरफ लपक पड़ा। कान्ता की आवाज एक क्षण के लिये वातावरण मे लहराई, "माता जी।"

गाड़ी तेज हो गई थी, कान्ता की आवाज़ हवा मे उछल कर रह गई थी। स्कूलमास्टर ने शान्ता को गोद मे उठा लिया और पलट कर लाश की तरफ न देखा।

सूर्यवंशी-चन्द्रवंशी

सुजाता ने खिड़की के पास पलंग पर लेटे-लेटे आवाज़ दी—"कचनार को पानी दे दो, माई!" पर माई न जाने कहां चली गई थी। उसकी तबियत अच्छी होती तो वह स्वय उठकर कचनार को पानी से सींचती, इसकी एक-एक टहनी को ध्यान से देखती, एक-एक पत्ता गिनती। गत वर्ष जब देश स्वतन्त्र हुआ उसने यह कचनार अपने हाथों से लगाया था। वह सोच रही थी कि कल जब देश भर में स्वतन्त्रता की वर्षगांठ मनाई जा रही होगी तो उसे विशेष-रूप से अपने कचनार के जन्मदिन की खुशी होगी।

कचनार के गिर्द उसने अपने हाथों से ईंटों का घेरा बना दिया था। रात उतर आती तो कचनार के पत्ते सुकड़ जाते, जैसे ये कह रहे हों—हमें तुम्हारे कष्टों का ध्यान रहता है, सुजाता! सूर्य की पहली किरण से पत्ते लहलहा उठते, जैसे ये कह रहे हों—अब तो यहीं मन लगा लो सुजाता!

इस सरकारी क्वारटर में रहते एक वर्ष हो गया था। आज तक न किसी ने किराया मांगा था, न बिजली पानी का बिल वसूल किया था। उसने सोचा कि आज नहीं तो कल, यहां से जाना पड़ेगा। पर मकान कहां मिलेगा? स्वतन्त्र देश की

विशाल राजधानी में रहने का स्थान मिलना कितना कठिन हो गया।

पलंग पर लेटे-लेटे उसने कचनार को ध्यान से देखा। वह कहना चाहती थी कि धरती तो एक है जिससे यहां इस कचनार को जीवन मिलता है, और इसी धरती से तो स्वतन्त्र देश की सीमा के उस पार उनकी कोठी मे लाने के किनारे उस घनी ऊँची नीम का जीवन क़ायम है जिसने पाँच वर्ष पूर्व उसे दुल्हन के रूप में उस कोठी में प्रवेश करते देख कर उसका स्वागत किया था।

आँखे घुमाकर उसने खटोले पर कुमुदिनी और अतुल को देखा जिनके चेहरों पर सूर्य की किरने जाल-सा बुन रही थीं। उठो, कुम!—उठो अतु! उसने दो-तीन बार आवाज़ दी। पर वे टस से मस न हुए। उसकी तबियत अच्छी होती तो वह स्वयं उठकर उनके माथों पर हाथ फेरती और अपने मनमाने गीत के बोल गुनगुनाती—सूरज निकला रैन भँवर से, किरनें उठीं लजातीं; जाग-जाग री नींद की माती, नयन कमल से रस टपकातीं! पर अब तो वह इस गीत पर भी सौ सौ फबतियां कस सकती थी, निकला होगा सूरज रैन भंवर से, और उठी होंगी किरनें लजाती। मंहगाई और चोरबाज़ारी के मारे आज हर-कोई इतना तग है कि आराम की नींद सोने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब खाने-पीने की तंगी हो तो नयन-कमल मे कहां से रस आ सकता है?

उठो, कुम! उठो, अतु! उसने फिर आवाज़ दी। पर न कुमुदिनी जागी न अतुल। कुमुदिनी ढाई वर्ष की हो गई थी और अतुल डेढ़ वर्ष का था। कुमुदिनी अच्छी लड़की थी। पर अतुल को ज़िद ऐसी थी कि ज़रा-सी चीज़ न मिलने पर सारे घर को सिर पर उठा लेता। उठो, कुम! उठो, अतु! उसने फिर

आवाज़ दी।

थोड़ी देर बाद माई अन्दर आ गई, बोली—"अरी, कुम! तू अभी तक सो रही है? अतु तो अभी जाग कर उठ बैठेगा। कुम की नींद जल्दी नहीं टूटती। जाग कर भी तो वह झट से नहीं उठ बैठती।"

सुजाता ने माई की आवाज़ सुनी अनसुनी कर दी। उसने करवट न बदली। उसकी आँखें कचनार पर जम गईं। जैसे वह कहना चाहती हो कि दो दिन से पानी नहीं बरसा। मैं न कहूँ तो माई को कभी कचनार को पानी देने का ध्यान नहीं आयेगा।

"तुझे कुछ मालूम भी है, कुम? सूरज निकले बहुत देर हो गई।" माई की आवाज़ गूँज उठी।

कुमुदिनी अब भी न जागी। माई ने फिर कहा—"रात को चाँद निकलने की झाँकी जितनी प्यारी लगती है, दिन को सूरज निकलने की झांकी उससे भी प्यारी लगती है। कुम! कल से तुझे यह झांकी जरूर दिखाया करूंगी।"

कुमुदिनी अब भी न जागी। माई का ध्यान अतुल की तरफ पलट गया—"अरे अतु! तुम ही उठ बैठो। कुम को 'लण्डी चूहिया' दे दो।"

इस पर सुजाता अपनी हंसी न रोक सकी। यह 'लण्डी चूहिया' या दुमकटी चूहिया देने की बात, जिसका अर्थ था पहल करना और पहल करने के साथ-साथ मुकाबले पर दूसरे व्यक्ति को नीचा दिखाना, उसे बहुत अर्थपूर्ण नजर आई।

माई ने सँभल कर कहा—"आपकी तबियत कैसी है, बीबी जी?"

"अब कुछ अच्छी है," सुजाता ने हँसी को रोकते हुए कहा, "तुम न जगाओ तो कुम दिन भर सोती रहे। अतु तो खैर

अभी बच्चा है। उठ गया तो अभी किसी न किसी चीज़ के लिए ज़िद शुरू कर देगा।"

"मुझे तो अतु की ज़िद भी प्यारी लगती है, बीबीजी!" माई कह उठी।

सुजाता ने इसका कुछ उत्तर न दिया। यद्यपि वह कहना चाहती थी कि अतु की ज़िद तो मानो निबौली है, एकदम कड़वी। निबौली का ध्यान आते ही उसकी कोठी की उस घनी ऊँची नीम की टहनियां उसकी कल्पना में झूमने लगीं। वह अपनी कोठी को कब लौटेगी, कब अपने नीम को इन आँखों से देख सकेगी? यह प्रश्न सूई की तरह उसकी आत्मा को कुरेदने लगा। इस क्वार्टर का क्या भरोसा। जाने कब सरकार यहाँ से निकाल बाहर करे। इस विशाल राजधानी में कहाँ ठौर मिलेगी? लाखों शरणार्थी कैम्पों में भरे हुए हैं, जैसे बाड़े में पशु भर दिये जायें। दुर्भाग्य ने इन कैम्पों में भी तो शरणार्थियों का पीछा नहीं छोड़ा। अभी उस दिन एक कैम्प बुरी तरह जलकर राख का ढेर हो गया था।

"अरी कुम, तू क्या आज दिन भर सोती रहेगी? अरे अतु, तू ही जाग उठो," माई कहे जा रही थी।

ईंटों के घेरे के सूराखों में से सुजाता कचनार के लहलहाते पत्तों की ओर एकटक देखती रही। वह कहना चाहती थी कि वृक्ष जिस मिट्टी में उगता है उसमें उसकी जड़ें गहरी चली जाती है। यह विचार आते ही उसके दिमाग़ को झटका लगा। उसकी अपनी जड़ें बुरी तरह उखाड़ डाली गई थी।

अब माई कुमुदिनी को झंझोड़ते हुए कह रही थी—"उठो मेरी राजकुमारी!"

कुमुदिनी ने आँखे खोलकर फिर बन्द कर ली। माई ने अतुल को झंझोड़ते हुए कहा—"उठो, राजकुमार!"

सुजाता बोली—"आओ, कुम ! आओ, अतु !"

कुम और अतु उठ बैठे और माँ की ओर लपके। माँ ने दोनों को भींच लिया। पर कुम शीघ्र ही माँ की बांहों से निकल कर आँगन की ओर भाग गई। उसकी देखा-देखी अतु भी भाग गया। उनके पीछे-पीछे माई भी कमरे से बाहर चली गई।

सुजाता को घर की चिन्ता फिर से सताने लगी। पहले केवल कुम के पिताजी कमाते थे और घर का खर्च मजे से चलता था। यहाँ आकर उन्हें कई महीनों तक बेकार रहने के बाद एक जगह नौकरी मिल गई थी, आमदनी कम थी, खर्च अधिक। जब से वे यहाँ आये थे कुम के पिताजी बहुत कमजोर हो गये थे और अब तो उन्हे इस नौकरी से भी जवाब मिल गया था। कहां वह मौज, कहां यह तगी! कहाँ वह कोठी, कहाँ यह क्वार्टर। जाने कै दिन और यहां रहना मिले। जाने कब उन्हे यहाँ से निकाल दिया जाय।

वह उठकर बैठना चाहती थी। पर पाँच छ. दिन के बुखार में वह बहुत दुर्बल हो गई थी। पलंग पर लेटे-लेटे उसे अचानक अपनी उस कविता का ध्यान आ गया जिसमें उसने कहा था—ओ गालो की लाली, दर्पण की शिकायत न कर। दुल्हन ने अभी-अभी इस घर में प्रवेश किया है। देख दुल्हन, तेरी चूड़िओ का छनाका थमने न पाये। ओ काजल की रेखा, अब काहे की लाज। परे हट, ओ वेदना की खटक! ओ उत्सव की रगरलियो, निरन्तर चलती रहिओ''उसने सोचा कि आज तो दूसरी ही प्रकार की कविताओं की आवश्यकता है। इन मीठी-मीठी लोरियों से तो रहा-सहा जागरण भी खत्म हो जायगा। वह कहना चाहती थी कि यदि यही अवस्था रही तो दुल्हन के गालों की लाली तो खत्म हो जायगी। न उसके हाथों मे चूड़ियां रहेगी, न आँखों मे काजल की रेखाएं। बस वेदना की खटक

ही उसका साथ दे सकती है। उत्सव की रंगरलियों को जीवन-पथ की धूल ढक लेगी।

माई ने कमरे में आते हुए उदास होकर कहा—"कुम और अतु दूध के लिए जिद कर रहे हैं।"

"अब दूध कहां से आयेगा?" सुजाता कह उठी—"उन्हें किसी तरह चुप करा दो! मेरे जी को जाने क्या हो रहा है?"

"बहुत अच्छा, बीबीजी।" माई कह उठी और वह बाहर चली गई।

कोई और समय होता तो वह कहती—जाओ, माई, कुम और अतु को थोड़ा दूध पिला दो। पर इधर जब से कुम के पिताजी को नौकरी से जवाब मिल गया था उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वह जानती थी कि ले-देकर आध सेर दूध ही तो आया होगा। उसमें भी आधा पानी मिला होगा। इतना दूध तो उसे स्वयं चाहिए। डाक्टर ने बताया था कि यदि वह दूध नहीं पियेगी तो महीना-भर कमजोर रहेगी। कुम के पिताजी घर पर होते, तो उसे कुछ हौसला रहता। वे काम की तलाश में बाहर चले गये थे।

अभी उस रोज अल्मोड़े से प्रदीप का पत्र आया था। उसने पूछा था कि इधर उसने कितनी कविताएं लिखीं। उत्तर में सुजाता ने लिख भेजा था—ऐसे में मुझे कविता नहीं सूझती। उसे ख्याल आया कि शायद उधर से प्रदीप लिख भेजेगा कि यह कैसे हो सकता है। जैसा युग हो वैसी ही कविता भी होनी चाहिए। यह तो नहीं होना चाहिए कि मीठा-मीठा गप और कड़वा-कड़वा थू। प्रदीप ने उसे अपनी एक नई कविता भेजी थी जिसमें उन छुरियों की चर्चा की गई थी जो भाइयों ने भाइयों पर चलाईं; वे नेजे जो भाइयों के हाथों से भाइयों पर उछले, वे ढोल जिन्होंने मौत का ताल कायम रखा, वे शहनाइयां

जिन्होंने लाशों का स्वागत किया—इन्हीं का तो प्रदीप ने अपनी नई कविता में चित्रण किया था। उसने लिखा था कि आज तक लाशों के अम्बार नहीं उठाये जा सके। जाने यह लाशों की सड़ायंध कब तक दूर हो पायेगी। इन लाशों के बीचो-बीच जिन्दगी चिउटी की तरह रेंग रही थी। यह आदर्शों की मौत थी, विश्वासों की मौत। जीवन के सरोवर के किनारे बैठी मौत एक शरारती बालक की तरह ढेले पर ढेला फेंक रही थी। लहरों के घेरे फैलते थे और मिट जाते···उसे ख्याल आया कि क्यों न वह भी अपनी कविता में जीवन का वास्तविक चित्र अंकित करे।

माई ने अन्दर आकर पूछा—"आपके लिए दूध ले आऊँ, बीबीजी!"

"हाँ, लेती आओ।" वह कह उठी। पर वह सोच रही थी कि ऐसे में दूध भी कैसे अच्छा लग सकता है। यों ही जहर-मार करना होगा।

माई उन्हीं पैरों पर रसोई की तरफ घूम गई और बहुत शीघ्र दूध लेकर लौट आई। उसके पीछे-पीछे कुम और ऋतु भी आ गये।

ज्यों ही सुजाता ने उठ कर दूध का गिलास हाथ में लिया, कुम की बाहें उसकी तरफ उठ गईं। कुम की देखा-देखी ऋतु भी दूध के लिए मचल गया।

माई ने कुम और ऋतु को पुचकारते हुए अपनी बाहों मे थाम लिया। सुजाता कह उठी—"दवा है—थू—कड़वी!"

माई ने भी हाँ में हाँ मिलाई—"दवा है—थू—कड़वी!"

बहुत जल्द सुजाता के जी मे आया कि स्वयं दूध पीने की बजाय कुम और ऋतु की तरफ यह गिलास बढ़ा दे। पर उस समय तक वह दो-चार घूंट पी चुकी थी, और जूठा दूध उन्हे

देना उसने ठीक न समझा। उसे याद आया कि किसी ने उसकी कविता की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि इसमें आकाश की-सी विशालता है। "थू—कड़वी !" ये शब्द उसके मन को सुई की तरह कुरेदने लगे। जैसे उसने यह झूठ बोल कर बहुत बड़ा अपराध किया हो। जैसे इस झूठ के सम्मुख उसकी कविता में आकाश की-सी विशालता एकदम सिकुड़ गई हो। वह अपने मन को कोसने लगी। मैं कितनी कमीनी हो रही हूँ, कितनी जलील और घोर स्वार्थी ! यह ख्याल उसके मन पर हथौड़ियाँ-सी चलाता रहा।

माई न जाने क्या सोचकर कह उठी—"आज तो कुम के पिताजी को आ ही जाना चाहिए।"

"हाँ, हाँ," सुजाता बोली—"वे यहाँ नहीं हैं और मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता।"

फिर माई ने पास के स्वयंवर की दुःख-भरी आँखोंदेखी घटना सुना डाली। बहुत जुल्म हुआ। पुलिस ने आकर एक क्वार्टर खाली करा दिया। देखते ही देखते सब सामान बाहर निकाल दिया गया था। स्त्रियों ने बहुत बावैला किया। पर सिपाहियों ने एक न सुनी। बोले, हमें यही हुक्म हुआ है। पड़ोसियों ने बीच-बचाव करना चाहा और सलाह दी कि एक-आध दिन रुक जाओ और उस समय आओ जब इनके घर-वाले मौजूद हों। इतने में वह भी आ गया जिसके नाम सरकार ने यह क्वार्टर मंजूर किया था। वह तीन तांगों पर सामान लेकर आया। फिर यही तांगेवाले यह सोचकर रुके रहे कि शायद यहाँ से जानेवालों को भी जरूरत पड़े। पर घरवालों के आये बिना वे बेचारी स्त्रियां कहां जातीं ? तांगेवाले चले गये। जब बेचारियों के घरवाले आये होंगे कितने परेशान हुये होंगे। जाने वे बेचारे कहां गये होंगे ? कल आजादी का दिन

है। झण्डा फहराया जायगा। जिन्हे दो दिन पहले क्वार्टर से निकाल दिया गया, वे कैसे आजादी मनायेंगे ? वे कैसे झण्डा फहराये जाने का उत्सव देखने जा सकती हैं ? सुजाता ने खामोशी से माई की बातें सुनी। अन्त मे उसने बस इतना ही कहा—"जो परसों उन पर बीती, वह आज हम पर भी बीत सकती है।"

माई फर्श पर बैठी बैठी बोली—"कुम के पिताजी आकर सब ठीक कर लेंगे।"

"वे भी ठीक क्या कर लेंगे, माई ?" सुजाता कह उठी, "मालूम होता है अभी बहुत दु:ख देखना बाकी है। गर्दन पर लटकती हुई तलवार एक न एक दिन गिर कर रहती है।"

अतु कुम के बाल नोच रहा था। सुजाता के हाथ अतु को समझाने के लिए ऊपर उठे। उधर कुम अपना आपा छुड़ाकर बाहर भाग गई। अतु भी कुम के पीछे पीछे भाग गया।

माई बोली—"जो लोग हमे इस क्वार्टर से निकालने आयेंगे, क्या उन्हें इन बच्चों पर भी तरस नहीं आयेगा।"

सुजाता कहना चाहती थी कि अभी तक उसकी कोठी उसे आवाज दे रही है। उस कोठी की घनी, ऊँची नीम की टहनियाँ हिला-हिला कर उसे बुलाना चाहती हैं। वह पूछना चाहती थी कि अब उस कोठी मे कौन रहता होगा। इससे भी क्या लाभ, उसने सोचा, जिस गांव को जाना नहीं उसका रास्ता काहे को पूछना। जैसे जीवन एक बोझ हो। इस बोझ को उठाकर चलना कितना कठिन हो गया था। यह बोझ उठा कर अब वह उस कोठी को नहीं लौट सकेगी। यह ख्याल उसके मन पर हथौड़ियां चलाता रहा।

माई बोली—"मैं चाहती हूँ, बीबीजी, कि कल कुम और अतु को झण्डा फहराने का उत्सव जरूर दिखा लाऊँ। आप भी

चलें तो कुम और अतु को बहुत खुशी होगी।"

"मैं कैसे जा सकता हूं" सुजाता कह उठी—"डाक्टर ने मना कर रखा है कि मैं अभी चलूं-फिरूं नहीं।"

बात दूसरी थी। उसका मुँह ही नहीं, मन भी कड़वा रहता था। जैसे बीमार का मुँह कड़वा रहता है और उसे मीठी चीज़ भी कड़वी मालूम होती है, वैसे ही डेढ़ सौ वर्षों से हम कड़वी-कसैली गुलामी चखते आ रहे थे। आज़ादी तो मिली, पर आज़ादी का मीठा फल भी अभी तक हमें कड़वा लगता है। आजादी के आते ही लोगों की तकलीफें उलटे और भी बढ़ जायेंगी, यह उसने कभी भूल कर भी नहीं सोचा था। होगी यह आज़ादी दूसरों के लिए। हमारे लिए तो यह आज़ादी नहीं। रहने को घर नहीं मिलता। यह कैसी आजादी है? हर चीज़ महँगी से महँगी होती चली जा रही है। चोर बाजार खूब चलता है। यहां वाले हमें बुरी नज़र से देखते हैं। आखिर हम उधर से इधर आये। सब कुछ गंवा कर। आख़िर हमें इधर से कुछ आशा थी तब तो इधर आये।

अभी उस दिन उसने कहीं पढ़ा था कि भविष्य का अनुभवी मानव जब अपने चारों ओर नज़र डालेगा तो मुस्कराना भूल जायगा। वह कहना चाहती थी कि यह बात तो आज भी सत्य सिद्ध हो रही है। आज देश की कुछ ऐसी ही अवस्था है। यह और बात है कि जिनकी जेब मे पैसा है, वे आज भी बन-ठन कर निकलते हैं और खूब चहकते हैं। पर ज्यादा लोग दुखी हैं। वे पूछना चाहते थे—यह कैसी आज़ादी है। क्या इसी आजादी के लिए देश ने बड़े-बड़े दुःख सहे थे? आम आदमी को तो कोई पूछता नहीं। हालांकि आम आदमी का नाम ले-लेकर ही आज़ादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी।

प्रदीप ने एक पत्र में उसे लिखा था—"सूर्य और चन्द्रमा

यदि आज चमकना बन्द कर दें तो उसे कोई आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि धरती पर न्याय और जनतन्त्र का अभाव तो सूर्य और चन्द्रमा को अवश्य खटक सकता है। कहते हैं क्रौंच पक्षी के जोड़े को शिकारी के तीर से घायल देखकर महाकवि बाल्मीकि के कंठ से स्वत एक छन्द प्रतिध्वनित हो उठा था।" इसके उत्तर मे उसने प्रदीप को लिखा था—"अभी सूर्य और चन्द्रमा को चमकते रहना चाहिए। क्योंकि न्याय और जनतन्त्र का पलड़ा एक न एक दिन अवश्य भारी होकर रहेगा। महाकवि बाल्मीकि के सम्बन्ध मे यह भी प्रसिद्ध है कि प्रथम छन्द की रचना के पश्चात् वे एक उन्मत्त की भांति वनों मे घूमने लगे। वे कुछ लिखना चाहते थे। पर उन्हे कोई विषय नही सूझ रहा था। फिर एक दिन नारद से उनकी भेंट हो गई। नारद बोले—हे महाकवि, कुछ लिखना चाहते हो त. सूर्यवश के मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी महाराज के सम्बन्ध में लिखो। इस प्रकार रामायण की रचना हुई। इस युग की नारद दूसरी ही बात कहेगा—जनता के सम्बन्ध में लिखो। जनता, जो जाग रही है—जनता, जो उभर रही है, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण कर रही है।" इसके उत्तर मे प्रदीप ने फिर लिखा था—"दु ख तो इस बात का है कि हमारे कवि देखकर भी नहीं देखते। बाल्मीकि की वाणी एक क्रौंच पक्षी की वेदना-द्वारा अग्रसर हो उठी थी और हमारे कवि हैं कि आज लाखों करोड़ों नर-नारियों के दु ख देख कर भी चुप हैं। सच पूछो तो शरणार्थियों को वेदना एक महाकाव्य की सृष्टि मे सहायक हो सकती है।"

वह अनमनी-सी खिड़की से कचनार की ओर देखती रही, जैसे वह उससे कहना चाहती हो—कल तुम्हारा जन्मदिन है, मेरे कचनार। पर मै बीमार पड़ी हूँ। तुम पूछोगे—क्या बीमारी

है ? मैं कहूँगी—मुझे चिन्ता ने डस लिया। अब तुम ही बताओ कि मैं तुम्हारा जन्म-दिन कैसे मनाऊँगी।

माई ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए पूछ लिया—"अब कैसी तबियत है, बीबीजी ?"

सुजाता कह उठी—'चिन्ता का भार ढोते-ढोते मन तंग आ चुका है, माई।"

माई उठकर बाहर चली गई, जहां कुम और ऋतु खेल रहे थे। सुजाता का ध्यान अपनी कोठी की ओर पलट गया। अब वहां हिंसा का दैत्य रहता होगा। उसने सोचा, उसे देखकर तो नीम का पेड़ सहम जाता होगा। उस सहम और चिन्ता में नीम को मेरी याद तो आती ही होगी। बल्कि उसे कुम और ऋतु की याद भी आती होगी, कुम के पिताजी की भी। कुम के पिताजी का ध्यान आते ही उसका मन खीज उठा। वे जहां जाते हैं, वहीं बैठ रहते हैं। पीछे का ध्यान तो उन्हें रहता ही नहीं। वह कहना चाहती थी—यह ठीक है कि हम उन शरणार्थियों में से तो नहीं हैं जो अपनी-अपनी पीठ पर गट्ठर लादे और हारे हुओं की तरह सिर झुकाये दस-दस बीस-बीस मील लम्बे काफिलों में पैदल यहां पहुँचे—सैंकड़ों मील की यात्रा के पश्चात् जिन पर रास्ते में कई बार हमले किये गये, और जो यहां आकर यहांवालों की तंगदिली देखकर हैरान हुए। पर उनमें और हममें अब यह भेद अधिक दिन नहीं रहने का। हम भी बहुत शीघ्र बे-घर-बार के राही बननेवाले हैं। वहां वह नीम छुट गई ; यहां यह कचनार छूट जायगा।

उसे ख्याल आया कि अपने पिछले पत्र में प्रदीप ने लिखा था—"हो सका तो मैं स्वतन्त्रता की प्रथम वर्षगांठ पर राजधानी में पहुँचूं।" उसने पलंग पर लेटे-लेटे दो-तीन बार करवट बदली और मन ही मन में फैसला कर लिया कि प्रदीप आ पहुँचा तो

भी वह झण्डा फहराये जाने का उत्सव देखने नहीं जायगी। वहां उसके लिए क्या रखा होगा ? वहां उसे कौन-सी जिन्दगी की नई किश्तें मिल जायेंगी ? प्रदीप उसे चलने के लिए जिद करेगा तो वह साफ़-साफ कह देगी—जिस जनता का नाम लेकर प्रायः जनता-राज का शोर मचाया जाता है उस जनता को तो अभी तक मालूम ही नहीं हुआ कि उसके क्या-क्या अधिकार हैं ? जनता उस स्वतन्त्रता पर कैसे निछावर हो सकती है जिसे अभी तक वह अपनी स्वतन्त्रता नहीं समझ सकी ? सामने से प्रदीप बहस छेड़ देगा—राजाओं के राज अब खत्म हुए। अब तो जनता-राज का युग आया है। आज नहीं तो कल। जनता को अपने अधिकार अवश्य समझने होंगे। अब न चन्द्रवंश रहा न सूर्यवंश—जाने किस-किस वंश ने सिर उठाया। एक-एक करके सब वंश गिर गये, गिरते चले गये। जनता-राज की आवाज़ आज भी भले ही बहुत जोरदार न हो, पर इतना तो सत्य है कि अब यदि कोई राज टिक सकता है तो वह जनता-राज ही हो सकता है। आखिर जनता का सिर कब तक झुका रहेगा ? जब जनता अपनी महती शक्ति को पहचान लेगी, तब सब सुखी होंगे, सब बराबर।

दो दिन से पानी नहीं बरसा था। उसे ख्याल आया कि माई ने कचनार को पानी नहीं दिया। उसने माई को आवाज —"माई ! माई ! सुनो तो।"

थोडी देर बाद माई कुम और अतु की अंगुलियां थामे अन्दर आई। बोली—"क्या चाहिए, बीवीजी ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए। पर कचनार को प्यास लगी होगी।" वह कह उठी।

"तो मैं अभी प्यासे की प्यास मिटा देती हूँ।" यह कहकर माई बाहर चली गई।

कुम लपक कर पलंग पर चढ़ गई। अतुल भी ऊपर पहुँचने के लिए बिलबिलाने लगा। सुजाता ने हाथ बढ़ाकर उसे भी ऊपर उठा लिया। उसे याद आया कि एक बार प्रदीप ने व्यंग्य में लिखा था—"मां बनने से पहले ही लोरियां लिखनेवाली कवियित्री से प्रकृति ने खूब बदला लिया है।" बदला काहे का, वह कहना चाहती थी, कुम तो अच्छी लड़की है, जिद बिल्कुल नहीं करती; अतुल भी अच्छा लड़का है। अब तो वह भी जिद नहीं करता। कहो, कुम ! कहो अतु ! क्या चाहिए ? वह पूछना चाहती थी। बताओ तुम्हारे पिताजी कब आयेंगे ? बताओ वे तुम्हारे लिये क्या लायेंगे। ये प्रश्न उसके मस्तिष्क मे गूँज उठे। जैसे हर मां अपने बच्चे से यही प्रश्न पूछ रही हो। यही प्रश्न कभी सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी माताओं ने अपने राजकुमारो से पूछे होंगे, उसने सोचा आज तो नया युग आया है—जनशक्ति का युग। आज तो कोई साधारण स्त्री भी सूर्यवंशी और चन्द्र-वंशी माताओं से कम नहीं रहेगी।

"कचनार को पानी पिला आई हूँ बीबीजी," माई ने अन्दर आकर कहा, "अब उसके पत्ते लहलहा उठेंगे।"

"शायद आज पानी बरस जाय, माई।"

"आज भले ही बरस जाय, बीबीजी, कल सुबह को तो न बरसे। कल सुबह भी पानी बरसा तो झण्डा फहराने के उत्सव मे बहुत विघ्न पड़ेगा। कुम के पिताजी आज आ जायँ तो कल हम भी उत्सव देखने जायँ।"

सुजाता कुछ न बोली। अनमनी-सी खिड़की के बाहर देखती रही। जैसे प्रदीप की आवाज़ उसके मस्तिष्क मे गूँज उठी हो—एक-एक क्षण बीतता चला जाता है। इन क्षणों में वह अपरिचित बहुमूल्य क्षण भी बीत जाता है जिसकी प्रतीक्षा में मानव वर्षो एकटक देखता हुआ बैठा रहता है। ऐसा कभी नहीं होता

कि एक बीता हुआ क्षण झट लौट आये। सम्पूर्ण काल-चक्र काट कर ही वह क्षण वापस आता है, हाँ, वह वापस अवश्य आता है। पर कौन उस क्षण की प्रतीक्षा में बैठा रह सकता है? नीले गगन के नीचे, लम्बे-चौड़े मैदानों में, घने विशाल वनों में—जिधर देखो काल-चक्र चल रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव खबरदार रहे। कोई भी वंश क्यों न हो, कोई भी जाति क्यों न हो, उसे इस अपरिचित बहुमूल्य क्षण की बाट जोहनी पड़ती है। इस क्षण का स्वागत करने में जरा-सी चूक होने से इतिहास की दिशा बदल जाती है। आज वह क्षण आया है जब राजसत्ता जनता के हाथ में आया चाहती है। झण्डा ऊँचा रहेगा—यह जनशक्ति का प्रतीक। वह माई से कहना चाहती थी कि तुम झण्डा फहराये जाने का उत्सव देख आना, मैं तुम्हें रोकूँगी नहीं। पर मुँह से वह कुछ भी न कह सकी।

वह इस अपरिचित बहुमूल्य क्षण के महत्व पर विचार करती रही। वह कहना चाहती थी कि सचमुच कोई ऐसा ही क्षण आने पर ही हो सकता है जो दो इन्सानों बल्कि दो देशों के बीच सात समुन्दरों को कोई एकदम पाट दे, जब अनगिनत शताब्दियों की दीवारें किसी की आँख के एक इशारे से गिर जायँ। यह ऐसे ही है जैसे सूर्य चढ़ने पर सब कुहासा दूर हो जाता है।

माई कुम और ऋतु को माँ की बाहों से लेने का यत्न करती रही। "आओ, कुम! आओ, ऋतु, तुम मेरे पास नहीं आओगे तो तुम्हें झण्डे का उत्सव दिखाने नहीं ले जाऊँगा।" वह कहती चली गई।

कुम, ऋतु को पैर से धकेलने लगी। सुजाता ने उसे रोकते हुए कहा—"भैया को पैर से मत धकेलो, कुम!" उसके मस्तिष्क

को धक्का-सा लगा। जैसे नदीम की आवाज़ प्रतिध्वनित हो उठी हो—मैंने तुम से राखी बंधवाई थी। मैं तुम्हारा भैया हूँ। हमारे बीच कोई नफरत की दीवार खड़ी नहीं रह सकती··· हाँ, भैया, तुम सच कहते हो, उसने मन ही मन में नदीम की आवाज़ का समर्थन किया। तुमने बहुत अच्छा किया, नदीम! वह कहना चाहती थी, बहन के लिए अच्छा-सा टी-सेट भेज कर तुमने यह लिखा दिया कि तुम्हें अब भी हमारी याद आती है। ··आज़ादी की पहली सालगिरह मुबारक हो - नदीम ने लिखा था। उसके जी मे आया कि आज तो नदीम को भी यहाँ होना चाहिए, और प्रदीप को भी। आज तो उनकी बाते मेरा ढाढ़स बँधा सकती थीं। वे दोनों जनशक्ति के हामी हैं, वे दोनों यह बात एकमत होकर स्वीकार करते हैं कि जिस नफरत को हम अनेक वर्षों से अपने हृदय में पोसते आये थे, उसी ने हमारी एकता पर हिंसक प्रहार किया, उसी ने साम्प्रदायिक विस्फोटों द्वारा भाई को भाई का शत्रु बनाया, उसी ने अख़बारों की सुर्खियों को ज़हर में बुझे हुए तीरों का रूप दिया, उसी ने पाशविकता, लूट, बलात्कार, और हत्या के लिए प्रोत्साहन दिया ..भैया नदीम, तुम किसी प्रकार भैया प्रदीप से कम नहीं। उसने कल्पना की धार मे बहते हुए कहा—सूर्य तो आज भी एक है, चन्द्रमा भी एक ही है, इसी प्रकार जनशक्ति भी एक है। क्या हुआ यदि मानव ने देश-देश मे मानव-मानव के बीच ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी करने के प्रयत्न किये हैं। पर यह दीवारें टिक नहीं सकतीं। वह समय आनेवाला है जब प्रत्येक स्थान पर जनशक्ति का सूर्य चमकेगा—

कुम बोली—"भैया ऋतु, जानते हो पिताजी कब आयेंगे?"

ऋतु ने कुम के प्रश्न का उत्तर देना ज़रूरी न समझा। वह माँ की छाती से चिपट रहा, जैसे वह कहना चाहता हो कि जब

माँ समीप हो तो पिताजी की उतनी जरूरत नहीं रहती।

फर्श पर बैठे-बैठे माई कह उठी—"अरे अतु कुम की बात का जवाब दो। बोलो, पिताजी कब आयेंगे ?"

सुजाता खीजकर कहना चाहती थी कि अब आज तो वे आने से रहे। फिर जब भी आना होगा आ जायेंगे।

कुम और अतु पलंग के एक कोने मे सो गये थे। माई सिर झुकाये फर्श पर बैठी रही। सुजाता ने न जाने क्या सोचकर पूछ लिया—"तुम्हे कुम अधिक प्यारी लगती है या अतु ?"

"मेरे लिये तो दोनों चाँद-सूरज की जोड़ी है, बीबीजी !"

सुजाता को माई से इतने सुन्दर उत्तर की आशा नहीं थी। बोली—"मैं अपनी कोठी मे होती तो तुम्हे इनाम देती, माई ! यहाँ तो यह हाल है कि कुम के पिताजी का लगा हुआ काम भी छूट गया। घर की चिन्ता अलग रही, मेरी जिन्दगी स्थान-स्थान पर रफू की हुई शाल की तरह है। और उस शाल को कोई जबर्दस्ती खींचकर फाड़ डालना चाहता है। ऐसे मे यह शाल कैसे बची रह सकेगी ?

"ऐसा न कहो, "बीबीजी," माई कह उठी, "सब ठीक हो जायगा।"

"ऐसा कैसे न कहूँ, माई ? सब कैसे ठीक हो जायगा ?"

"आप फिर भी बड़े लोग हैं, बीबीजी।"

"अब बड़े लोगों का जमाना खत्म हो रहा है, माई।"

"तो क्या अब छोटे लोगों का जमाना आनेवाला है, बीबी जी।"

"जरूर," सुजाता ने माई की ओर करवट बदलते हुए कहा, "अब छोटे लोगों को यानी आम जनता को अपनी शक्ति पहचान लेनी चाहिए। अब तक बड़े लोग यह समझते रहे कि सूर्य और चन्द्रमा उनके हैं। अब जनता को यह समझना चाहिए कि सूर्य

और चन्द्रमा सबसे पहले उसके हैं, और सदा उसी के रहेंगे।"

माई ने आँखें उठा कर सुजाता की ओर देखा। वह कहना चाहती थी कि ऐसी बात तो उसने पहले कभी नहीं सुनी। सुजाता ने और भी सहानुभूति जताते हुए कहा—"तुम्हारा तो बहुत नुकसान नहीं हुआ होगा, माई!"

"जो वहां रह गया अब उसका कोई क्या ज़िक्र करे, बीबी जी?" माई कह उठी "मेरे लिए तो वह थोड़ा ही बहुत था। एक लड़की थी मेरी। उसका ब्याह पक्का कर रखा था। उसका बापू पहले ही हमें बिछोड़ा दे गया था। लड़की को लेकर मैं भाग निकली। रास्ते में रेलगाड़ी पर हमला हुआ, बीबीजी। मेरी रतनी भी मुझसे छिन गई। भगवान् जाने अब वह कहां होगी, किस हाल में होगी।"

सुजाता चकित रह गई। आज तक माई अपने दर्द को कैसे छुपा कर रख सकी थी, यह बात वह समझ नहीं सकती थी। उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से माई की तरफ़ देखा। माई फिर कह उठी—"क्या मेरी रतनी मुझे मिल सकेगी बीबीजी? मुझे स्वराज नहीं चाहिए। मुझे तो मेरी रतनी मिल जाय, बीबीजी!"

सुजाता अपलक नेत्रों से माई को देखती रही। फिर जाने क्या सोचकर वह कह उठी—"सूर्य तो सब जानता होगा। चन्द्रमा को भी सब मालूम होगा। तुम चिन्ता न करो, माई! बहुत-सी लड़कियां इधर वापस लाई जा चुकी हैं। तुम्हारी रतनी भी एक दिन अवश्य वापस आ जायगी।"

माई के मुख पर उदासीनता की रेखाएं फैल गईं। जैसे उसे सुजाता की बात का विश्वास न आ रहा हो। क्या सचमुच उधर से बहुत-सी लड़कियां वापस ले आई जा चुकी हैं? क्या रतनी भी आ जायगी? वह पूछना चाहती थी। पर वह कुछ बोली नहीं। आज तक उसने अपनी वेदना को छिपाकर रखा था। व्यर्थ ही

मैंने अपनी बात बता दी, वह सोच रही थी, कौन किसी का दुःख बँटा सकता है। आज तक मैं लापरवाही दिखाती रही थी। आज भी मुझे चुप रहना चाहिए था। वह चाहती थी कि सिमट-कर वहीं फर्श पर बैठी रहे।

शाम हो गई। पर माई वहीं बैठी रही। सुजाता बोली—"माई, मुझे बस दवा पिला दो। मैं कुछ खाऊँगी नहीं। कुम और अतु को उठाकर खटोलने पर लिटा दो। वे जागेंगे तो उन्हें थोड़ा दूध पिला देंगे।"

माई अनमनी अवस्था मे फर्श से उठी। कुम और अतु को खटोलने पर लिटाकर वह लपककर सुजाता के लिए दवा ले आई। कड़वी दवा के घूंट भरते हुए वह बोली—"बस अब कुम और अतु के लिए दूध गरम कर लो और अपने लिए कुछ पका लो।"

माई खड़ी कुम और अतु की ओर देखती रही, बोली--"इस सूर्य और चाँद की जोड़ी के लिए तो संसार भर का दूध भी थोड़ा है।"

वह रसोई की तरफ घूम गई। जैसे उसे बिजली का झटका लगा। स्मृति की अंधेरी कोठरियों मे वह किसी बहुमूल्य वस्तु को टटोल रही थी। जैसे उसके सपने बीच ही मे टूट गये हों। वह रतनी के हाथ में हाथी-दाँत का चूड़ा न देख सकी। दूध गरम करते हुए उसे ख्याल आया कि यदि आज रतनी यहां होती तो वह थोडा दूध उसे भी अवश्य देती। उसे रतनी की मुस्कान याद थी। मुस्कान के वे भंवर जो रतनी के गालों पर नजर आने लगते थे उसके हृदय-पटल पर अंकित थे। उसे वे आँसू कभी नहीं भूल सकते थे जो गाड़ी के डिब्बे मे जबर्दस्ती माँ से बिछुड़ते समय रतनी की आँखों मे आ गये थे। वह चूल्हे के समीप मौन मूर्त्ति-सी बैठी रही। सूर्य तो सब जानता होगा—

सुजाता के ये शब्द उसे कुरेदने लगे—चन्द्रमा को भी सब मालूम होगा। यह बात है तो सूर्य बता क्यों नहीं देता? चन्द्रमा भी क्यों चुप रहता है? उसके मस्तिष्क को झटका-सा लगा। जैसे वह स्वयं अपने से डर गई हो। "अब बड़े लोगों का जमाना खत्म हो रहा है, माई!"—सुजाता के ये शब्द उसके मन को सूई की तरह कुरेदने लगे। वह कहना चाहती थी कि यों कहने को तो कोई कुछ भी कह दे, पर अभी तक इसके चिह्न नजर नहीं आते। अब तक बड़े आदमी यह समझते रहे कि सूर्य और चन्द्रमा उनके हैं—सुजाता ने कहा था—अब जनता को समझना चाहिए कि सूर्य और चन्द्रमा उसके हैं, और सदा उसी के रहेंगे। वह सोचने लगी—यह कैसे हो सकता है? अभी तक तो कोई आमलोगों को पूछता नहीं, अभी तक तो आम आदमी की कहीं भी पूछ-ताछ देखने मे नहीं आती।

सुजाता सो चुकी थी। माई ने कुम और अतु को बारी-बारी दूध पिलाया। सोते बालक को सिर से थामकर बिठा देना और उसे दूध पिलाना, इस कला का उसे बहुत अभ्यास था।

स्वयं उसने कुछ न खाया। अनमनी-सी वह लेट गई। उसे नींद नहीं आती थी। शून्य मस्तिष्क-सी वह निद्रा की प्रतीक्षा करने लगी। पर निद्रा जैसे कहीं भाग गई हो। कई बार वह चौंक उठी। जैसे रतनी आवाज दे रही हो। जैसे वह कह रही हो—माँ, तुमने तो मुझे वापस लाने का यत्न नहीं किया। फिर भी मैं ज़ालिमों के पंजे से छूटकर आ गई।

माई चाहती थी कि सुजाता को जगाकर कहे—यह पड़ा है तुम्हारा घर, बीबीजी। मैं जा रही हूँ। रतनी को वापस लाना मेरा सबसे पहला धर्म है। पर वह लेटी रही। उसकी आँखों मे अन्धकार छाया रहा—कोई सूर्य, कोई चन्द्रमा उसके दृष्टिपथ को आलोकित न कर सका......वह लेटी रही और जाने कब

निद्रा-धार में बह गई।

❀ ❀ ❀ ❀

सूर्य अभी निकला ही था। सुजाता की आँख खुल गई। कुम और अतु खटोलने पर सो रहे थे। खिड़की के पास पलंग पर लेटे-लेटे उसने आवाज़ दी—"माई! कुम और अतु को जगा दो।"

थोड़ी देर बाद माई अन्दर आ गई। बोली—'अरी कुम! अरे अतु! उठो सवेरा हो गया। आज आज़ादी मिलने का दिन है।"

"यह भी तो कहो कि आज कचनार का जन्मदिन है," सुजाता कह उठी।

कुम जागी न अतु ही। सुजाता ने फिर कहा—"इनसे कहो कि हम झण्डा फहराने का उत्सव देखने चलेंगे।"

माई ने कुम को झंझोड़ा—"अरी कुम! तुम कब तक सोती रहोगी?"

फिर उसने अतु को झंझोड़ा—"अरे अतु, उठो हम चलेंगे।"

उसकी आवाज़ में कोई उत्साह नहीं था। जाने कल शाम से उसे क्या हो गया था। जैसे किसी ने उसका सारा उत्साह छीन लिया हो।

कुम और अतु उठ बैठे। अब सुजाता इसरार कर रही थी कि स्वतन्त्रता की वर्षगांठ का उत्सव देखने के लिए अवश्य चलना होगा।

माई ने सुजाता के हाथ-मुँह धुलाकर उसे नये वस्त्र निकाल कर दिये। उसने जल्दी-जल्दी कुम और अतु को तैयार किया। फिर वह खुद भी तैयार हो गई और लपक कर तांगा ले आई। वे तांगे पर बैठकर उत्सव-स्थल की ओर चल पड़े।

माई कह रही थी—"आज मेरी रतनी जाने कहाँ होगी, बीबीजी!"

सुज़ाता ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह कुम और अतु को पुचकारती रही। तांगा पूरी रफ्तार से जा रहा था। माई के जी में आया कि तांगे को रोक कर नीचे उतर जाय और रतनी की तलाश मे निकल पड़े।

उत्सव-स्थल से काफ़ी इधर ही तागे को रोक दिया गया। वे तांगे से उतर कर पैदल ही चल पड़े। अतु को गोद में उठाकर कुम की अंगुली थामे माई सड़क के साथ-साथ घिसटने लगी। जैसे उसके पांव पीछे की ओर पलटना चाहते हों। सुजाता के लिए भी पैदल चलना आसान न था। वह पछता रही थी कि उसने क्यों यहाँ आने का इसरार किया। क्यों डाक्टर की एक न मानी।

भीड़ का यह हाल था कि चारों ओर सिर ही सिर दिखाई देते थे। सुजाता ने अतु को गोद मे लेते हुए माई से कहा—"कुम को तुम उठा लो।"

"ऊपर देखो, अतु!"

"ऊपर देखो, कुम!"

सुजाता की कल्पना में उसकी कोठी का चित्र उभरने लगा। जैसे वह घनी ऊँची नीम अपनी शाखाएं यहाँ तक पहुँचाने में सफल हो गई हो। जैसे वह एक वर्ष का कचनार भी पूरा वृक्ष बन गया हो और फूलों से लदी उसकी डालियाँ भी यहाँ तक आ पहुँची हों।

प्रत्येक चेहरे पर सूर्य की किरनें थिरक रही थीं, जैसे आकाश पर एक सूर्य नहीं सौ सूर्य प्रकाश फैला रहे हों। उसके मन के किसी कोने से नदीम की आवाज़ गूंज उठी—"मैंने तुम से राखी बँधवाई थी। मै तुम्हारा भैया हूँ—आज़ादी की पहली सालगिरह मुबारक हो......फिर जैसे प्रदीप बोल उठा—"अब देश-देश मे जनशक्ति का सूर्य चमकेगा। जनशक्ति का झण्डा

ऊँचा रहेगा”

भीड़ में कान पड़ी आवाज सुनाई नहीं देती थी। सुजाता माई से पूछना चाहती थी—क्या मन के किसी कोने से रतनी की आवाज़ तुम्हें सुनाई नहीं देती ? क्या वह तुम्हें इतना भी दिलासा नहीं दे सकती कि बहुत जल्द वापस आकर तुमसे मिलेगी ?

लाउड स्पीकर से आवाज़ आ रही थी—“अब प्रधान मन्त्री राष्ट्रीय झण्डा फहरायेंगे।”

भीड़ का शोर और भी तेज़ हो गया। इस शोर को चीरते हुए प्रधान मन्त्री की आवाज गूंज उठी—“हम इस झण्डे को सदा ऊँचा रखेंगे। डेढ़ सौ बरस की दूरी तै करने के बाद जो क्षण पिछले बरस देश को आज़ाद कराने के लिए धरती पर उतरा था, वह एक बरस का चक्कर काट कर फिर आ पहुँचा। अब इस क्षण की आयु एक सौ पचास वर्ष नहीं, एक सौ इक्यावन बरस है। पहले जमाने में सूर्यवंशी चन्द्रवंशी राजा राज किया करते थे। अब नया ज़माना आया है जब स्वयं सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी जनता का राज शुरू हुआ है। जब तक सूर्य और चन्द्रमा चमकते रहेंगे यह सूर्यवंशी चन्द्रवंशी राज कायम रहेगा .. ..”

सुजाता ने माई की ठोड़ी को ऊपर उठाते हुए कहा—“देखो झण्डा किस तरह फहरा रहा है, माई ! यह झण्डा करोड़ों लोगों का झण्डा है।”

माई का सिर झुका हुआ था। सुजाता कह उठी—“अरी कुम, माई को बुलाओ। अरे अतु, माई से बात करो।” पर कुम और अतु का ध्यान तो झण्डे की तरफ था। सुजाता ने फिर कहा—“झण्डे को देखो, माई ! दूर कहीं तुम्हारी रतनी भी इसी सूर्यवंशी चन्द्रवंशी झण्डे की ओर आँखे लगाये खड़ी होगी।”